MAHL 205

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखंड का लोक साहित्य

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एच0पी0 शुक्ला निदेशक, मानविकी विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्तविश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	प्रो0 सत्यकाम हिन्दी विभाग इग्नू, नई दिल्ली
प्रो.आर.सी.शर्मा हिन्दी विभाग अलीगढ़ विश्वविद्यालय,अलीगढ़	
डा0 शशांक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	डा0 राजेन्द्र कैड़ा एकेडेमिक एसोसिएट हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं संपादन

डा0 शशांक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	डा0 राजेन्द्र कैड़ा एकेडेमिक एसोसिएट हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ. मृदुल जोशी हिंदी विभाग, गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड	1, 2, 3
डॉ. हेमचन्द्र दुबे हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गरूड़, कौसानी, उत्तराखण्ड	4, 5, 6, 7, 8
डॉ. नागेन्द्र ध्यानी उप-निदेशक, उत्तराखण्ड भाषा संस्थान, देहरादून, उत्तराखण्ड	9, 10, 11, 12, 13, 14

कापीराइट@उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: 2015 सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशकः उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139
मुद्रक : प्रीमियर प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139

ISBN - 978-93-84632-75-5

विषय सूची

खण्ड 1 लोक साहित्य: स्वरूप एवं प्रवृत्ति	पृष्ठ संख्या
इकाई 1 लोक : स्वरूप एवं प्रवृत्ति	1-7
इकाई 2 लोक साहित्य : स्वरूप एवं प्रवृत्ति	8-43
इकाई 3 लोक साहित्य के संरक्षण की समस्या एवं समाधान	44-55
खण्ड 2 कुमाऊँनी लोक साहित्य का परिचय	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 4 कुमाऊँनी लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप	56-71
इकाई 5 कुमाऊँनी लोक गीत इतिहास, स्वरुप एवं साहित्य	72-93
इकाई 6 कुमाऊँनी लोक गाथाएँ : इतिहास, स्वरूप एवं साहित्य	94-115
इकाई 7 कुमाऊँनी लोक कथाएँ : इतिहास, स्वरूप एवं साहित्य	116-131
इकाई 8 कुमाऊँनी लोक साहित्य : अन्य प्रवृत्तियाँ	132-144
खण्ड 3 गढ़वाली लोक साहित्य का परिचय	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 9 गढ़वाली लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप	145-161
इकाई 10 गढ़वाली लोक गीत : इतिहास, स्वरूप एवं साहित्य	162-188
इकाई 11 गढ़वाली लोक गाथाएँ : इतिहास, स्वरूप एवं साहित्य	189-210
इकाई 12 गढ़वाली लोक कथाएँ : इतिहास, स्वरूप एवं साहित्य	211-232
इकाई 13 गढ़वाली लोक साहित्य : अन्य प्रवृत्तियाँ	233-253
इकाई 14 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप एवं साहित्य	254-271

इकाई 1 लोक स्वरूप एवं प्रवृत्ति

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 लोक का स्वरूप एवं प्रवृत्ति
    1.3.1 प्राचीन भारतीय साहित्य में लोक शब्द की उपस्थिति
    1.3.2 पाश्चात्य साहित्य में लोक शब्द की उपस्थिति
    1.3.3 'फोक' शब्द के विविध अर्थ
1.4 'लोक' शब्द की परिभाषा
1.5 सारांश
1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 सहायक उपयोग पाठ्य सामग्री
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

लोक शब्द अत्यंत प्राचीन है। समान्यतः यह साधारण जनता का पर्यायवाची है लेकिन प्राचीन भारतीय साहित्य में यह जीव तथा स्थान के अर्थों में भी लिया गया है। पाणिनी इत्यादि महर्षियों ने वेद से पृथक् लोक सत्ता को स्वीकारा है। वस्तुतः लोक शब्द अनेक रूप में व्यवहरित होता रहा है। प्रस्तुत संदर्भ में लोक का अर्थ सामान्य जनता के अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप

1. लोक शब्द के विविध अर्थ और परिभाषा से परिचित होंगे।
2. विश्व फलक में लोक के अर्थ को हृदयंगम करने की चेष्टा करेंगे ।

1.3 लोक का स्वरूप एवं प्रवृत्ति

'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोक' (दर्शन) धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगकर बना है। लट् लकार, अन्य पुरुष, एक वचन में इसका रूप 'लोकते' बनता है। अतः 'लोक' शब्द का अर्थ है- 'देखने वाला'। इस प्रकार से देखने वाला समस्त जन समुदाय 'लोक' शब्द से अभिहित होगा। ऋग्वेद में यह शब्द अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है। जनसाधारण हेतु प्रयुक्त लोक के लिए जन शब्द का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद में 'पुरुष सूक्त' में प्रयुक्त 'लोक' शब्द 'जीव' और 'स्थान'- इन दो अर्थों में आया है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में 'लोक' शब्द प्रत्येक वस्तु में परिव्याप्त व सर्वप्रसारित रूप में देखा जा सकता है। महर्षि पाणिनी ने भी वेद से पृथक् लोक सत्ता स्वीकार की है। भरतमुनि ने नाट्य शास्त्र में लोकधर्मी प्रवृत्तियों की चर्चा करते हुए लोक की उपस्थिति स्वीकारी है। महर्षि व्यास ने भी महाभारत में जन सामान्य के रूप में 'लोक' शब्द का प्रयोग किया है।

1.3.1 प्राचीन भारतीय साहित्य में लोक शब्द की उपस्थिति

प्राचीन भारतीय साहित्य में भी 'शिष्ट' तथा 'लोक' दो प्रकार की स्पष्ट विभाजक रेखा थी। शिष्ट के अन्तर्गत प्रतिभावान व समाज के अग्रगणनीय लोगों की गणना थी। यह वर्ग अभिजात वर्ग के नाम से भी जाना जाता था। लोक के अन्तर्गत वो सामान्य जनता थी जो बौद्धिक विकास की दृष्टि से अपेक्षाकृत कम उन्नत थी। इस दृष्टि से लोक संस्कृति का उत्स भी जनता थी जो शिष्ट संस्कृति की सहायक थी। डा. कृष्ण देव उपाध्याय के अनुसार 'ऋग्वेद' शिष्ट संस्कृति का परिचायक है तो 'अथर्ववेद' लोक संस्कृति का। 'अथर्ववेद', 'ऋग्वेद' का पूरक है। अथर्ववेद के विचारों का धरातल जन-जीवन है तो ऋग्वेद का विशिष्ट जन-जीवन है।

प्रो. बलदेव उपाध्याय ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'गृह्य सूत्रों में लोक संस्कृति' में पारस्कर और आश्वलायन गृह्य सूत्रों में जनता में प्रचलित लोक विश्वासों का वर्णन माना है। इसीप्रकार जातक कथाओं में भी लोक जीवन का विस्तार से वर्णन है। रामायण आदि ग्रंथों में सुग्रीव, बाली और जाम्बवान इत्यादि उसी लोक के प्रतिनिधि हैं जो आज भारत देश में एक विशाल जन-समूह के रूप में विद्यमान हैं। रामायण के अनेक श्लोकों से पता लगता है कि उस काल में भी लोक और शिष्ट दो प्रकार की भाषाएँ प्रचलित थीं। सामान्य जन लोक भाषा और शिष्ट जन परिष्कृत भाषा का प्रयोग करते थे। महाभारत में भी 'लोक' शब्द की उपस्थिति है। कवि कुलगुरु कालिदास के महान ग्रथों में भी शिष्ट सस्कृति और लोक संस्कृति का रूप देखने को मिलता है।

1.3.2 पाश्चात्य साहित्य में लोक शब्द की उपस्थिति

सर्वसाधारण की उपस्थिति तलाशने के लिए सर्वप्रथम यूरोपीय विद्वानों ने पहल की। वे सामान्य जन के रीति-रिवाज, अन्धविश्वास व प्रथा परम्परा का विशेष रूप से अध्ययन करना चाहते थे। सर्वप्रथम सन् 1987 में जॉन आब्रे ने 'रिमेन्स ऑफ जेंटिलिज्म एण्ड जूडाइज्म' नामक

पुस्तक लिखी। इसके बाद जेब्रन्ड ने 'ऑब्जर्वेशन ऑन पॉपुलर एण्टीक्विटीज' नामक पुस्तक लिखी, जिसमें 19वीं शताब्दी के पूर्व के लोक जीवन का अनुशीलन किया गया था। इस पुस्तक का प्रकाशन 1877 में हुआ। यही कालान्तर में 'फोक लोर' या लोक वार्ता के रूप में भी सामने आया है, जिसमें लोक संस्कृति का अध्ययन विश्लेषण किया जाता है, इस दिशा में कार्य करने वालो में डा. फ्रेजर, इ.बी.टायलर, विलियम ग्रिम, जेकब ग्रिम इत्यादि प्रमुख हैं। डा. बारकर ने फोक शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'फोक' से सभ्यता से दूर रहने वाली किसी पूरी जाति का बोध होता है। परंतु इसका यदि विस्तृत अर्थ लिया जाये तो किसी सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इस नाम से पुकारे जा सकते हैं। लेकिन 'फोक लोर' के सम्बन्ध में 'फोक' का अर्थ 'असंस्कृत लोक' है। दूसरा शब्द 'लोर' एंग्लो सैक्शन' 'लर' (संत) शब्द से निकला है जिसका अर्थ है 'सीखा गया' अर्थात् ज्ञान। इस प्रकार 'फोक लोर' का अर्थ हुआ 'असंस्कृत लोगों का ज्ञान'।

बोध प्रश्नः-

टिप्पणी-

1. अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग किजिए।

2. इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 1. 'लोक' का शाब्दिक अर्थ बताइए ?

.....
.....
.....

प्रश्न 2. फोक शब्द का कोशगत अर्थ क्या है?

.....
.....
.....

नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं कुछ गलत उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

क. लोक शब्द संस्कृत के लोक धातु से घञ् प्रत्यय मिलाकर बना है। ( )

ख. महर्षि व्यास ने भी महाभारत में जन सामान्य के रूप में 'लोक' शब्द का प्रयोग किया है( )

1.3.3 'फोक' शब्द के विविध अर्थ

डॉ.राम नरेश त्रिपाठी ने 'फोक' शब्द का अर्थ ग्राम किया है। वास्तव में ग्राम शब्द उस अर्थ की पुष्टि नहीं कर पाता जिसकी ध्वनि 'फोक' में निहित है क्योंकि लोक की सत्ता केवल गाँव तक ही सीमित नहीं है। 'फोक' के अर्थ में 'जन' शब्द का भी प्रयोग हुआ है लेकिन इसके लिए सर्वाधिक सटीक शब्द 'लोक' है। इस शब्द की एक अपनी परम्परा है। इस 'लोक' शब्द का उल्लेख प्राचीनतम भारतीय साहित्य में भी उपलब्ध है।

1.4 'लोक' शब्द की परिभाषा

विविध विद्वानों ने लोक शब्द को अनेक रूप से परिभाषित किया है -

1. डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार,''लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है। लोक कृत ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वभूता माता, पृथ्वी, मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणात्मक रूप है।''

इस प्रकार वासुदेव शरण अग्रवाल ने लोक के अर्थ को एक बड़ा विस्तार दे दिया है।

2. डा. सत्येन्द्र ने अनुसार-''लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।'' डा. सत्येन्द्र की परिभाषा के अनुसार लोक सीधे-सादे, सरल ग्राम्य वर्ग की अभिधा बना है। यह वह वर्ग है जो शिक्षित भी नहीं है।

3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचार कुछ इस प्रकार हैं- ''लोक' शब्द का अर्थ 'जन-पद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुयें आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं।'' आचार्य द्विवेदी जी ने लोक की व्याप्ति ग्राम और नगर दोनों में मानी है। निश्चित रूप से ये लोग शिक्षित नहीं हैं, आचार-व्यवहार में भी परिष्कृत नहीं हैं; लेकिन सरल और निष्कपट हैं।

4. डा. कृष्णदेव उपाध्याय ने 'लोक' को परिभाषित करते हुए लिखा है- ''आधुनिक सभ्यता से दूर, अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास करने वाली, तथाकथित अशिक्षित एवं असंस्कृत जनता को 'लोक' कहते है जिनका जीवन दर्शन और रहन-सहन प्राचीन परम्पराओं, विश्वासों तथा

आस्थाओं द्वारा परिचालित एवं नियंत्रित होता है।'' डा. उपाध्याय के अनुसार लोक को प्राकृतिक परिवेश में सरल जीवन जीने वाले लोगों के रूप में पहचाना है, लेकिन ये लोग अपनी बनाई परम्परा का ही निर्वाह करते हैं। इनके अपने विश्वास, अपनी आस्थाएँ और जीवन जीने का अपना अंदाज होता है।

5. डा. देव सिंह पोखरिया के अनुसार -''लोक मानव समाज के वह सामूहिक इकाई है, जो अपने नैसर्गिक और स्वाभाविक रूप में अभिजात्य बंधनों तथा परम्पराओं से रहित; पाण्डित्य, चमत्कार तथा शास्त्रीयता से दूर स्वतंत्र एवं पृथक जीवन का प्रचेता है और इसी का साहित्य लोक साहित्य है।'' डा. पोखरिया ने लोक के अन्तर्गत उन लोगों को रखा है जो स्वच्छन्द जीवन जीने के आदी हैं।

1.5 सारांश

इस प्रकार आप समझ गए होंगे कि वास्तव में लोक एक स्वाभाविक और सरल मानव समाज है जो परम्पराओं और चिरकाल से चली आ रही मान्यताओं का पालन करता है। यह अहंकार से शून्य और प्रकृति के नजदीक है और तथाकथित सभ्य समाज से दूर आदिम अभिव्यक्ति को प्रस्तुति देता है। अंग्रेजी में 'लोक' के लिए 'फोक' शब्द प्रचलित है जो एंग्लोसेक्शन 'फोल' का पर्याय है और जिसका शाब्दिक अर्थ आदिम है।

बोध प्रश्न:-

टिप्पणी-

1. अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग किजिए।

2. इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 3. 'लोक' शब्द से आप क्या समझते हैं ? संक्षिप्त उत्तर दीजिए?

.....

.....

.....

नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं कुछ गलत उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

ग. लोक जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। ( )

घ. लोक अभिजात्य संस्कार से दूर परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ( )

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. 'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोक' (दर्शन) धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगकर बना है।1 लट् लकार, अन्य पुरुष, एक वचन में इसका रूप 'लोकते' बनता है। अतः 'लोक' शब्द का अर्थ है- 'देखने वाला'।

उत्तर 2. डा. बारकर ने फोक शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'फोक' से सभ्यता से दूर रहने वाली किसी पूरी जाति का बोध होता है। 'फोक' का अर्थ 'असंस्कृत लोक' है।

उत्तर 3. लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार और पाण्डित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है। यह सरल स्वाभाविक जीवन जीता हुआ परम्पराओं के प्रवाह में जीवित रहता है।

2. सही गलत उत्तर

क. (√)

ख. (√)

ग. (√)

घ. (√)

1.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिद्धान्त कौमुदी, वैंकेटश्वर प्रेस, बम्बई, 1989
2. ऋ0वे0 3/53/12
3. नाभ्या आसीदंतरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।

   पद्भ्यां भूमिर्दिद्शः श्रोतात्तथा लोकां अकल्पयन्।। वही0 ऋग्वेद 10/90/24
4. बहु व्याहितो वा अयं बहुशो लोकः क एतद् अस्य पुनरीहितो अपात्, जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण 3/28
5. अज्ञान तिमिरान्धस्य लोकास्य तु विचेष्टतः।

   ज्ञानांजन शलाकामिर्नेत्रोन्मीलन कारकम्।। महाभारत आदिपर्व 1/84

6. लोक साहित्य की भूमिका, डा. कृष्णदेव उपाध्याय

7. अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः। गीता 15/18

8. लोक साहित्य की भूमिका, डा. कृष्ण देव उपाध्याय, पृ0 16

1.8 उपयोग पाठ्य सामग्री

1. लोक साहित्य की भूमिका, डा. कृष्ण देव उपाध्याय, साहित्य भवन प्रा.लि. इलाहाबाद।

2. लोक संस्कृति की रूपरेखा, डा. कृष्ण देव उपाध्याय, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. लोक के स्वरूप एवं प्रवृत्ति को स्पष्ट कीजिए।

इकाई 2 लोक साहित्य स्वरूप एवं प्रवृत्ति

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 लोक साहित्य की परिभाषा
    2.3.1 लोक साहित्य का सामान्य परिचय
    2.3.2 लोक साहित्य और लोक वार्ता
    2.3.4 लोक साहित्य और अभिजात साहित्य
2.4 लोक साहित्य की उपादेयता
    2.4.1 लोक साहित्य का वर्गीकरण
2.5 लोक गाथाओं के प्रकार
2.6 लोकोक्तियों का वर्गीकरण
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

लोक साहित्य की मौखिक परंपरा रही है। मानव जीवन के साथ ही उसके सुख दुःख की अनुभूतियाँ शब्द द्वारा अभिव्यक्त होती रही हैं। मानव जीवन के साथ ही इस लोक साहित्य की सृष्टि होती रही है। मनुष्य अपने आदिम रूप में प्रकृति देवता का उपासक था और सहज-सरल प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था। उसका आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज सरल और स्वाभाविक थे। उसका जीवन आडम्बर और कृत्रिमता से रहित था। अपने जीवन के प्रतिपल के अनुभव वह सहज आह्लाद के क्षणों में गीतों और कथा कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त करने लगा। यह अभिव्यक्ति नितान्त मौखिक थी और इसका उद्देश्य भी केवल मनोरंजन प्राप्त करना ही था। ऐसा स्वच्छन्द, सरल, अकृत्रिम, अवशिष्ट साहित्य जो लिप्यंतरित कर लिया गया है, लोक साहित्य की कोटि में आता है। यहाँ हमारा मन्तव्य ऐसे साहित्य का अध्ययन-विश्लेषण करना रहेगा।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

1. लोक साहित्य की स्वरूप और प्रवृत्तियों को हृदयंगम कर सकेंगे।
2. लोक साहित्य की विविध विविधाओं से परिचय प्राप्त करेंगे।

2.3 लोक साहित्य की परिभाषा

'लोक साहित्य' शब्द दो शब्दों के योग से निर्मित है-'लोक' तथा 'साहित्य' अंग्रेजी के 'फोक लिटरेचर' के पर्याय के रूप में हिन्दी में 'लोक साहित्य' शब्द का प्रयोग होता है। लिटरेचर शब्द 'लैटर्स' से निकला है जिसका अर्थ साहित्य के केवल लिखित और पठित रूप को अभिव्यक्ति देता है। डा. पोखरिया के अनुसार ''साहित्य की आत्मा केवल 'लिपि' में ही संकुचित नहीं हो सकती अतः मौखिक साहित्य को भी इसके अन्तर्गत समाहित करके साहित्य को और भी व्यापक बनाया जा सकता है।''[1] डा. सत्येन्द्र भी कुछ यही विचार रखते हैं- ''साहित्य के इस विस्तृत अर्थ में आज मनुष्य की वह समस्त सार्थक अभिव्यक्ति सम्मिलित मानी जायेगी, जो लिखित या मौखिक हो, किंतु जो व्यवसाय क्षेत्र की न हो।''[2]

डा. स्वर्णलता के अनुसार- ''लोक साहित्य का क्षेत्र बड़ा विशद् है। अत्यंत आदिम, जंगली अभिव्यक्तियों से लेकर शिष्ट साहित्य की सीमा तक पहुँचने वाली समस्त अभिव्यक्ति लोक साहित्य के अन्तर्गत आती है।''[3]

डा. सत्येन्द्र मिश्रा के अनुसार- ''लोक साहित्य का मूल्य केवल साहित्य की दृष्टि से उतना नहीं होता जितना उन परम्पराओं की दृष्टि से होता है जो नृविज्ञान के किसी पहलू पर प्रकाश डालती है। इस साहित्य को आदि मानव की आदिम प्रवृत्तियों का कोश कह सकते हैं।''[4]

डा. सत्येन्द्र ने लोक साहित्य की विस्तार से चर्चा करते हुए कहा है-''लोक साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त बोली या भाषागत अभिव्यक्ति आती है, जिसमें (अ) आदिम-मानस के अवशेष उपलब्ध हों। (आ) परम्परागत मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत उपलब्धि हो, जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो और जो लोक-मानस की प्रवृत्ति में समाई हुई हो। (इ) कृतित्व हो, किन्तु वह लोक मानस के सामान्य तत्वों से युक्त हो, कि उसके किसी व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध रहते हुए भी लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करे।''[5]

डा. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार- ''लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्तित्व ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक-समूह अपना मानता है और जिसमें लोक की युग-युगीन वाणी-साधना समाहित रहती है। जिसमें लोक-मानस प्रतिबिम्बित रहता है।''[6]

डा. त्रिलोचन पाण्डेय के मतानुसार-''जन साहित्य उन समस्त परम्परित, मौखिक तथा लिखित रचनाओं की समष्टि कहा जा सकता है, जो किसी एक व्यक्ति या अनेक व्यक्तियों द्वारा निर्मित होते हुए भी आज सामान्य जन समूह का अपना ही कृतित्व माना जाता है, जिसमें किसी जाति, समाज या एक क्षेत्र में रहने वाले सामान्य लोगों की परम्पराएँ, विशेष प्रवृत्तियाँ, आचार-विचार, रीति-नीतियाँ, वाणी-विलास आदि समाहित रहते हैं।''[7]

डा. विद्या चौहान का मत है-''लोक में व्याप्त प्राणियों के जीवन का मुखरित व्यापार लोक साहित्य है, जिसमें क्षण-क्षण की अनुभूतियाँ, मनोवेग, हृदयोद्गार तथा क्रिया व्यापार सजीव साकार होते हैं। विश्व के विशाल प्रांगण में जो सहज और सामान्य सत्य रूप है, लोक साहित्य उसकी भी विवृत्ति करता है, देश-काल कि सीमाओं के पार अनवरत गतिशील युग की सामान्य चेतना की प्रत्येक गति का, सुषुप्ति और जागृति का, धर्म और नीति का स्वाभाविक चित्रण इसमें रहता हैं।''[8]

डा. देव सिंह पोखरिया के अनुसार-''लोक की भाषा अथवा बोली में, मौखिक और परम्परागत रूप से प्रचलित लोक मानस की कंठानुकंठ निर्वैयक्तिक, भावावेग पूर्ण, सम्पूर्ण जीवनानुभूतियों की सजीव अभिव्यक्ति ही लोक साहित्य है।''

डा. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार-''सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली, अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर जनता है उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि, सुख-दुःख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है उसे लोक साहित्य कहते हैं। इस

प्रकार लोक साहित्य जनता का वह साहित्य है जो जनता के द्वारा, जनता के लिए लिखा गया हो।''[9]

2.3.1 लोक साहित्य का सामान्य परिचय

विश्व के सभी देशों में लोक साहित्य का रूप लगभग एक-सा है। संसार के सभी देश के निवासी अपनी प्रारिम्भक अवस्था में प्रकृति देवी की उपासना करते थे और प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते थे। उनका जीवन आचार-व्यवहार, रहन-सहन अत्यंत सरल, निश्च्छल और स्वभाविक था। वे कृत्रितमता और आडम्बर से कोसों दूर थे। वे प्रकृति की निश्च्छल गोद में स्वाभाविक जीवन जी रहे थे। उनके हास-परिहास व दैनिक क्रिया कलापों में अत्यंत स्वाभाविकता थी। मन के उल्लास की अभिव्यक्ति के रूप में वे भी साहित्य रचना करते थे लेकिन उनके द्वारा रचे गए साहित्य और आज के साहित्य में पर्याप्त अन्तर है। उनका साहित्य सहज, सरल किसी शास्त्रीय रूढ़ियों में आबद्ध नहीं था, न ही कथा विधान में किसी विशेष शिल्प की आवश्यकता थी। उनके साहित्य में केवल स्वाभाविकता, सरलता और स्वच्छन्दता निहित थी। उनका साहित्य उतना ही स्वाभाविक था जितना कि जंगल में किसी फूल का अचानक खिल जाना, नदी का कल-कल ध्वनि में बहते रहना या आकाश में किसी चिड़िया का स्वच्छन्दता से उड़ना। आज उसी साहित्य के जो अवशिष्ट सुरक्षित हैं वे लोक साहित्य के नाम से जाने जाते हैं।[10]

लोक साहित्य की विशेषताएँ-

डा. देव सिंह पोखरिया ने लोक साहित्य की विशेषताओं को इस प्रकार रेखांकित किया है -

1. लोक साहित्य श्रुति-परम्परा पर आधारित होता है और यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी तथा कंठानुकंठ परम्परित रहता है।
2. किसी व्यक्ति अथवा समूह द्वारा सृजित होकर भी इसमें निर्वैयक्तिकता होती है।
3. इसमें द्विरुक्ति और आवृत्तिमूलकता होती है।
4. नाम परिगणनात्मकता रहती है।
5. इसमें नैसर्गिक सहजता एवं अकृत्रिमता होती है।
6. गेयता एवं रसात्मकता का प्राधान्य होता है।
7. शिल्पगत शास्त्रीय आग्रह नहीं होता है।
8. सम-सामयिकता की सटीक अभिव्यक्ति एवं गतिशीलता होती है।[11]

लोक साहित्य को जन-साहित्य भी कह दिया गया है। राहुल सांकृत्यायन, धीरेन्द्र वर्मा, दशरथ ओझा, डा. त्रिलोचन पाण्डे, सदृश विद्वान जन-साहित्य को लोक-साहित्य के पर्याय के रूप में देखते हैं। लेकिन डा. नामवर सिंह का मत थोड़ा अलग है। उनका कहना है, ''जन-साहित्य औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न समाज व्यवस्था की भूमिका में प्रवेश करने वाले सामान्य जन का साहित्य है। इसलिए जन-साहित्य, लोक-साहित्य से इसी अर्थ में भिन्न है कि लोक-साहित्य जहाँ जनता के लिए जनता ही द्वारा रचित साहित्य है, वहाँ जन-साहित्य जनता के लिए व्यक्ति द्वारा रचित साहित्य है।''[12] वास्तविकता भी यही है कि जन-साहित्य में व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य बना रहता है लेकिन लोक-साहित्य में रचनाकार का व्यक्तित्व तिरोहित हो जाता है और वह लोक मानस से तदाकार हो जाता है। कुछ लोग लोक-साहित्य को ग्राम साहित्य भी मानते हैं। रामनरेश त्रिपाठी व देवेन्द्र सत्यार्थी सदृश विद्वानों का मत यही है। लेकिन 'ग्राम' और 'लोक' एक ही अर्थ को प्रतिध्वनित नहीं करते। 'ग्राम' शब्द 'लोक' को एक संकुचित क्षेत्र में सीमित कर देता है। ग्राम साहित्य से तो केवल ग्रामीण क्षेत्र में प्रचलित साहित्य का ही आभास मिलता है जबकि लोक साहित्य में 'ग्राम' और 'नगर' दोनों के ही साहित्य का समाहार हो जाता है। डा. शंकुन्तला वर्मा इसी मत की पुष्टि करती हुई कहती हैं-''ग्राम गीत मात्र ग्राम की सम्पत्ति कही जायेगी, जबकि लोक गीत का सृजन ग्राम, नगर, जंगल कहीं भी हो सकता है पर यह समूचे लोक की सम्पत्ति होगी। ग्राम गीत लोक गीत हो सकता है, किंतु लोक गीत अनिवार्यतः और मात्र ग्राम गीत ही हो यह आवश्यक नहीं।''[13] इस प्रकार स्पष्ट है कि लोक-जीवन को प्रतिध्वनित करने वाले साहित्य को लोक-साहित्य का ही नाम सर्वथा उपयुक्त है।

बोध प्रश्नः-

प्रश्न 1. 'लोक साहित्य' का क्या तात्पर्य है? स्पष्ट उल्लेख कीजिए ?

.....

.....

.....

नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं कुछ गलत उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

क. लोक साहित्य को आदिम साहित्य कह सकते हैं। ( )

ख. लोक मानस की सरल और भावावेगपूर्ण जीवनानुभूति ही लोक साहित्य है। ( )

2.3.2 लोक साहित्य और लोक वार्ता

'लोक साहित्य' और 'लोक वार्ता' दो भिन्न अर्थों के वाहक हैं। 'लोक वार्ता' अंग्रेजी भाषा के 'फोक लोर' का हिन्दी अनुवाद है। 'लोर' शब्द की उत्पत्ति एंग्लोसेक्शन शब्द 'लारे' से हुई है जिसका अर्थ है जो सीखा जाए। इस प्रकार 'फोक लोर' शब्द का अर्थ आदिम या

सुसंस्कृत लोगों के ज्ञान से है। पाश्चात्य विद्वान डब्ल्यू. जे. थॉमस ने सर्वप्रथम 'फोक लोर' शब्द का प्रयोग किया। हिन्दी में वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसके लिए 'लोकवार्ता', हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'लोक संस्कृति', डा. सत्येन्द्र ने 'लोक तत्व' आदि नामों का प्रयोग किया। आज 'फोक लोर' के लिए 'लोक संस्कृति' और 'लोक वार्ता' शब्द ही अधिक प्रचलित है। अंग्रेजी के विद्वान ऐरेलिया एस्पिनीजा के अनुसार-'फोकलोर की सामग्री अधिकांश रूप में सामाजिक मानव विज्ञान शास्त्र की सामग्री के समान है। ..... विशिष्ट रूप से फोकलोर के अन्तर्गत लोक विश्वास, प्रथायें, अन्ध-विश्वास, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ, गीत, पुराण-कथा, अवदान, लोक -कथा, धार्मिक संस्कार, जादू, डायन-विद्या तथा आदिवासियों एवं अशिक्षित लोगों के क्रिया-कलाप आते हैं। .....फोकलोर किसी सभ्यता की पद्धति अथवा प्रकार को स्थाईत्व प्रदान करता है तथा इसके अध्ययन से हम किसी सभ्यता के अभिप्राय तथा उसके वास्तविक अर्थ को समझते हैं।'[14]

जार्ज फास्टर- इस विद्वान के अनुसार, 'फोकलोर के अध्ययन का क्षेत्र पहेलियों, गीतों, लोकोक्तियों, लोक विश्वासों तथा विभिन्न प्रकार के अन्ध-विश्वासों तक विस्तृत है। ....इसके अतिरिक्त बच्चों के खेल, पालने के गीत, संस्कार, विविध विधि-विधान तथा जादू एवं डायन शास्त्र भी आता है।'[15]

आर्चर टेलर- अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के अमेरिकन विद्वान् आर्चर टेलर का मत है कि- 'फोकलोर की परिभाषा के भीतर निम्नांकित सभी विधाओं का अन्तर्भाव हो जाता है जो निम्नांकित हैं- विभिन्न प्रकार की लोक कथायें, लोक गाथायें, लोक गीत, बालकों के गीत, जादू, लोकोक्तियाँ और पहेलियाँ आदि।'[16]

जे. कुरथ- इस विद्वान का अभिप्राय यह है कि- 'फोकलोर वह विज्ञान है जिसमें पारम्परिक लोक विश्वास, लोक कथा, अन्ध-विश्वास, सूक्ति, संस्कार, प्रथा, खेल, गीत तथा नृत्य का वर्णन किया गया हो।'[17]

'लोक साहित्य' और 'लोक वार्ता' में पर्याप्त अन्तर है। 'लोक साहित्य' 'लोक वार्ता' का एक अंग है। 'लोक वार्ता' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में होता है। इसमें 'लोक परम्पराओं', 'लोक प्रथाओं', 'लोक विश्वासों', 'लोक साहित्य', 'नृतत्व', 'समाज शास्त्र', 'भाषा शास्त्र', 'इतिहास' तथा 'पुरातत्व' आदि का अध्ययन होता है। 'लोक वार्ता' तो सम्पूर्ण 'लोक संस्कृति' का विस्तार से अध्ययन करने वाला विज्ञान है। 'लोक साहित्य' का क्षेत्र 'लोक वार्ता' की अपेक्षा संकुचित है। 'लोक वार्ता' लोक का समूचा ज्ञान है जबकि 'लोक साहित्य' केवल साहित्य का। 'लोक वार्ता' एक विज्ञान है जबकि 'लोक साहित्य' एक कला। डा. कृष्ण देव उपाध्याय के शब्दों में-''लोक साहित्य' 'लोक संस्कृति'('फोक लोर') का एक भाग है, उसका एक अंश है। यदि 'लोक संस्कृति' की उपमा किसी विशाल वट वृक्ष से दी जाय तो, 'लोक साहित्य' को उसकी एक शाखा मात्र समझना चाहिए। 'लोक संस्कृति' का क्षेत्र विस्तार

अत्यंत व्यापक है, परंतु 'लोक साहित्य' का विस्तार संकुचित है। 'लोक संस्कृति' की व्यापकता जन-जीवन के समस्त व्यापारों में उपलब्ध होती है, परंतु 'लोक साहित्य' जनता के गीतों, कथाओं, गाथाओं, मुहावरों और कहावतों तक ही सीमित हैं। 'लोक साहित्य' अंग है तो 'लोक संस्कृति' अंगी है। 'लोक संस्कृति' में 'लोक साहित्य' का अन्तर भाव हो जाता है, परंतु लोक साहित्य में लोक संस्कृति का समावेश होना संभव नहीं।''[18]

इसप्रकार आप समझ ही गए होंगे कि 'लोक-वार्ता' में ऐतिहासिक, मनोविज्ञानिक और सांस्कृतिक विशेषताओं के आधार पर मानव समाज का विश्लेषण करके प्राप्त निष्कर्षों द्वारा सामान्य नियम निर्धारण किया जाता है। लोक साहित्य लोक की कल्पना कला, सौंदर्य और भावों की साहित्यिक अभिव्यक्ति है।

बोध प्रश्नः-

प्रश्न 2. 'लोक साहित्य' और 'लोक वार्ता' अन्तर बताइये?

.....

.....

.....

नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं कुछ गलत उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

ग. लोक वार्ता, लोक संस्कृति का व्यापक अध्ययन करने वाला गतिशील विज्ञान है। ( )

घ. लोक साहित्य, लोक वार्ता का एक अंग है। ( )

2.3.4 लोक साहित्य और अभिजात साहित्य

डा. देव सिंह पोखरिया के अनुसार ''जिस साहित्य में अभिजात गुण विद्यमान हों, उसे अभिजात, कुलीन, शास्त्रीय अथवा परिनिष्ठित साहित्य कहा जाता है। वस्तुतः कोई भी अनुभूति लोक भाव-भूमि से उठकर ही, परिष्कृत होकर परिनिष्ठित रूप में प्रतिष्ठित होती है। लोक की यही अनुभूति परिष्कार के द्वारा आभिजात्य गुणों से मण्डित होकर अभिजात-साहित्य के रूप में परिणित होती है।''[19] लोक साहित्य परम्परानुमोदित पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से हस्तांतरित होता है। लोक साहित्य में वे सभी अनुभूतियाँ समाहित हैं जो सरल और निर्बाध रूप से अकृत्रिम रूप में अभिव्यक्ति पाती हैं। डा. रामनरेश त्रिपाठी ने लोक साहित्य की तुलना प्रकृति के उस उद्यान से की है जो स्वतंत्र रूप से विकसित होते हैं। जबकि अभिजात साहित्य माली द्वारा निर्मित उस क्यारी के समान है जिसके पौधें कैची से कतर कर एक विशिष्ट अभिरुचि के साथ सजे-संवरे रूप में विकसित होते हैं। लोक साहित्य प्रकृति के अंचल में स्वाभाविक अभिव्यक्ति पाता है। लोक साहित्य मौखिक है, जबकि अभिजात लिखित। लोक साहित्य में सहजता, सरलता,

स्वाभाविकता, नैसर्गिकता और अनुभूति अनिवार्य तत्व के रूप में समाहित रहते हैं, जबकि अभिजात साहित्य में प्रौढ़ता, उक्ति वैचित्र्य, बौद्धिकता, कल्पनाशीलता और क्लिष्टता पायी जाती है। लोक साहित्य में शास्त्रीय सिद्धांतों का निर्वहण नहीं होता जबकि अभिजात साहित्य में यह अनिवार्य लक्षण है। लोक भाषा सरल, व्यावहारिक व आड़म्बर शून्य होती है। इसमें गेयता और संगीतात्मकता स्वतः विद्यमान रहती है, जबकि अभिजात साहित्य में भाषा परिनिष्ठित और परिष्कृत होती है। इसका एक सुनिश्चित व्याकरण होता है। लोक साहित्य में कृत्रिमता का कहीं कोई स्थान नहीं, जबकि अभिजात साहित्य बुद्धिचातुर्य की मांग करता है। अभिजात साहित्य में गेय तत्व होना अनिवार्य नहीं है। लोक साहित्य की गेयता निर्बाध और स्वच्छन्द रूप से प्रवाहित होती है, जबकि अभिजात साहित्य रचने वाला कवि कविता को छन्द के बन्धनों में बाँधता है। लोक साहित्य में अलंकार चमत्कार की होड़ नहीं होती, जबकि अभिजात साहित्य शिल्प-सौन्दर्य के प्रति जागरूक रहता हैं। अभिजात साहित्य लोक साहित्य से ही निकलता है। व्यावहारिक दर्शन के वास्तविक रूप को अभिजात कवि लोक कथाओं से ही प्राप्त करता है। डा. सत्येन्द्र के अनुसार ''रस, छंद, अलंकार और भाषा आदि सभी रूपों में अभिजात-साहित्य लोक साहित्य से प्रभावित रहता हैं अभिजात या परिनिष्ठित-साहित्य की प्रवृत्ति मुख्यतः परिमार्जन की और रहती है। यह सौंदर्य और अनुभूति का वैशिष्ट्य ही नहीं चाहती, अभिव्यक्ति के रूप का भी वैशिष्ट्य चाहती है। अतः इसमें कला ही नहीं कौशल भी आता है। रूप का वैशिष्ट्य और कौशल का उपयोग ऐसे साहित्य को सीमा-रेखाओं में बाँध देता है। यह बंधन आगे चलकर नियम और शास्त्र की परम्परा में पर्यवसित हो जाता है।''[20]

यह तो निर्विवाद सत्य है कि लोक-साहित्य और अभिजात साहित्य परस्पर गुँथे हुए हैं। लोक साहित्य से प्रेरणा लेकर कवि अनुभूति को परिष्कृत कर शास्त्रीय नियम उपनियमों में बाँटकर एक शिष्ट अभिजात साहित्य को जन्म देता है। डा. रघुवंश के विचारानुसार-''लोक की अभिव्यक्ति लोक जीवन की प्रक्रिया का अंग है, पर साहित्यिक अभिव्यक्ति सर्जनात्मक होती है। वह जीवन से उद्भूत, प्रेरित या सम्बद्ध होकर भी तटस्थता अथवा असम्पृक्ति में उसका अंग नहीं हो सकती। साहित्य जीवन का सर्जन है, पुनः जीने की प्रक्रिया है। लोकाभिव्यक्ति के क्षणों में भी समाज के बीच व्यक्ति अपनी सजगता में प्रमुखतः जीवन का अनुभव करता है, जबकि साहित्यिक यर्थाथ जीवन के सर्जन में भी सामाजिक जीवन का अनुभव न करके सर्जन की असम्पृक्त सुख का अनुभव करता हैं।''[21]

बोध प्रश्नः-

प्रश्न 3. 'लोक साहित्य' और 'अभिजात साहित्य' में अन्तर बताइये?

.....

.....

.....

नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं, कुछ गलत। उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

ड़. लोक साहित्य परम्परानुमोदित पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से हस्तांतरित होता है। ( )

च. अभिजात साहित्य परिनिष्ठत और शास्त्रीय साहित्य है। ( )

2.4 लोक साहित्य की उपादेयता

लोक साहित्य का अपना विशिष्ट महत्व है। यह मानव की प्रकृति का सहज ज्ञान है। यह मानव जीवन की अमूल्य थाती है। सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टिकोण से इनका महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। लोक साहित्य के माध्यम से ही किसी समाज की यथा स्थिति व उसकी संस्कृति की सम्पूर्ण झलक मिलती है। जन-समुदाय विशेष की प्रथाएँ, परम्पराएँ, रूढियाँ, विश्वास, मान्यताएँ, रीति-रिवाजों का प्रतिबिम्ब उसके लोक साहित्य में पड़ता है। किसी भी समाज के पारिवारिक और समुदायिक जीवन की जानकारी उस अंचल विशेष के लोक साहित्य के अध्ययन से मिल जाती है। लोक जीवन की आर्थिक, धार्मिक स्थिति भी लोक साहित्य में स्वयमेव अंकित हो जाती है। स्थानीय देवी-देवता, उनका पूजा-विधान लोक धर्म के रूप में जाना जाता है और उसकी प्रामाणिक जानकारी हमें लोक साहित्य से ही प्राप्त होती है। साहित्यिक दृष्टि से भी इनका महत्व कम नहीं है। लोक गीतों में नवल छन्द रूप और नवल अभिव्यक्ति भंगिमा का परिचय मिलता है। लोक साहित्य का अध्ययन अंचल विशेष के इतिहास और भूगोल को जानने में भी सहायक सिद्ध होता है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भी लोक साहित्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। लोक भाषा एक जीवंत भाषा है। इसमें गत्यात्मकता और परिवर्तनशीलता है। लोक साहित्य में मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों का अगाध भण्डार है। इनके प्रयोग से परिनिष्ठित साहित्य समृद्ध होता है। प्रायः लोक भाषा में मिलती-जुलती अभिव्यक्ति के लिए अनेक शब्दों का भण्डार मिल जाता है, जिसका अत्यंत सूक्ष्म अन्तर अर्थ गाम्भीर्य में विलक्षण वृद्धि करता है। इसप्रकार हम कह सकते हैं कि किसी भी अंचल का लोक साहित्य सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक, भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से उस अंचल विशेष का विशेष ज्ञान प्रदान करता है। डा. कृष्ण देव उपाध्याय ने लोक साहित्य के महत्त्व को इन शब्दों में प्रकट किया है- ''लोक साहित्य उस निर्मल दर्पण के समान है जिसमें जनता जनार्दन का अस्तित्व तथा विराट स्वरूप पूर्णरूपेण दिखाई पड़ता है। लोक सांस्कृतिक का जैसा दिव्य तथा अकृतिम प्रतिबिम्ब इस साहित्य में उपलब्ध होता है, उसका दर्शन अन्यत्र कहाँ।''[22]

बोध प्रश्नः-

प्रश्न 4. 'लोक साहित्य' की क्या उपयोगिता है ?

.....

.....

.....

नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं, कुछ गलत। उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

छ. लोक भाषा एक जीवंत भाषा है। ( )

ज. लोक साहित्य में मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों का अगाध भण्डार है। ( )

पाश्चात्य देशों में लोक साहित्य का अध्ययन -

सर्वसाधारण जनता के रीति-रिवाज और रहन-सहन के अध्ययन हेतु सर्वप्रथम यूरोपीय विद्वानों का ध्यान गया और उन्होंने ने सामान्य जनता के द्वारा रचित साहित्य का अध्ययन किया। प्रसिद्ध विद्वान जॉन आब्रे ने तीन सौ वर्ष पूर्व सन् 1987 में 'रीमेंस ऑफ जेटिलिज्म एण्ड जूडाइज्म' नामक पुस्तक में इसकी चर्चा की। इसके लगभग दौ सौ वर्ष पश्चात् जे.ब्रैंण्ड नामक विद्वान ने 'ऑब्जर्वेशन ऑन पोपुलर एण्टीक्वीटिज' नामक पुस्तक में सन् 1877 में लोक जीवन की चर्चा की। 1846 में इंग्लैण्ड के विद्वान विलियम जॉन टॉमस ने 'फोकलोर' नामक शब्द का प्रयोग किया। डा. फ्रेजर, इ.वी.टाइलर, नामक विद्वानों ने भी अपनी-अपनी कृतियों में लोक जीवन को उद्घाटित किया। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान विलियम ग्रिम तथा जेकब ग्रिम ने जर्मनी की लोक कथाओं को एकत्रित करके उनका वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जो 'ग्रिम्स फेयरी टेल्स' के नाम से प्रसिद्ध है। श्लेगल, स्टेंथल, चाइल्ड, प्रो.कीट्रीज, प्रो.गूमर, बिशप परशी इत्यादि भी लोक साहित्य का अध्ययन करने वाले प्रमुख पाश्चात्य विद्वान हैं।

इंग्लैण्ड तथा यूरोप के लगभग सभी देशों में 'फोकलोर सोसायटी' के स्थापना के तहत लोक संस्कृति के साथ-साथ लोक साहित्य का अध्ययन विश्लेषण किया गया है। ठीक इसी प्रकार 'अमेरिकन फोकलोर सोसायटी' के अन्तर्गत वहाँ के लोक साहित्य का अध्ययन संरक्षित है।

भारत में लोक साहित्य की परम्परा -

भारत में लोक साहित्य की परम्परा अत्यंत प्राचीन है। लोक गीतों के बीच हमें पुरातन और पवित्र ग्रंथ ऋग्वेद में मिलते हैं। पद्य या गीत के अर्थ में गाथा शब्द का प्रयोग हुआ है। ब्राह्मण तथा एनी आर्ष ग्रंथों में गाथाओं का विशेष उल्लेख है। प्राचीन काल में किसी राजा के अच्छे काम को लक्षित कर जो लोक गीत समाज में प्रचलित थे वे ही गाथा के नाम से साहित्य में स्वीकृत किये गए। पालिजातक कथाओं में भी अनेक लोक कथाऐं मौजूद हैं। विक्रम संवत् की तृतीय शताब्दी में राजा हाल या शालिवाहन के द्वारा संग्रहीत गाथा 'सप्तसती' में संग्रहीत दोहों में लोक गीत का रूप दिखाई पड़ता है।

2.4.1 लोक साहित्य का वर्गीकरण

लोक साहित्य जन-साधारण के जीवन का दर्पण है। जन-सामान्य जो सोचता और अनुभव करता है वही उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम बनता है। गीत, कहानियाँ, लोकोक्तियाँ, मुहावरे, ग्रामीण जन के हृदयगत विचारों का प्रकाशन ही हैं। विविध विद्वानों ने लोक साहित्य को विविध कोटियों में वर्गीकृत किया है। डा.कृष्ण देव उपाध्याय ने लोक साहित्य को निम्नांकित पाँच वर्गों में वर्गीकृत किया है -

1. लोक-गीत 2. लोक-गाथा 3. लोक-कथा 4. लोक-नाट्य और 5. लोक-सुभाषित।

डा. त्रिलोचन पाण्डे ने लोक साहित्य को सात प्रमुख वर्गों में बाँटा है -

1. लोक गीत (फोक साँग्स) 2. कथा गीत (बैलेड्स) 3. लोक गाथाएँ (फोक इपिक्स) 4. लोक कथाएँ (फोक टेल्स) 5. लोकोक्तियाँ और कहावतें (प्रॉवर्ब्स) 6. पहेलियाँ (रिडिल्स) 7. फुटकर रचनाएँ।

1. लोक-गीत - लोक साहित्य के अन्तर्गत लोक-गीत सर्वप्रमुख हैं। लोक गीतों में जनसामान्य के भाव और अनुभूतियों की व्यापकता सहज रूप से प्राप्त होती है। लोक साहित्य का लगभग अधिकांश भाग लोक गीतों में समाहित है। डा. देव सिंह पोखरिया के अनुसार- ''लोक मानस की सुख दुखात्मक अनुभूति ही अनगढ़, गेय और मौखिक रूप में लोक गीत के रूप में फूट पड़ती है। साहित्यिक दृष्टि से काव्यात्मक गुणों की अभिजात्यता के अभाव में भी इनका अपना अलग ही नैसर्गिक सौन्दर्य होता है।''[23]

डा. राम नरेश त्रिपाठी के अनुसार- ''ग्राम गीत प्रकृतिक के उद्गार हैं। इसमें अलंकार नहीं केवल रस है, छन्द नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है। सभी मनुष्यों के- स्त्री-पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम्य गीत हैं।''[24] इसके स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं-''लोकगीत में जन-जीवन के हर्ष और विषाद, आशा और निराशा, सुख और दुःख, सभी की अभिव्यक्ति होती है। इसमें कल्पना के साथ रसवृत्ति भावना और नृत्य की हिलोर भी अपना काम करती हैं, परंतु ये सब खाद हैं। लोक गीत हृदय के खेत में उगते हैं। इसमें हृदय का इतिहास इस प्रकार व्याप्त रहता है जैसे-प्रेम में अकार्षण, श्रद्धा में विश्वास और करुणा में कोमलता। प्रकृति के गान में मनुष्य इस प्रकार प्रतिबिम्बत होता है- जैसे कविता में कवि, क्षमा में मनोबल और तपस्या में त्याग। प्रकृति संगीतमय है। लोकगीत प्रकृति के उसी महासंगीत के अंश है।''[25] स्पष्ट है कि लोक गीत जन-सामान्य के कंठ से स्वतःस्फूर्त एक भावमयी अभिव्यक्ति है, इसीलिए इसका प्रभाव क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। डा. श्याम परमार इसकी विस्तृत व्याप्ति की चर्चा करते हुए कहते हैं-''इसकी ध्वनि में बालक सोये हैं, जवानी में प्रेम की मस्ती आयी है, बूढ़ों ने मन बहलाये हैं, वैरागियों ने उपदेश का पान कराया है, विरही युवकों ने अपने मन की कसक मिटाई है, विधवाओं ने अपनी एकाकी

जीवन में रस पाया है, पथिकों ने अपनी थकावटें दूर की है, किसानों ने अपने बड़े-बड़े खेत जोते हैं, मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ायें हैं।''[26]

हीरामणि सिंह साथी के अनुसार-''लोक गीत जनमानस की कोख से उपजे धरती के गीत हैं, जिसमें बांसुरी का आकर्षण भी है एवं बीन की मिठास भी; पुरवइया की मादकता भी है और नारी कण्ठों का इन्द्रजाल भी है इनकी बोल में एक युग बोलता है, एक व्यवस्था बोलती है और एक अनुशासित समाज बोलता है। इनमें पीड़ा भी है, उल्लास भी है, अपमान भी है और प्रेम समर्पण का अगाध विस्तार भी है, जहां एक व्यक्ति की बोली समष्टि की बोली बन जाती है।''[27]

लोक गीतों के वैशिष्ट्य को उजागर करते हुए वे कहते हैं ''लोक छन्दों का यह रचना संसार सचमुच बड़ा अद्भुत है। यह रचना भी है और उसका संरक्षण भी करता है। यह बात करता है मौसम की, पशु-पक्षी, खेत-ताल, वन-पहाड़, गांव-गली, राग-रंग की। हमारे व्यक्तित्व के आयाम को सचमुच यहां विस्तार मिलता है। वह निखरता है, संवरता है, लालित्य और आकर्षण के ओर-छोर से वह जुड़ता है।''[28]

डा. चितांमणि उपाध्याय लोक गीतों में लोक जीवन की सच्ची झांकी पाते हैं। वे मानते हैं कि मनुष्य के सामाजिक, पारिवारिक एवं व्यक्तिगत जीवन से जुड़े हुए अनेक मार्मिक चित्र लोकगीतों में उतर आते हैं।[29]

हिन्दी साहित्य कोश में लोक गीत शब्द ने तीन अर्थ दिए हैं-1. लोक में प्रचलित गीत, 2. लोक निर्मित गीत 3. लोक विषयक गीत। इस तरह जो गीत लोक द्वारा निर्मित हों, लोक विषयक हों तथा लोक में प्रचलित हों लोक गीत कहे जाते हैं।[30]

लोक गीतों के भी अनेक उपवर्ग किये जा सकते हैं। लोक गीतों का विभाजन अनेक प्रकार से किया जा सकता है। डा. कृष्ण देव उपाध्याय ने भारतीय लोक साहित्य को छः श्रेणियों में विभक्त किया है जैसे- क. संस्कार सम्बन्धी गीत, ख. ऋतु सम्बन्धी गीत, ग. व्रत सम्बन्धी गीत, घ. देवता सम्बन्धी गीत, ण. जाति सम्बन्धी गीत, च. श्रम सम्बन्धी गीत।

1. संस्कारों की दृष्टि से- भारत धर्म प्राण देश है। यहाँ धर्म को जीवन चर्या से जोड़कर अपनाने की परम्परा चली आयी है। हमारे जीवन में षोड्स संस्कारों का विधान है। जन्म से पूर्व और मृत्यु के बाद तक इन संस्कारों की श्रृंखला चलती रहती है। इनमें गर्भाधान, पुंसवन, जन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह, गवना और मृत्यु प्रधान है। गर्भाधान और पुंसवन संस्कारों की परम्परा भी अब धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है। केवल छः संस्कार मुख्य रूप से आज भी निभाये जाते हैं। इन सभी संस्कारों में देश के सभी प्रांतों में लोक गीतों की परम्परा है। जन्मोत्सव और विवाह आदि में जहाँ प्रसन्नता के स्वर गूँजते हैं वहीं मृत्यु के अवसर पर गाये जाने वाले गीत अत्यंत कारूणिक और हृदय विदारक होते हैं। इन गीतों में मृतात्मा के गुणों का वर्णन करते हुए विलाप की परम्परा है। इन शोक गीतों की संख्या अपेक्षाकृत कम है।

2. ऋतुओं और व्रतों के क्रमानुसार- भारत कृषि प्रधान देश है। यहाँ के ग्रामीण धरती से जुड़े हैं। प्रकृति से नजदीक सम्बन्ध रखते हुए इनके गीतों में बदलती ऋतुओं और उनसे जुड़े त्योहारों का आह्लाद समाया हुआ है। वर्षा, वसंत, हेमंत, शिशिर ऋतुओं में बदलते मौसम का अनुभव और उनसे जुड़े व्रत त्यौहारों के आनन्द की अभिव्यक्ति लोक गीतों में आसानी से मिलती है। जहाँ आषाढ़ का महीना कृषकों को आल्हा गाकर उल्लसित करता है तो वहीं सावन में कजली उनके हृदय की अनुभूतियों का सशक्त साधन है। फागुन में फाग का उल्लास है तो चैत में चैती गाकर वे अपने मनोभावों को शब्द प्रदान करते हैं। यही नहीं इन ऋतुओं से जुड़े हुए व्रतों के लिए भी अनेक लोक गीत रचे गए हैं। 'नाग पंचमी' में जहाँ नाग देवता सम्बन्धी गीत उपलब्ध हैं तो वहीं कृष्ण पक्ष की चतुर्थी में 'बहुरा' और कार्तिक शुक्ल द्वितीया में 'गोधन' की पूजा के विधान के साथ-साथ इष्ट परक इनसे जुडे अनेक लोक गीत प्राप्त होते हैं। भारत में शायद ही ऐसा कोई त्यौहार या व्रत हो जिससे जुड़ा कोई लोक गीत उपलब्ध न हो।

3. रसानुभव के आधार पर- रस नौ प्रकार के माने जाते हैं। लोक गीतों में इन सभी रसों की अभिव्यक्ति मिलती है। श्रृंगार, करुण, वीर, हास्य और शांत रस की अनुभूति इन लोक गीतों में सहजता से मिल जाती है। श्रृंगार रस से सम्बन्धी गीत प्रायः सोहर, जनेऊ, विवाह इत्यादि अवसरों पर गाये जाते हैं। इन गीतों में स्त्री की देह यष्टि का सौन्दर्य, वर की सुन्दरता, संयोग और वियोग के अनेक सुन्दर गीत उपलब्ध हैं। झूमर गीतों में श्रृंगार की प्रचुरता है। करुण रस के गीतों में निर्गुन, सोहनी, रोपनी, सदेई इत्यादि की गणना की जा सकती है। कन्या की विदाई से सम्बन्धीत गीतों में भी करुण रस की रसधारा प्रस्रवित होती है। इन लोक गीतों में कुछ गीत प्रबंधात्मक भी हैं, जो गेय होते हुए भी किसी विशेष घटना को लेकर पद्यबद्ध रचे गए हैं। इसलिए इन्हें लोक गाथा का नाम भी दे दिया गया है। इन गीतों में श्रृंगार, करुण और वीर रस की अनूठी अभिव्यक्ति मिलती है। ढोला मारुरा, आल्हा, लोरकी, सोरठी, बंजारा, गोपीचन्द भरथरी, राजा रसालु, राजुला मालूसाही, सदेई, कालू भंडारी, सिदुवा-बिदुवा इत्यादि गीत इसी कोटी के हैं। लोक गीतों में हास्य रस अपेक्षाकृत कम होते हुए भी अपना स्थान रखता है। देवर-भाभी, जीजा-साली से सम्बन्धीत गीतों में हास्य का पुट अनायास मिल जाता है। यही नहीं कई होली गीतों में श्रृंगार के साथ-साथ हास्य रस की मधुर अभिव्यंजना दिखाई पड़ती है। लोक गीतों में पाये जाने वाले भजनों में जिसमें गंगा, तुलसी, तीर्थों का वर्णन होता है, उनमें शांत रस पाया जाता है। संध्या तथा रात्रि के समय गाये जाने वाले भजनों, 'संझा' और 'पराती' में भी शांत रस का उद्रेक होता है और भक्ति भाव जागता है।

4. देव सम्बन्धी- भारतवर्ष विभिन्न धर्मो और सम्प्रदायों का आश्रय स्थल है। यहाँ 33 कोटि देवताओं की कल्पना की गई है। इन विभिन्न देवी-देवताओं की आराधना और पूजा के लिए अनेक स्तुति परक गीतों का विधान है। राम, कृष्ण, हनुमान, शिव, गौरा, दुर्गा, चण्डी, गंगा, यमुना से जुड़े गीतों के साथ-साथ अनेक स्थानीय देवी-देवता जैसे छटी माता, शीतला माता और उत्तराखण्ड के जागर गीतों में गोरील, गोल देवता, नागर्जा, सैम देवता, भैरव देवता इत्यादि

से सम्बन्धित लोक गीतों का प्रचलन है। भारत के लगभग सभी प्रांतों में अपने-अपने स्थानीय देवताओं को प्रसन्न करने के लिए लोक गीतों के गायन की परम्परा है। इन गीतों की इतनी अधिकता है कि इसे एक पृथक श्रेणी या वर्ग में परिगणित किया जा सकता है। लगभग सभी आदिवासी गीतों में देवताओं से सम्बन्धित गीतों को गाया जाता है।

5. जाति सम्बन्धी- कुछ लोक गीत ऐसे भी हैं जो केवल कुछ विशेष जातियों में ही गाये जाते हैं। अहीर जाति के लोगों का जातीय गीत 'विरहा' है। इसी प्रकार दुःसाध जाति के लोग पचरा गाते हैं। इसी प्रकार चमारों के गीत, गोड़ों के गीत, कहारों के गीत, धोबियों के गीत, माली के गीत पाये जाते हैं। गेरुआ वस्त्र धारण करके 'सांई' नामक कुछ साधु सारंगी पर गोपी चन्द और भरथरी की गाथा गाते हैं। इसीप्रकार गढ़वाल में 'औजी' जाति विशेष प्रकार के मांगलिक गीत गाती हैं।

6. श्रम सम्बन्धी गीत- कुछ लोक गीत ऐसे हैं जो विशेष कार्य करते हुए ही गाये जाते हैं। जैसे खेतों में धान रोपते समय जो गीत गाते हैं उन्हें 'रोपनी' के गीत, खेत निराते समय 'निरवाही' या 'सोहनी' के गीत, जाँत पीसते समय 'जैंतसार', तेल पेरते समय 'कोल्हू के गीत' आज भी गाँवों में गाये जाते हैं। इन गीतों को श्रम गीतों की श्रेणी में रखा गया है। गीत गाते समय एक तो थकान का अनुभव नहीं होता, दूसरा काम में मन लगा रहता है।

पं0 रामनरेश त्रिपाठी जी ने लोक गीतों को ग्यारह वर्गों में वर्गीकृत किया है-

1. संस्कार सम्बन्धी गीत 2 चक्की और चरखे के गीत 3 धर्म गीत 4 ऋतु सम्बन्धी गीत 5 खेती गीत, 6 भिखमंगी गीत 7 मेले के गीत 8 जाति गीत 9 वीर गाथा गीत 10 गीत कथा 11 अनुभव के वचन।31

डा. कृष्ण देव उपाध्याय के अनुसार यह वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं है। चक्की और चरखें के गीतों का अन्तर्भाव, श्रम सम्बन्धी गीतों में हो जाता है, धर्म और व्रत गीत एक दूसरे ही के पूरक हैं, खेती, भिखमंगों और मेले गीत विविध गीतों के अन्तर्गत आ सकते हैं, वीर गाथा और गीत गाथा लोक गाथाओं के अन्तर्गत आ जाती हैं। अनुभव गीतों के सूक्ति के अन्तर्गत लिया जा सकता है।

पारीक का वर्गीकरण -

प्रसिद्ध राजस्थानी लोक गीतों के विद्वान पं.सूर्यकरण पारीख ने राजस्थानी लोक गीतों को इस प्रकार वर्गीकृत किया है-

1. देवी-देवताओं और पितरों के गीत 2 ऋतुओं के गीत 3 तीर्थों के गीत 4 व्रत-उपवास और त्योहारों के गीत 5 संस्कारों के गीत 6 विवाह के गीत 7 भाई-बहन के प्रेम के गीत 8 साली-सालेल्याँ के गीत 9 पति-पत्नि के गीत 10 पणिहारियों के गीत 11 प्रेम के गीत 12 चक्की पीसते समय के गीत 13 बालिकाओं के गीत 14 चरखे के गीत 15 प्रभाती के गीत 16 हरजस-राधा

कृष्ण के प्रेम के गीत 17 धमालें-होली के अवसर पर पुरुषों द्वारा गए गीत 18 देश-प्रेम के गीत 19 राजकीय गीत 20 राज-दरबार, मजलिस, शिकार, दारू के गीत 21 जन्मे के गीत 22 सिद्ध पुरुषों के गीत 23 वीरों के गीत, ऐतिहासिक गीत, 24 ग्वालों के गीत 25 पशु-पक्षी सम्बन्धी गीत 26 शान्त रस के गीत 27 गाँवों के गीत 28 नाट्य गीत 29 विविध गीत आदि।[32]

डा. श्याम परमार ने भारतीय लोक साहित्य में श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव के मत का उल्लेख करते हुए उनके द्वारा प्रतिपादित लोक गीतों के भेदों का उल्लेख किया है। श्री भालेराव ने गीतों को चार श्रेणियों में विभक्त किया है- 1 संस्कार गीत 2 माहवारी गीत 3 सामाजिक-ऐतिहासिक गीत 4 विविध गीत।[33]

लोक जीवन में बारह महीने गीतों के स्वर गुंजित होते हैं। लोक गीतों में किसी प्रकार के अलंकार या उक्ति वैचित्र्य के लिए स्थान नहीं है। ये धरती से उगते हैं और किसी एक व्यक्ति द्वारा रचे होने पर भी निर्वैयक्तिक होते हैं। ये अंचल विशेष के संस्कृति का स्वच्छ प्रतिबिम्बन करते हैं। इन गीतों में प्रायः पुनरावृत्ति पाई जाती है। तुकान्त होने के साथ-साथ इनका शिल्प विधान स्वच्छन्द रहता है।

2. लोक-गाथा- लोक-गाथा के लिए अंग्रेजी में 'बैलेड' शब्द का प्रयोग किया गया है। संस्कृत साहित्य में 'गाथा' शब्द का प्रयोग गेय पदावली के अर्थ में होता आया है। 'बैलेड' अथवा 'लोक गाथा' की परिभाषा विविध विद्वान अनेक रूप से देते हैं। न्यू इंगलिश डिक्शनरी के अनुसार 'बैलेड वह स्फूर्तिदायक या उत्तेजना पूर्ण कविता है जिसमें कोई जनप्रिय आख्यान रोचक ढ़ग से वर्णित हो।' लोक की भाषा अथवा बोली में पारम्परिक, स्थानीय अथवा पुरा आख्यानमूलक गेय अभिव्यक्ति लोक गाथा है। लोक गाथा का रचनाकार अज्ञात होता है, इसमें प्रमाणिक मूल पाठ की कमी होती है। ये प्रायः संगीत और नृत्य शैली में अभिव्यक्ति पाते हैं और मौखिक रूप से कंठानुकंठ परम्परित होती है। बद्रीनारायण के अनुसार-''लोक गाथाओं का सम्पूर्ण ढाँचा एक जीवन वृत्तान्तपरकता पर आधारित होता है। लोक गाथाओं की वृत्तान्त परकता ही इसे अन्य लोक गीतों से पृथक करती है। लोक गाथाओं का वृत्तान्त मात्र भूत न होकर वर्तमान से संवाद होता है तथा भविष्य की झांकी उपस्थित कर रहा होता है इस प्रकार लोक गाथाओं का वृत्तान्त 'इतिहास में इतिहास का' निरन्तर समय विकसित करता है।''34

लोक गाथाओं की उत्पत्ति का सिद्धान्त -

लोक गाथाओं की उत्पत्ति सम्बन्धी छः सिद्धान्त विशेष रूप से माने गए हैं-

1. ग्रिम का सिद्धान्त- समुदायवाद
2. श्लेगल का सिद्धान्त- व्यक्तिवाद
3. स्टेन्थल का सिद्धान्त- जातिवाद

4. विशप पर्सी का सिद्धान्त- चारणवाद

5. चाइल्ड का सिद्धान्त- व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद

6. उपाध्याय का सिद्धान्त- समन्वयवाद।

1. ग्रिम का सिद्धान्त - जर्मन के सुप्रसिद्ध विद्वान जैकब ग्रिम का लोक गाथाओं के सम्बन्ध में अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इन्होंने गाथाओं की उत्पत्ति समुदाय के मध्य मानी है। ग्रिम का मानना है कि लोक गाथाओं का निर्माण स्वतः होता है। इसके निर्माण के पीछे किसी विशिष्ट कवि या रचियता का हाथ नहीं होता बल्कि समस्त जनता या समुदाय इसका निर्माण करता है। ग्रिम का मानना है कि जिस प्रकार इतिहास का निर्माण नहीं किया जा सकता ठीक उसी प्रकार किसी काव्य का निर्माण नहीं हो सकता। सामान्य जनता ही प्राचीन घटनाओं को लेकर उस काव्य को बना डालती है। इसप्रकार लोक काव्य की उत्पत्ति स्वयं होती है। लोक काव्य किसी विशेष व्यक्ति या कवि द्वारा नहीं रचा जा सकता बल्कि इसका प्रादुर्भाव स्वतः होता है और जनता इसका प्रचार भी अपने आप करती है। ग्रिम के मत का सिद्धान्त वाक्य है - जनता ही लोक काव्य की रचना करती है। लोक गाथाओं को परिभाषित करते हुए उन्होंने स्वयं लिखा कि 'लोक गाथा जनता के द्वारा जनता के लिए जनता की कविता है।' इस प्रकार से लोक गीत या लोक गाथाएँ किसी कवि विशेष की सम्पत्ति नहीं होती हैं।

2. श्लेगल का सिद्धान्त - व्यक्तिवाद- ए.डब्लू.श्लेगल ने लोक गाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में एक अलग मत प्रतिपादित किया। इनका मत व्यक्तिवाद के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होंने माना कि किसी कविता का रचियता कोई न कोई व्यक्ति अवश्य होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे किसी प्रासाद, अट्टालिका आदि का निर्माण कोई न कोई कलाकार या वास्तुकार करता है। लोक कविता के निर्माण में भी यही बात लागू होती है। यह बात अलग है कि लोक गाथा के निर्माण में अनेक लोक कवियों का सहयोग रहता है लेकिन वह मूलतः किसी कवि विशेष की ही कविता हो सकती है। अतिप्राचीन कविता में व्यक्ति विशेष द्वारा किसी विशेष योजना के तहत कविता का निर्माण होता है। इसप्रकार स्पष्ट है कि जहाँ ग्रिम समुदायवाद को लोक गाथाओं की उत्पत्ति मानते हैं वहीं श्लेगल व्यक्तिवाद को प्रधानता देते हैं।

3. स्टेन्थल का सिद्धान्त- जातिवाद- स्टेन्थल का मत ग्रिम के सिद्धान्त से मेल खाता है। जहाँ ग्रिम मानते हैं कि कुछ व्यक्तियों के समुदाय से लोक गाथाओं की रचना होती है वहीं स्टेन्थल मानते हैं कि सम्पूर्ण जाति के समस्त व्यक्ति मिलकर इनकी रचना करते हैं। इनका मत है कि व्यक्ति सभ्यता तथा युग के विकास की परिणति इनमें दिखाई पड़ती है। आदिम जातियों में भावना, एषणा और मूल प्रवृत्तियाँ समान होती हैं। एक जाति का एक व्यक्ति जैसा अनुभव करता है समूची जाति उसका वही अनुभव करती है। इस तरह से लोक गाथा किसी एक व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति न होकर समूचे जाति की सम्पत्ति होती है। विश्व के छोटे-छोटे देशों में अनेक आदिम

जातियाँ विद्यमान हैं। ये सब एकसाथ मिलकर त्यौहार, उत्सव सार्वजनिक रूप से मनाते हैं और मनोरंजन करते हैं। विशेष अवसरों के लिए ये विशेष गीतों का निर्माण करते हैं। इस तरह से लोक गाथाओं का सृजन होता है।

4. बिशप पर्सी का सिद्धान्त- चारणवाद- इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध विद्वान विशप पर्सी ने माना कि लोक गाथाओं का निर्माण चारण या भाटों द्वारा हुआ है। ये चारण लोग मध्य काल में इंग्लैण्ड में ढोल या सारंगी पर गाना गाते हुए भिक्षा याचना करते थे। इसके लिए वे गीतों की रचना भी करते थे। ऐसे गीतों को मिन्स्ट्रल बैलेड कहा जाता है। ये चारण लोग धनी सम्पन्न व्यक्तियों के यहाँ जीविकोपार्जन के लिए जाते थे और उनके सम्मान में गीत गाया करते थे। विशप पर्सी की मान्यता है जहाँ वीरगाथाओं का निर्माण इन चारणों ने किया वहीं छोटे-छोटे वर्णनात्मक गीत भी इन्हीं के द्वारा रचे गए। विशप पर्सी के मत का समर्थन जोसेफ रितसन, सर वाल्टर स्कॉट सदृश विद्वानों ने भी किया है। डा. कृष्ण देव उपाध्याय का मानना है कि पर्सी का सिद्धान्त अधिकांशतः सही होते हुए भी सभी गाथाओं की उत्पत्ति के लिये उचित नहीं है।

5. चाइल्ड का सिद्धान्त- व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद- अमेरिका के लोक साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान प्रो.चाइल्ड का मानना है कि जिस प्रकार किसी काव्य का लेखक होता है उसी प्रकार इन गाथाओं की रचना भी किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा की जाती है परंतु उसके व्यक्तित्व का कोई विशेष महत्व नहीं होता। उस व्यक्ति की रचना भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा गाये जाने के कारण उसमें समय-समय पर परिवर्तन और परिवर्धन होता रहता है। अंततः उस गाथा के मूल लेखक का व्यक्तित्व नष्ट और तिरोहित होकर जन-सामान्य की सम्पत्ति बन जाता है। प्रो.चाइल्ड का मत श्लेगल के सिद्धान्त से मेल खाता है। डेन्मार्क के प्रसिद्ध लोक साहित्य के विद्वान प्रो. स्ट्रीनस्ट्रप भी चाइल्ड के सिद्धान्त का समर्थन करते हैं। प्रो.चाइल्ड ने लोक गाथाओं पर विशेष कार्य किया है और उनका ग्रंथ 'इग्लिश एण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स' अत्यंत प्रसिद्ध है। प्रो. चाइल्ड के मत में सत्य का अंश है।

6. उपाध्याय का सिद्धान्त- समन्वयवाद- डा. कृष्ण देव उपाध्याय का सिद्धान्त समन्वयवाद के नाम से जाना जाता है। उन्होंने सभी मतों में पाये जाने वाले सत्य को समन्वित कर समन्वयवाद की धारणा बनाई। उन्होंने माना की लोक गाथा सृजन में उक्त सभी कारण विद्यमान हैं और इन सभी मतो का सामूहिक तथा समवेत योगदान इनकी उत्पत्ति का हेतु है। उन्होंने उदाहरण देकर बताया कि कुछ गीत और गाथाएँ ऐसी हैं जो किसी व्यक्ति विशेष की रचनाएँ हैं। भोजपुरी, चैता या घाँटों के गीतों में बुलाकीदास का नाम बार-बार आता है। जिससे ज्ञात होता है कि इनकी रचना उसी के द्वारा की गई है। इसीप्रकार बुन्देलखण्ड में ईसुरी के फागों का प्रचार, ब्रज में मदारी और स्नेही राय के गीत गाये जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि लोक साहित्य के निर्माण में चाहे कवि हो या नाटककार हो या कथाकार हो किसी न किसी व्यक्ति का सहयोग अवश्य होता है।

गाथाओं की रचना में समुदाय का भी बहुत बड़ा योगदान है। अनेक गीत ऐसे हैं जिनका प्रचार-प्रसार किसी जाति विशेष में ही मिलता है। उदाहरण के लिए विरहा अहिर जाति के लोग और पचरा दुःसाथ जाति के लोग गाते हैं। स्पष्ट है कि विरह की रचना अहीरों का समुदाय कर रहा है न कि कोई व्यक्ति विशेष। झुमर महिलाओं का समूह बनाता है न कि कोई एक स्त्री विशेष। यह भी ठीक है कि आदिम जातियों में पूरी-पूरी जाति के लोग समुदायिक रूप से मनोरंजन करते थे। यदि कोई एक व्यक्ति गीत की कोई एक पंक्ति बनाता तो दूसरा उसको पूरी करता, तीसरा और चौथा उसमे कड़ियाँ जोड़ते जाता। इस प्रकार एक गीत की रचना होती थी। यह गीत किसी एक गायक का न होकर समूची जाति का सम्मिलित प्रयत्न था।

चारणों द्वारा लोक गीतों की रचनाएँ हुई हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में जगनीक और चंदवरदायी की कृतियाँ प्रसिद्ध हैं। राजस्थान में तो चारणों द्वारा आश्रयदाताओं की प्रशस्ति गाना प्रचलित था। गुजरात में भी चारणी साहित्य अपना विशेष महत्व रखता है। यही बात इंग्लैण्ड में भी प्रचलित थी। इस प्रकार व्यक्तिवाद, जातिवाद, समुदायवाद और चारणवाद ये सभी के सभी लोक गाथाओं के उत्पत्ति के कारण माने जा सकते हैं। केवल किसी एक को कारण मानना उपयुक्त नहीं होगा।

2.5 लोक गाथाओं के प्रकार

लोक गाथाओं के अनेक भेद हैं- 1 आकार की दृष्टि से 2 विषय की दृष्टि से। आकार की दृष्टि से दो प्रकार की गाथाएँ प्रचलित हैं। लघु और वृहद्। लघु गाथाएँ आकार में छोटी होती हैं, वृहद् गाथाएँ बड़ी। हीर-रांझा, ढोला-मारू, आल्हा-ऊदल आदि लोक गाथाएँ विस्तृत हैं। डा. कृष्ण देव उपाध्याय ने लोक गाथाओं का विभाजन तीन भागों में किया है-1 प्रेम कथात्मक गाथाएँ 2 वीर कथात्मक गाथाएँ 3. रोमांच कथात्मक गाथाएँ। प्रेम कथात्मक गाथाओं का मूल प्रेम है। इन गाथाओं में प्रेम सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख मिलता है। यह प्रेम साधारण परिस्थिति में उत्पन्न न होकर विषम वातावरण में भी उत्पन्न हो सकता है। भोजपुरी की 'कुसुमा देवी' व 'भगवती देवी' तथा गढ़वाल की चैती तथा प्रणय गाथाएँ जैसे रामीबौराण, गजू मलारी, जीतू भरणा, राजूला मालूशाही, सदेई, जसी, सरू, फ्यूली रौतेली इत्यादि गाथाएँ प्रेम कथात्मक गाथाएँ हैं। पंजाब में सोहनी महिवाल की गुजराती गाथा शुद्ध प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है। अंग्रेजी साहित्य में भी प्रेम गाथाओं की प्रचुरता पायी जाती है।

वीर कथात्मक गाथाओं में किसी वीर के साहसपूर्ण और शौर्य का वर्णन मिलता है। इन कथानकों में वीर पुरुष किसी आपदग्रस्त अबला का उद्धार करता हुआ या युद्ध में शत्रुओं का सामना करता हुआ जूझता हुआ दिखाई पड़ता है। उसकी अलौकिक वीरता का वर्णन करना इस गाथाओं का परम उद्देश्य है। आल्हा ऊदल की गाथाओं में मातृभूमि की रक्षा के लिए महाप्रतापी राजा पृथ्वीराज सिंह भीषण युद्ध की कथा है। विजय मल्ल की गाथा भी वीर कथात्मक गाथाओं

के अन्तर्गत आती है, जिसका गायन भोजपुरी प्रदेश में मिलता है। रोमांच कथात्मक गाथाओं में रोमांच और रोमांस दोनों मिलता है। 'सोरठी' की गाथा इसी श्रेणी की है।

प्रो. कीट्रीज ने लोक गाथाओं को चारण गाथाओं और परम्परागत गाथाओं में वर्गीकृत किया है। चारण गाथाओं के अन्तर्गत वे गाथा आती हैं जब मध्यकालीन यूरोप में चारण लोग राजदरबारों में आकर गाथाओं का गायन करते थे। चारणों द्वारा गाये जाने के कारण इन गाथाओं को चारण गाथा कह दिया गया। बिशप पर्शी ने अपनी पुस्तक रैलिक्स ऑफ एन्शेण्ट इन्डियन पोएट्री की भूमिका में इन चारण लोक गाथाओं की उत्पत्ति की विवेचना की है।

परम्परागत गाथाओं में उन गाथाओं को ले लिया गया है जो समाज में चिरकाल से चली आ रही हैं और उनका प्रभाव और प्रचार आज भी जस का तस है। यूरोपीयन समाज में सत्रहवी शताब्दी में इन गाथाओं का प्रकाशन हुआ था।

प्रो. फ्रांसिस गूमर ने लोक गाथाओं को छः श्रेणियों में बाँटा है- 1. प्राचीनतम गाथाएँ 2. कौटुम्बिक गाथाएँ 3. अलौकिक गाथाएँ 4. पौराणिक गाथाएँ 5. सीमांत गाथाएँ 6. आरण्यक गाथाएँ। इन गाथाओं को विस्तार से इस प्रकार समझा जा सकता है -

1. प्राचीनतम गाथाएँ- प्राचीनतम गाथाओं में सर्वप्रथम समस्या मूलक गाथाओं को परिगणित किया जा सकता है। इनकी उत्पत्ति ग्रीस देश से मानी जाती है। ये गाथाएँ आकाश, पृथ्वी और ऋतुओं से सम्बद्ध हैं। ये कुछ-कुछ हमारी उन वैदिक ऋचाओं के समतुल्य भी हैं जिनमें इन तत्वों का उपासनायुक्त वर्णन किया गया है। गूमर ने अपनी पुस्तक 'दि पॉपुलर बैलेड' इन समस्या मूलक गीतों को उदघृत किया है - दूसरी प्रकार की गाथाओं में घरेलू जीवन से सम्बन्धित प्रेम गाथाओं को स्थान मिला है। 'गिल ब्रेंटन' की गाथा इसका एक अच्छा उदाहरण है। स्कॉट लैण्ड में इस प्रकार के कई गीत मिलते हैं जिनमें कोई पक्षी प्रेमी का पत्र उसकी प्रियतमा तक पहुँचाता है।

2. कौटुम्बिक गाथाएँ- इनमें परिवार के विभिन्न व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहार का वर्णन मिला है। माता-पिता, सास-बहू, ननद-भाभी, माँ-बेटी, के परस्पर संबंधों की सुन्दर झलकियाँ इन गाथाओं में प्राप्त होती हैं। 'क्रूयल ब्रदर' नामक गाथा में एक ऐसे भाई की निर्दयता का वर्णन है जो अपनी बहन के पेट में इसलिए छुरा भोंकता है क्योंकि उसने उससे पूछे बिना विवाह कर लिया। इसीप्रकार सास और बहू के विषम संबन्धों का भी अनेक गाथाओं में वर्णन है। अंग्रेजी में ऐसी बहुत सी गाथाएँ उपलब्ध होती हैं जिनमें पर-पुरुष द्वारा व्यभिचार के संकेत मिलते हैं।

3. अलौकिक गाथाएँ- इस प्रकार की गाथाओं में मृत्यु गीत और जादू के द्वारा शरीर के बदल जाने जैसे अन्धविश्वास मिलते हैं। 'बोनी जेम्स केम्पबेल' नामक गाथा में मृत पुरुष की पत्नी का करुण विलाप दिखायी देता है। अंग्रेजी के कुछ गीतों में परियों की प्रेम कथा भी दिखाई पड़ती है। टॉमस राइमर नामक गाथा में कोई व्यक्ति परियों के प्रेम जाल में फँस जाता है और अपने उद्देश्य

की पूर्ति हेतु व परीस्तान की यात्रा भी करता है। गढ़वाल में कई लोक गाथाओं में व्यक्ति को आँचरियों के प्रेमपाश में आबद्ध दिखाया गया है, जिसका परिणाम उसकी मृत्यु दिखाई गयी है। भारत में तो टोना टोटका, भूत-प्रेत से आविष्ट होता भी दिखाया गया है। उत्तराखण्ड की जागर गाथाएँ भी इसीप्रकार की अलौकिक गाथाओं के अन्तर्गत आती हैं।

4. पौराणिक गाथाएँ- इन गाथाओं का आधार पौराणिक कथा या जनता में प्रचलित किंवदन्तियाँ हैं। शेटलेण्ड में 'ओरफिन्स' की कहानी चिरकाल से चली आ रही एक ऐसी ही गाथा है। 'अवर गुड मैन', 'जौली बैगर' गाथाओं में हास्य का पुट भी दिखायी पड़ता है।

5. सीमांत गाथाएँ- इंग्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड की सीमांत भागों में प्रचलित गाथाओं को सीमांत गाथाएँ कहा जाता है। इन गाथाओं में महान युद्धों की अपेक्षा छोटे-छोटे युद्धों की चर्चा विशेष रूप से की गई है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखें तो 'बाबू कुँवर सिंह' का पवाड़ा सन् 1857 में भाग लेने वाले स्वतंत्रता संग्राम सेनानी की गाथा इसी कोटि में आती है। इसीप्रकार जगदेव पँवार व राणा वेणीमाधव की लोक गाथा भी इसी कोटि में रखी जा सकती हैं।

6. आरण्यक गाथाएँ- आरण्यक गाथाओं में इग्लैण्ड के रॉबिन हुड की गाथा सर्वप्रिय है। रॉबिन हुड की अनेक गाथाएँ अंग्रेजी में प्रचलित हैं। ये ग्रीन वुड में निवास करते थे इसलिए इन गाथाओं का नाम ही ग्रीन वुड बैलेड पड़ गया। इन गाथाओं में 'द गेस्ट ऑफ रॉबिन हुड' सबसे बड़ी गाथा में से एक है। रॉबिन हुड एक लुटेरा था पर वह धनिकों को लूटकर गरीब और असहायों की सेवा करता था। इस कोटि की गाथाओं में भारतीय परिप्रेक्ष्य में सुल्ताना डाकू और डाकू मानसिंह की गाथा को रख सकते हैं। राजस्थान के जोराबर सिंह की गाथा भी ऐसी ही गाथा है।

निश्चित रूप से प्रो. फ्रांसिस गूमर द्वारा प्रतिपादित वर्गीकरण अत्यंत व्यापक है जिनमें सभी प्रकार की गाथाओं का समावेश हो जाता है।

3. लोक-कथा- 'कथा' या 'कहानी' शब्द संस्कृत के 'कथ्' से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है-'कहना'। कथ् में स्त्रीलिंग 'आ' प्रत्यय के योग से 'कथा' बना है, जिसका मतलब है-किसी चरित्र, घटना, समस्या या उसके किसी रोचक पहलू का मनोरंजक वर्णन। लोक की भाषा अथवा बोली में परम्परा से चली आ रही मौखिक रूप से प्रचलित कहानी 'लोक कथा' है। अंग्रेजी में इसके लिए 'फोक टेल' शब्द का प्रयोग है। जनसामान्य के बीच लोक-कथाओं का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। बच्चे, बूढे व जवान इन्हीं कथाओं के माध्यम से अपना मनोरंजन करते हैं।

लोक साहित्य के अध्ययन में लोक कथाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। भारतीय लोक साहित्य में यदि विविध बोलियों की लोक कथाओं को संकलित करने की चेष्टा करे तो अनेक संकलन तैयार हो सकते हैं। लोक कथाओं की जन्म-भूमि भारतवर्ष है। इन कथाओं का प्रभाव पूरे संसार पर पड़ा है। ऋग्वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ है, इसमें सूक्तों के रूप में शुनः शेप आख्यान, च्यवन और शुकन्या की कथा प्राचीनतम कथाओं के संकेत सूत्र हैं। ब्राहा्रण ग्रंथो में

अनेक कथाएँ उपलब्ध हैं। पुरूर्रवा व उर्वशी और च्यवन भार्गव और सुकन्या मानवी की कथा कुछ ऐसी ही कथाएँ हैं। शतपथ ब्राहा्रण में पौराणिक ऋषि दधीचि की कथा विश्वविख्यात है। उपनिषदों में नचिकेता का आख्यान विलक्षण है। केनोपनिषद में यक्ष और अग्नि की कथा मिलती है। संस्कृत की लोक कथाओं का सबसे प्राचीन संग्रह वृहद् कथा है। डा. व्यूलर के अनुसार इसकी रचना ईशा की दूसरी शताब्दी में हुई है। पंचतंत्र की कथाएँ अपने में अनूठी है। जिनका अनुवाद यूरोप की अनेक भाषाओं में हो चुका है। इन कथाओं में यूरोपीय कथा साहित्य को बहुत अधिक प्रभावित किया है। नीति सम्बन्धी कथाओं में पंचतंत्र के बाद 'हितोपदेश' की कथा आती हैं। इसी प्रकार वैताल पंचशतिका, सिंहासन द्वात्रिशिंका, शुक संपति इत्यादि संस्कृत कथाओं का अक्षय भंडार है। बौद्ध पंडितों द्वारा जातक कथाएँ भी प्राचीनतम लोक कथाओं का ही एक रूप है।

विविध विद्वानों ने लोक कथाओं का अनेक रूप से वर्गीकरण किया है। डा. कृष्ण देव उपाध्याय ने वर्ण्य विषय की दृष्टि से इन कथाओं को छः वर्गो में बाँटा है-1. उपदेश कथा 2 व्रत कथा 3. प्रेम-कथा 4. मनोरंजन कथा 5. सामाजिक कथा 6. पौराणिक कथा।[35]

डा. सत्येन्द्र का वर्गीकरण- डा. सत्येन्द्र ने अपने ग्रंथ 'बृज लोक साहित्य का अध्ययन' में लोक कथाओं को निम्न लिखित आठ वर्गों में विभाजित किया है- 1. गाथाएँ 2. पशु-पक्षी सम्बन्धी कथाएँ 3. परी की कथाएँ 4. विक्रम की कहानियाँ 5. बुझवल सम्बन्धी कहानियाँ 6. निरिक्षण गर्भीत कहानियाँ 7. साधु-पिरों की कहानियाँ 8. कारण निर्देशन कहानियाँ।[36]

डा. सेन का वर्गीकरण- डा. दिनेश चन्द्र सेन ने बंगाल की लोक कथाओं को चार भागों में विभक्त किया है- 1. रूप कथा2. हास्य कथा 3. व्रत कथा 4. गीत कथा ।[37] डा. सेन ने भूत-प्रेत, देवता, दानव और अमानवीय, अप्राकृतिक अद्भुत कहानियों को रूप कथाओं के अन्तर्गत माना है। इस प्रकार की लोक कथाएँ संसार की लगभग सभी लोक भाषाओं में प्राप्त है। दूसरी प्रकार की कथाएँ ऐसी कथाएँ हैं जिन्हें पढ़कर या सुनकर हास्य रस उत्पन्न होता है। व्रत, विशेष पर्व त्यौहार सम्बन्धी कथाएँ भी लगभग सभी लोक भाषाओं में प्राप्त हैं। अन्तिम श्रेणी में उन कथाओं को लिया गया है जो बच्चों को पालना झुलाते समय या बूढी दादी-नानी गोद में लेकर सुनाती हैं। इन कथाओं में मनोरंजन के साथ-साथ जीवन जीने के उपदेश भी निहित हैं। लोक कथाओं की सामान्य विशेषताएँ- विश्व की लोक कथाओं का अध्ययन करने के बाद पता लगता है कि इनमें कुछ सामान्य विशेषता है। डा. कृष्ण देव उपाध्याय के अनुसार इन लोक कथाओं में निम्नांकित विशेषताएँ प्राप्त होती है-

1. प्रेम का प्राधान्य- लगभग सभी लोक कथाओं में प्रेम का प्राधान्य मिलता है। प्रेम का यह रूप पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका, भाई-बहन, माता-पिता, पिता-पुत्र, माता-पुत्र अथवा पुत्री किसी के भी मध्य हो सकता है। अधिकांश कहानियों में माता की निश्च्छल वात्सल्य और ममत्व की भावना

दृष्टिगोचर होती है। पति-पत्नी के मध्य प्रेम में पत्नी अथवा पति का परस्पर वह पवित्र और दिव्य रूप सामने आता है जो अलौकिक और आदर्श रूप है।

2. अश्लीलता का परिहार- इन कहानियों में अश्लीलता और कुत्सित भावना बहुत कम दिखाई देती है। प्रेम का भद्दा प्रदर्शन लोक कथाओं की विशेषता नहीं है।

3. नैसर्गिक प्रवृत्ति से साहचर्य- मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्तियों यथा- सुख-दुःख, आशा-निराशा, काम-क्रोध, मद-लोभ, एषणा इत्यादि का वर्णन इन कहानियों में सहजता से पाया जाता है। लोक कथाओं की रचना जीवन की मूल-भूत प्रवृत्तियों को लेकर ही की जाती हैं। इन कथाओं में ऐसी घटनाओं का वर्णन होता है जो शाश्वत सत्य की प्रतीक हैं।

4. मंगल भाव- इन कहानियों में विश्व के लिए मंगल की कामना है। ग्रामीण कथाकार संसार का भला चाहता है। वह किसी को दुःखी और अभावग्रस्त नहीं देखना चाहता है।

5. सुखान्त कहानियाँ- अधिकांश लोक कथाओं का अंत सुखमय होता है। यद्यपि इन कहानियों में जीवन के संघर्ष तो पाये जाते हैं लेकिन अंत निराशा को आशा में परिणत होते हुए और दुःख को सुख में बदलते हुए, हानि को लाभ में परिवर्तित होते हुए दिखाने की चेष्टा रही है। अक्सर इन कहानियों का अंत इस 'भरत-वाक्य' से होता है- ''भगवान ने जिस प्रकार अमुक व्यक्ति के सुखके दिनों को लौटाया उसी प्रकार सभी के सुख के दिन लौटें।''

6. अलौकिकता का प्राधान्य- अधिकांश लोक कथाओं में अलौकिकता का अंश देखने को मिलता है। भूत-प्रेत, दानव-परी इत्यादि से सम्बन्धित कहानियों में अलौकिकता का पुट व अद्भूत रस की प्रधानता देखने को मिलती है। इन कहानियों में रोमांचकता के साथ-साथ उत्सुकता बनी रहती है।

7. वर्णन की स्वभाविकता- लोक कथाओं की एक विशेषता यह भी है कि इन कहानियों में स्वाभाविकता रहती है। जो घटना जैसी है उसका उसी रूप में वर्णन करना लोक कथाओं का प्रधान लक्षण है। इन कथाओं में अतिशयोक्ति का पुट नहीं मिलता।

8. सरल स्वाभाविक शैली- लोक कथाओं की शैली बड़ी सरल और सीधी होती है। इनमें जिन वाक्यों का प्रयोग होता है वे बहुत छोटे और सरल होते हैं। लोक कथाओं में शब्दांडम्बर का अभाव रहता है। इनकी भाषा अकृत्रिम होती है। डा. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार ''ये कथाएँ अबाध गति से प्रवाहमान सरिताओं की भाँति हैं जिनमें अवगाहन कर जन का मानस आनन्द लेता है, जिनका जल निर्मल तथा शीतल होने के कारण पान करने वालो को संजीवनी शक्ति प्रदान करता है।''[38]

पाश्चात्य लोक कथाओं का वर्गीकरण -

पाश्चात्य लोक कथाओं को हम निम्नांकित वर्गों में बाँट सकते हैं -

1. फेबुल - पाश्चात्य लोक साहित्य में जानवरों से संबध रखने वाली कथाओं को फेबुल कहते हैं। इन कथाओं में पशु पक्षी और जानवरों को मनुष्य के समान बातचीत और अभिनय करते हुए देखा जा सकता है। इन कथाओं के माध्यम से मनुष्य को नैतिक शिक्षा देने की प्रवृत्ति रही है। फेबुल लोक कथाओं को प्रारम्भिक रूप है। पशु-पक्षी सम्बन्धी कथाओं में जानवरों की विशेषताओं का उद्घाटन नहीं किया जाता बल्कि उनके द्वारा मनुष्य के जीवन के किसी अंश को लेकर उस पर व्यंग्योक्ति रहती है। भारत में 'हितोपदेश' व 'पंचतंत्र' की कहानियाँ इसी प्रकार की कहानियाँ हैं।

'कथा सरित्सागर', 'शुक सप्तति' इसीप्रकार की कहानियाँ हैं। पश्चिमी देशों में 'इसाप्स फेबुल्स' के नाम से इसी प्रकार की कहानियाँ संग्रहित हैं।

2. फेबलियो - ये कहानियाँ पद्यमयी गाथाओं के रूप में उपलब्ध हैं। फ्रांस में बारहवीं से चौदहवीं शताब्दी के बीच इस प्रकार की रचनाओं की प्रधानता थी। फ्रांस से इनका प्रचार समग्र यूरोप में हुआ। 'केंटरबरी टेल्स' में इसीप्रकार की लोक गाथाएँ मिलती हैं। इन कहानियों का प्रधान विषय चालाक पति', 'अविश्वासपात्र पत्नी' व धोखेबाज प्रेमी होता है। 'द डॉग इन द क्लोजिट' इसी प्रकार की कथा है।

3. फेयरी - यह शब्द उन अमानवीय जीवों को बोधित करता है जो प्रायः अदृश्य होते हैं। फेयरी शब्द लैटिन के फेटुम से बना है। जिसका अर्थ है जादू या इन्द्रजाल। ऐसे जीव जो ऐन्द्रजालिक ताकतों से भरे होते हैं, उन्हें फेयरी कहा जाता है। हिन्दी में 'फेयरी' के लिए 'अप्सरा' या 'गन्धर्व' शब्द का प्रयोग होता है। पाश्चात्य देशों में फेयरी पुल्लिंग के लिए प्रयोग होता है जबकि भारत में इसकी कल्पना स्त्री रूप में की गई है। पाश्चात्य देशों में फेयरी एक ऐसा बौना है जो अपनी इच्छानुसार अदृश्य हो सकता है। यह हरे रंग का होता है। इसके बाल भी हरे होते हैं और यह पर्वत कन्दराओं के मध्य में निवास करता है। फेयरी कभी किसी को नुकसान नहीं पहुँचाता यदि इसे कष्ट दिया जाता है तो यह खेतों के अनाज को नष्ट कर और दूध को दुह कर बदला लेता है। भारत में फेयरी की कल्पना अत्यंत अलौकिक सुन्दरी से की गई है जो अपने सौन्दर्य से लोक जीवन को मोहित करती हैं। भारत, यूरोप और अरब देशों में परी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। इन कथाओं को 'फेयरी टेल' कहते हैं। जर्मन भाषा में इन्हें 'मार्चेन', स्वीडिश में 'सागा' कहा जाता है। परियों द्वारा मनुष्य को उपकृत करने, धनधान्य से प्रपूरित करने की अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। अनेक फ्रांसीसी कहानियों में इन्हें कारागार से मुक्त करने की भी कथा आयी है। भारतीय परी कथाओं में भूखे को भोजन और रोगी को रोग मुक्त करने की कथाएँ भी देखने को मिलती हैं। गढ़वाली लोक कथाओं में परियों द्वारा अपहरण की भी बात है, जिन्हें आंछरी भी कहा जाता है। जर्मनी भाषा में 'ग्रिम्स फेयरी टेल्स' प्रसिद्ध हैं।

4. लीजेण्ड - लीजेण्ड का मूल अर्थ धार्मिक पूजा-पाठ के समय किये जाने वाले पाठ से था। कालान्तर में इनका अभिप्रार्य धार्मिक चरित्र के नाम पर बलिदान होने वाले वीरों की गाथा से होने लगा। किसी व्यक्ति या किसी स्थान के विषय में कहीं गयी परम्परागत मौखिक कहानियाँ भी लीजेण्ड के अन्तर्गत माना गया। डा. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार ''लीजेण्ड लोक कथाओं का वह प्रकार है जिसके कथानक में तथ्य घटना तथा परम्परा दोनों का समन्वय पाया जाता है।.....लीजेण्ड सत्य घटना के रूप में कही जाती है परंतु मिथ की सच्चाई उसके श्रोताओं में विश्वास के रूप में आश्रित होती है।''[39] यूरोपीय देशों में हरकुलीज की कथा में मिथ और लीजेण्ड दोनों का ही समन्वय है। इसीप्रकार भारत की विक्रमादित्य की कथाओं को हम लीजेण्ड कह सकते हैं लेकिन बलि की कथा मिथ होगी। स्विनटर्न ने 'लीजेण्ड ऑफ दि पंजाब' के नाम से पंजाबी लोक कथाओं का संकलन भी किया है।

5. मिथ - मिथ वे कथाएँ है जो किसी अतिप्राचीन, धार्मिक विश्वास पर आधारित होती हैं। यह प्राचीन वीर, देवी-देवता तथा स्थानीय जनता से सम्बन्धित होती है। जी.एल.गोमी ने विज्ञान पूर्व युग की घटनाओं को मिथ माना है। हिन्दी में इन कथाओं को पौराणिक कथाएँ कहते हैं। कोई भी पौराणिक कथा तभी तक मिथ कही जाती है जब तक उसके पात्र देवी देवता हैं तथा उन पात्रों में देवत्व की भावना है। यही पात्र जब देवत्व की कोटि से नीचे उतरकर मनुष्यत्व की कोटि में आते हैं तो जीजेण्ड कहलाते हैं। आदिम जातियों में प्रचलित अधिकांश कथाएँ मिथ हैं। डा. एलविन ने मध्यप्रदेश की पौराणिक कथाओं का संग्रह 'मिथ्स ऑफ मिडिल इण्डिया' नाम से किया है।

6. मोटिफ - मोटिफ शब्द का प्रयोग परम्परागत कथाओं के किसी तत्व के लिए किया जाता है। स्टिथ टॉमसन के विचारानुसार मोटिफ वह अंश है जिसमें फॉकलोर के किसी भाग को विश्लेषित किया जा सके। यह तत्व साधारण न होकर असाधारण होता है। यह ऐसा होना चाहिए कि सर्वसाधारण जनता इसको स्मरण कर सके। भारतीय लोक कथाओं में सियार को चालाक या धूर्त या काइयाँ जानवर के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। इसीप्रकार गधा मूर्ख के रूप में दिखाया गया है यह दोनों ही एक प्रकार से मोटिफ हैं। मोटिफ का क्षेत्र अन्तराष्ट्रीय है। विश्व की सभी लोक कथाओं में मोटिफ मिलता है।

7. टाइप(जलचम)- पाश्चात्य विद्वान उन लोक कथाओं के लिए इस शब्द का प्रयोग करते हैं जो मौखिक परम्परा में अपने को स्वतंत्र सिद्ध करती हो। डा. कृष्णदेव उपाध्याय के शब्दों में ''कोई कथा जो स्वतंत्र कहानी के रूप में कहीं जाती है टाइप समझी जाती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अपनी कुछ विशेषताओं के कारण कोई कथा का वर्ग दूसरी कथाओं से पृथक होता है। इस वर्ग को टाइप कहते हैं।''

बोध प्रश्न:-

प्रश्न 5 लोक गाथा और लोक कथा में क्या अन्तर है?

.....

.....

.....

नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं, कुछ गलत। उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

झ. लोक कथा को अंग्रेजी में बैलेड कहते हैं। ( )

ञ. कोई कथा जो स्वतंत्र कहानी के रूप में कही जाती है टाइप समझी जाती है। ( )

4. लोक-नाट्य- महाकवि कालिदास कहते हैं 'नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्' अर्थात् नाट्य जन मन के अनुरंजन का सर्वोत्कृष्ट साधन है। ग्रामीण जनता नाटकों को देखकर प्रसन्नता का अनुभव करती है। भारतवर्ष में नाटकों की परम्परा तो ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से मानी जाती है। वेदों में भी नाटकीय तत्वों के बीज उपलब्ध होते हैं। भारतवर्ष में मध्यकाल में लोक धर्मी नाट्य परम्पराओं का जन्म हुआ इसमें रामलीला और रासलीला प्रमुख हैं। गौरांग महाप्रभु के काल में 'यात्रा' या 'जात्रा' लोक नाट्य के ही रूप हैं।

लोक नाटकों का लोक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। लोक नाटक लोक सम्बन्धित उत्सवों, अवसरों तथा मांगलिक कार्यों में अभिनित होते हैं। विवाह के अवसर पर अनेक जातियों में स्त्रियाँ बरात विदा हो जाने पर स्वांग रचती हैं। लोक जीवन में विभिन्न उत्सवों पर पुरुष और बालक भी इन नाटकों को अभिनीत करते हैं।

लोक नाटकों के प्रकार-

लोक नाटक दो भागों में विभक्त किये जो सकते हैं-1. प्रहसनात्मक 2.नृत्यनाट्यात्मक (डांस ड्रामा)। पहले प्रकार का नाटक जन समुदाय को अनुरंजित करने के लिए होता है और इसका विषय हास्य होता है। लखनऊ और बनारस के भांड ऐसे प्रहसनों के लिए प्रसिद्ध हैं। दूसरे प्रकार के नाटक वे हैं जो किसी सामाजिक और पौराणिक घटना को लेकर अभिनीत किये जाते हैं। नृत्य, संगीत और अभिनय इन तीनों का समन्वय यहाँ दिखाई पड़ता है। भोजपुरी प्रदेश का 'बिदेसिया' लोक नाट्य इसका सुन्दर उदाहरण है। गढ़वाल प्रदेश में पांडव कथा पर आधारित अनेक लोक नाट्य प्रचलित हैं।

लोक नाट्य की विशेषताएँ-

लोक नाट्य की निम्नांकित विशेषताएँ हैं-

1. भाषा- लोक नाट्यों की भाषा सरल, सीधी होती है। जिस प्रदेश में नाटक होता है, नट उसी क्षेत्र की बोली का प्रयोग करते हैं। दैनिक जीवन में सामान्य जनता जिस भाषा का प्रयोग करती है लोक नाटककार उसी भाषा का प्रयोग करते हैं। गद्य के बीच में पद्य का भी पुट रहता हैं।

2. संवाद- लोक नाटयों के संवाद बहुत छोटे तथा सरल होते हैं। कहीं तो प्रश्न और उत्तर केवल कुछ शब्दों तक ही सीमित हो जाते हैं। संवाद संक्षिप्त, क्षिप्र व ग्राह्य होते हैं।

3. कथानक- लोक नाटकों का कथानक ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक और धार्मिक होता है। बंगाल की 'जात्रा' और 'कीर्तन' धार्मिक नाटक हैं। राजस्थान में चारण परम्परा में प्रस्तुत नाटक ऐतिहासिक हैं तो केरल में 'यक्ष गान' की विषय वस्तु पौराणिक है। उत्तर प्रदेश में अभिनीत 'रामलीला' और 'रासलीला' का आधार धार्मिक हैं। यही नहीं नौटंकी तथा स्वांग की कथावस्तु समाज से सम्बन्ध रखती है।

4. पात्र- लोक नाट्यों में प्रायः पुरुष ही अभिनेता होते हैं। स्त्री पात्रों का कार्य भी अधिकांशतः पुरुष पात्रों द्वारा ही सम्पादित किया जाता है। कुछ लोक नाट्य मण्डलियों में स्त्रियों को भी रख लिया जाता है। ये पात्र समाज के चिर-परिचित व्यक्ति हैं जैसे मक्खी चूस बनिया, खूसट बुड्ढा, कुलटा स्त्री, शराबी पति, पाखंडी साधु, दुष्टा सास और अत्याचारी अफसर इत्यादि।

5. चरित्र-चित्रण- लोक नाट्यों में चरित्र चित्रण बड़ा स्वाभाविक होता है। बीच-बीच में विदूषक अपने हाव भावों से जनता का मनोरंजन करने की चेष्टा करता है।

6. रूप-योजना- लोक नाटकों में विशेष प्रकार के प्रसाधनों, अलंकरणों और बहुमूल्य वस्त्रों की आवश्यकता नहीं होती। कोयला, काजल, खडिया आदि देशी प्रसाधनों से ही अपने को सुसज्जित करके अभिनेता मंच पर उतर जाते हैं।

7. रंग मंच- लोक नाट्य खुले रंग मंच पर अभिनीत होते हैं। जनता मैदान में आकाश के नीचे बैठकर इन नाटकों का आनन्द लेती है। किसी भी मंदिर का चबूतरा मंच का काम दे जाता है। कहीं तख्ते बिछाकर मंच तैयार कर लिया जाता है। रंग मंचों पर पर्दे प्रायः नहीं होते। सारी कथा एक अविच्छिन्न क्रम में अभिनीत की जाती है।

भारत के प्रसिद्ध लोक नाटक-

उत्तर भारत में 'रामलीला' और 'रासलीला' तो प्रचलित है ही, मालवा का 'माच' नामक नाटक भी अत्यंत लोक प्रिय है। राजस्थान में 'ख्याल', हाथरस की 'नौटंकी', उत्तर प्रदेश का 'स्वांग', ब्रजमंडल का 'भगत', गुजरात का 'भवाई', बंगाल की 'जात्रा' और 'गम्भीरा', महाराष्ट्र का 'तमाशा', ललित, गोंधल, बहुरूपिया और 'दशावतार', दक्षिण भाषा का 'यक्षगान', तेलुगा का 'विधिभागवतम्' देश के कुछ प्रसिद्ध लोक नाट्य हैं।

बोध प्रश्नः-

प्रश्न 6. लोक नाट्य से आप क्या समझते हैं? भारत के प्रसिद्ध लोक नाटकों का नामोल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

प्रश्न 6. नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं, कुछ गलत। उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

ट. 'ख्याल', राजस्थान का लोक नाट्य है। ( )

ठ. 'भवाई' बंगाल का लोक नाट्य है। ( )

5. लोक-सुभाषित- ग्रामीण जनता अपने दैनिक जीवन में अनेक मुहावरों, कहावतों, पहेलियों, सूक्तियों और सुभाषितों का प्रयोग करती है। इन मुहावरों और कहावतों में चिरसंचित अनुभव की ज्ञान राशि भरी हुई है। इनके माध्यम से हमारे धार्मिक और समाजिक प्रथाओं का पता चलता है। कई सूक्तियाँ नीतिवचनों के रूप में भी उपलब्ध रही हैं।

मुहावरा अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है- 'अभ्यास' या 'बातचीत'। डा. शेरसिंह बिष्ट ने इसका लक्षण इस प्रकार दिया है- ''मुहावरा किसी भी भाषा में प्रचलित वह विलक्षण एवं प्रभावशाली वाक्यांश है, जिसकी प्रतीति अभिधेय अर्थ से न होकर लक्षणा अथवा व्यंजना से होती है।''[40] प्रत्येक मुहावरा एक वाक्यांश है परंतु प्रत्येक वाक्यांश एक मुहावरा नहीं होता। मुहावरें का स्वरूप रूढ़ और स्थिर होता है, इसमें किसी तरह का परिवर्तन करने पर प्रचलित शब्द के स्थान पर अन्य पर्यायवाची रखने पर वह मुहावरा नहीं रह जाता। वस्तुतः मुहावरा एक लाक्षणिक वाक्यांश है जिसका प्रयोग भाषा में चमत्कार और आकर्षण पैदा करने के लिए किया जाता है। मुहावरों के माध्यम से अभिव्यक्ति सशक्त बनती है। लोक भाषाएँ मुहावरों का अकूत भण्डार हैं। मुहावरों को अंग्रेजी में 'इडियम' भी कहते हैं। अरबी में मुहावरों का अर्थ सीमित तथा संकुचित है लेकिन उर्दू तथा हिन्दी में यह व्यापक भाव को द्योतित करता है। मुहावरों की उत्पत्ति के विषय में पं.अयोध्या सिंह उपाध्याय का मानना है- ''मनुष्य के कार्य क्षेत्र विस्तृत हैं। उसके मानसिक भाव भी अनन्त हैं। घटना और कार्यकारण घटनाओं से जैसे असंख्य वाक्यों की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार मुहावरों की भी। अनेक अवसर ऐसे उपस्थित होते हैं जब मनुष्य अपने मन के भावों को कारण विशेष से संकेत अथवा इंगित किंवा व्यंग्य द्वारा प्रकट करना चाहता है। कभी कई एक ऐसे भावों को थोड़े शब्दों में विवृत करने का उद्योग करता है, जिसके अधिक लम्बे ,चौड़े वाक्यों का जाल छिन्न करना उसे अभिष्ट होता है। प्रायः हास, परिहास, घृणा, आवेग, उत्साह आदि के अवसर पर उस प्रवृत्ति के अनुकूल वाक्य योजना देखी जाती हैं। सामयिक अवस्था और परिस्थिति का वाक्य विन्यास पर बहुत प्रभाव पड़ता है और इसी प्रकार के साधनों से मुहावरों का आविर्भाव होता है।''[41]

मनुष्य कभी कुछ भावों को गोपन रखना चाहता है और उन्हें ऐसी भाषा में प्रकट करना चाहता है जो सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य न हो। इसके कारण भी मुहावरों का जन्म होता है। उदाहरण के

लिए 'नौ दो ग्यारह होना', या 'रफू चक्कर होना' का अर्थ भाग जाना होता है लेकिन अभिधा से यह सूचित नहीं होता। मुहावरें भाषा के प्राण हैं और इनसे वाक्यों मे रोचकता आती है। डा. त्रिपाठी के अनुसार ''मुहावरा किसी बोली या भाषा में प्रयुक्त होने वाला वह अपूर्ण वाक्य खण्ड है जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल, सतेज, रोचक और चूस्त बना देता है। संसार में मनुष्य ने अपने लोक व्यवहार में जिन-जिन वस्तुओं और विचारों को बड़े कौतूहल से देखा और समझा और बार-बार उनका अनुभव किया उन्हीं को उसने शब्दों में बाँध दिया है। वे ही मुहावरे कहलाते हैं।''[42]

मुहावरों का इतिहास उतना प्राचीन नहीं है जितना भाषा की उत्पत्ति का। संस्कृत साहित्य में इनका व्यवहार दिखाई पड़ता है। राष्ट्रभाषा हिन्दी में मुहावरों की संख्या बहुत अधिक है। खंग विलास, प्रेस पटना से प्रकाशित 'बोल चाल' नामक पुस्तक में पं.अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने अनेक मुहावरों का संकलन किया है। भोजपुरी, ब्रज, अवधी, बुंदेलखंडी में अनेक मौलिक मुहावरों की छटा दिखाई पड़ती है। मुहावरे जीवन के हर क्षेत्र में बिखरे हैं। डा. कृष्ण देव उपाध्याय के अनुसार ''मुहावरे मानव की गति, क्रिया, अनुभूति, उसके शरीर के अंग-उपांगों, भोजन के पदार्थों, घर-गृहस्थी के काम-काज, प्रकृति के विभिन्न तत्त्व- आकाश, आग, हवा, पानी और पृथ्वी-दिन-रात, पशु-पक्षी, पेड़-पौधों और जीव-जन्तु सभी से संबन्ध रखते हैं। कहने का आश्रय यह है कि स्थावर और जंगम जितनी सृष्टि है उन सभी से इनका संबन्ध है।''[43] मुहावरों में जनता के जीवन की झाँकी है। जनता की आर्थिक, परिवारिक, समाजिक सभी स्थितियाँ इन मुहावरों में दिखाई पड़ती है। 'कंगाली में आटा गीला', 'पेट काटना', 'सत्तू बाँधकर पीछे पड़ना', 'छीपा बजाना' इत्यादि मुहावरे इसके द्योतक हैं। 'गोतरू चार करना' एक भोजपुरी मुहावरा है। जिसका अर्थ है गाली-गलौज करना। यह संस्कृत के 'गोत्रोच्चारण' से निकला है। विवाह के समय वर कन्या की वंशावली का वर्णन गोत्रोच्चारण कहलाता है लेकिन जब कोई किसी बाप दादा को लेकर गाली देने लगता है तब इस मुहावरे का प्रयोग होता है। कहावतें लोक मानस द्वारा युगों से संचित जीवन और जगत के कटु मधुर अनुभवों से प्राप्त ज्ञान है। सामान्यतः कहावतें घटना मूलक होती हैं। जीवन जगत में घटित किसी घटना विशेष से प्राप्त अनुभव सीख या उपदेश के स्वरूप में कहावत का रूप ले लेती हैं। लोक साहित्य में अनेक कहावतों का भण्डार है। लोक साहित्य में लोकोक्तियों या कहावतों का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। इसके प्रयोग से भाषा में एक बल आता है जो श्रोता पर सीधा प्रभाव डालती है। अनुसंधानों से पता चलता है कि वेदों में भी लोकोक्तियों की सत्ता थी। उपनिषदों और संस्कृत साहित्य में इसकी भरमार है। पंचतत्र, हितोपदेश आदि ग्रंथों में नीति संबन्धी उक्तियाँ मिल जाती हैं। संस्कृत में लोकोक्तियों को सुभाषित या सूक्त भी कहा जाता है। सूक्ति का अर्थ है- सुन्दर रीति से कहा गया कथन। इसी उक्ति को यदि लोक अर्थात साधारण मनुष्य प्रयोग में लाते हैं तो वह लोकोक्ति कहलाती है। प्रसिद्ध विद्वान कर्नल जैकब ने 'लौकिक न्यायांजलि' नामक ग्रंथ में न्याय से सम्बन्धी संस्कृत की उक्तियों का संग्रह किया है। सन् 1886 में फेलन ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ

'डिक्शनरी ऑफ हिन्दुस्तानी प्रोवर्ब्स' में मारवाडी, पंजाबी, भोजपुरी, मैथली कहावतों का संकलन किया। इसीप्रकार प्रसिद्ध विद्वान जे.एच.नोबल्स ने काश्मीरी लोकोक्तियों का संग्रह किया। इसी दिशा में श्रीमति सुमित्रादेवी ने 'देरेवाली कहावतें' को संकलन किया है। श्री शलिग्राम वैष्णव ने नागरी प्रचारणी पत्रिका में गढ़वाली भाषा में पाखाणा लिखकर गढ़वाली लोकोक्तियों पर प्रकाश डाला है। सन् 1892 में उप्रेती ने प्रोवर्ब्स एण्ड 'फोकलोर ऑफ कुमाउ एण्ड गढ़वाल' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया। मेरठ क्षेत्र की लोकोक्तियों को राय राजेन्द्र सिंह वर्मा ने नागरी प्रचारणी पत्रिका में प्रकाशित करवाया। रतनलाल मेहता कृत 'मालवीय कहावतें' और उदय नारायण तिवारी कृत 'भोजपुरी लोकोक्तियों का संग्रह' इस दिशा में स्तुत्य प्रयास है। डा. कन्हैया लाल सहल द्वारा रचित 'राजस्थानी कहावतें:एक अध्ययन' राजस्थानी लोकोक्तियों पर प्रकाश डालता है।

2.6 लोकोक्तियों का वर्गीकरण

डा. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकोक्तियों को पाँच वर्गों में वर्गीकृत किया है- 1. स्थान संबन्धी 2. जाति संबन्धी 3. प्रकृति तथा कृषि संबन्धी 4. पशु पक्षी संबन्धी 5. प्रकीर्ण संबन्धी।[44]

1. स्थान संबन्धी- बहुत सी ऐसी लोकोक्तियाँ पायी जाती है जो किसी देश या स्थान विशेष के विशेषताओं को प्रकट करती हैं। जैसे बलिया के पश्चिमी क्षेत्र 'बाँगर' में अन्न बहुत कम पैदा होता है। अतः वहाँ के लिए कहावत प्रचलित है- 'का बाँगर का अन्ने, का जोलाहा का धन्ने'

2. जाति संबन्धी- भारत की विभिन्न जातियों की विशेषताओं को प्रकट करने वाली अनेक लोकोक्तियाँ समाज में प्रचलित हैं। इनमें परस्पर द्वेष भाव की परिचायक निम्न कहावत हैं- 'बाँभन, कुकुर, नाऊ। आपण जाति देखि गुर्राऊ। प्रसिद्ध विद्वान डा. रसल ने 'पीपुल्स ऑफ इण्डिया' नामक पुस्तक में विभिन्न जातियों से संबन्धित लोकोक्तियों का संकलन किया है।

3. प्रकृति तथा कृषि संबन्धी- अनेक लोकोक्तियाँ प्रकृति से संबन्ध रखती हैं। ऋतु ज्ञान संबन्धी अनेक महत्वपूर्ण बातें अर्थात् किन नक्षत्रों में वर्षा होगी या अकाल पड़ेगा का ज्ञान इन लोकोक्तियों में निहित है। इसीप्रकार सिंचाई, बुआई, निराई, कटाई, दवाँई, मडाई आदि से संबन्धित लोकोक्तियाँ पायी जाती हैं। घाघ तथा भड्री की वायु तथा वर्षा संबन्धी लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं- 'सावन में पुरवईया, भादों में पछियाँव। हरवाहें हर छोड़ दें, लरिका जाय जियाव।' अर्थात् सावन में पुरवईया हवा और भादों में पछवा हवा चले तो वर्षा न होने के कारण बड़ा कष्ट होगा। इसी प्रकार पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में पूरवैया हवा चले तो इतनी वर्षा होगी कि सूखी नदी में भी नाव चल सकती है- 'जो पुरवा पुरवाइ पावै, सूखी नदी नाव चलावे।' इसीप्रकार कृषि जीवन से संबन्धित ऐसा कोई भी अंग नहीं है जिस विषय पर लोकोक्तियाँ प्रचलित न हो। ऊख के खोत को कितना जोतना चाहिए इस विषय में घाघ का कथन है- 'तीन कियारी तेरह गोड़, तब देखी ऊखी के पोर'

4. पशु पक्षी संबन्धी- कृषि कर्म के साधन बैल इत्यादि पर भी अनेक लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं। अच्छे बुरे बैलों के लक्षण, गीदड़, कौवा आदि के बोलने से संबन्धी शुभ-अशुभ लक्षण इन लोकोक्तियों में प्रचलित हैं। बुरे बैल के लक्षण कुछ इस प्रकार हैं-'उजर बरौनी मुँह का महुवा, ताहि देखि हरवहवा रोवा।' इसीप्रकार बन्दर, हाथी घोड़े से संबन्धी अनेक कहावतें प्रचलित हैं।

5. प्रकीर्ण- प्रकीर्ण लोकोक्तियों में हर प्रकार की उक्तियाँ देखी जा सकती हैं। इसमें नीति, उपदेश, स्वस्थ रहने की विधि अर्थात् जीवन के सभी पहलुओं को छूती हुई लोकोक्तियाँ मिल जाती हैं। घाघ की नीति वचन को देखिये- 'ओछो मंत्री राजै नासै, ताल बिनासै काई। सुक्ख साहिबी फूट बिनासै, घग्घा पैर बिवाई।

ब्रज में लोकोक्तियों के अन्नमिल्ला, अचका, भेरि, खुंसि, औठपाये, ओलना, अहागड्ड इत्यादि रूप देखने को मिलते हैं। वैसे तो लोकोक्तियों के रचयिता का ठीक-ठीक पता नहीं लगता लेकिन घाघ, भड्डरी, लाल बुझक्कड़ इत्यादि लोकोक्तिकार भारत में प्रसिद्ध हैं।

हिन्दी साहित्य कोश भाग-1, में पहेलियों की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी है- ''पहेलियाँ केवल बच्चों के मनोरंजन की वस्तुएँ नहीं, ये समाज विशेष की मनोज्ञता को प्रकट करती हैं और उसकी रूचि पर प्रकाश डालती हैं।'' फ्रेजर के अनुसार ''पहेलियों की रचना अथवा उदय उस समय हुआ होगा, जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को कहने में अड़चन पड़ी होगी।''[45] लोक साहित्य में पहेलियों की भरमार है। भारतवर्ष के गौंड और बिरहोर जातियों में विवाह के अनुष्ठानों में पहेली बुझाना अत्यंत आवश्यक है। डा.शेर सिंह बिष्ट के अनुसार ''पहेलियाँ वास्तव में किसी वस्तु का चित्रण करती हैं-ऐसा चित्रण, जिसमें अप्रकट के द्वारा प्रकट का संकेत होता है। अप्रकट, इन पहेलियों में बहुधा वस्तु के उपमान के रूप में आता है। ये उपमान पहेली पूछने वाले के परिवेश से सम्बन्धित होते हैं। अतः यह स्वभाविक ही है कि गाँव की पहेलियों में ऐसे उपमान भी ग्रामीण वातावरण से ही लिये जाते हैं।''[46] पहेलियाँ, एक प्रकार से वस्तु को सुझाने वाले उपमानों से निर्मित शब्द चित्रावली हैं, जिनमें चित्र प्रस्तुत करके यह पूछा जाता है कि यह किसका चित्र है। पर इससे यह न समझना चाहिए कि उपमानों द्वारा यह चित्र पूर्ण होता है। उपमनों द्वारा जो चित्र निर्मित होता है, वह स्पष्ट होता है, पर वह यथा संभव निश्चित संकेत दे जाता है जो किसी अन्य वस्तु का बोध नहीं दे सकता।[47] कुमाउनी लोक भाषा में पहेलियों के लिए 'आण' या 'आन' शब्द का प्रयोग प्रचलित है और गढ़वाल और कुमाऊँ में इसकी समृद्ध लोक परम्परा रही है।

किसी व्यक्ति की बुद्धि-परीक्षा के लिए पहेलियों का प्रयोग किया जाता रहा है। मध्यप्रदेश के मंडला जिले, भोजपुर प्रदेश में विवाह के अवसर पर पहेली पूछने की प्रथा है। पहेलियों की उत्पत्ति का कारण मनोरंजन भी है। दिन भर कठोर श्रम के बाद रात्रि में पहेलियाँ बुझाकर अपने दिल दिमाग को ताजा रखने की भी प्रवृत्ति रही होगी। प्राचीन समय में जब गाँवों में मनोरंजन के अन्य कोई साधन नहीं रहे होगें वहाँ पहेलियों के द्वारा ही मन बहलाया जाता रहा होगा। वैदिक

काल में भी पहेली का अस्तित्व था। कृष्ण की गीता में तथा महाभारत में यक्ष युधिष्ठिर संवाद भी पहेली का अन्यतम उदाहरण है- 'का वार्ता किमाश्चर्यं, कह पन्था? कश्च मोदते। इति मे चतुरः प्रश्नान, उत्तरं दत्वा जलं पिब।' जन-जीवन में पहेलियों के अनेक प्रकार उपलब्ध हैं। डा. कृष्ण देव उपाध्याय ने इन्हें सात भागों में विभक्त किया है- 1. खेती संबन्धी पहेलियाँ 2. भोज्य पदार्थ सम्बन्धी पहेलियाँ 3. घरेलू सम्बन्धी पहेलियाँ 4. प्राणि सम्बन्धी पहेलियाँ 5. प्रकृति सम्बन्धी पहेलियाँ 6. शरीर सम्बन्धी पहेलियाँ 7. प्रकीर्ण पहेलियाँ।[48] कुछ पहेलियाँ निम्नवत् हैं- 'अगहन पइठ चैत के प्याट, तेहि पर पण्डित करैं झप्याट। है नेरे पैहो ना हेरे, पण्डित कहे विगहपुर केरे।।' मथुरा के पण्डित भोजन भट्ट होते हैं। उनकी इस भोजन प्रियता को लेकर यह पहेली बनाई है जिसका उत्तर है 'कचौरी'। कंद सफेद और लाल दोनों तरह का होता है अतः उसे लाल छड़ी कहते है और मूली के संबन्ध में बगूला कहा जाता है- 'एक बाग में ऐसा हुआ, आधा बंगुला आधा सुआ।' (मूली)

अंततः स्पष्ट है कि लोक साहित्य अपने में अत्यंत समर्थ और सार्थक है। लोक साहित्य की भाव-भूमि समग्र जीवन को स्पंदित करती है।

बोध प्रश्नः-

प्रश्न 7. लोक साहित्य को आप कितनी श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते हैं?

.....

.....

.....

प्रश्न 7. नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं, कुछ गलत। उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

ड़. मुहावरें, कहावतों और सूक्तियों को सुभाषित कहा जाता है। ( )

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-1 लोक साहित्य श्रुति परम्परा पर आधारित पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता हुआ वह पारम्परिक साहित्य है जो निर्वयाक्तिक, सरल, गेय और अकृतिम, समसामायिक सजीव अभिव्यक्ति देता है।

सही गलत

क. (ग्)

ख. (√)

उत्तर-2 लोक वार्ता, लोक परम्पराओं, प्रथाओं, लोक विश्वासों, लोक साहित्य, नृतत्व, समाज शास्त्र, भाषा शास्त्र, इतिहास तथा पुरातत्व आदि का अध्ययन है। इसमें सम्पूर्ण लोक संस्कृति का अध्ययन किया जाता है। जबकि लोक साहित्य में लोक गीतों, कथाओं, गाथाओं, मुहावरों और कहावतों का अध्ययन सम्भव है। लोक साहित्य, लोक वार्ता का एक अंग मात्र है।

सही गलत

ग. (√)

घ. (√)

उत्तर-3 लोक साहित्य मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता हुआ लोक जीवन की अनुभूतियों, परम्पराओं और विश्वासों को सहज, सरल भाव से प्रस्तुति देता है, जबकि अभिजात साहित्य लिखित रूप में प्रौढ़ता, परिपक्वता के साथ परिनिष्ठत रूप में प्रस्तुत होता है। अभिजात साहित्य अभिव्यक्ति के रूप में भी विशिष्टता चाहती है, जबकि लोक साहित्य की भाषा सीधी-सादी, सरल, व्यावहारिक और आड़म्बर रहित होती है।

सही गलत

ड. (√)

च. (√)

उत्तर 4. लोक साहित्य के माध्यम से ही किसी समाज की यथा स्थिति व उसकी संस्कृति की सम्पूर्ण झलक मिलती है। जन-समुदाय विशेष की प्रथाएँ, परम्पराएँ, रूढियाँ, विश्वास, मान्यताएँ, रिति रिवाजों का प्रतिबिम्ब उसके लोक साहित्य में पड़ता है।

सही गलत

छ. (√)

ज. (√)

उत्तर 5. लोक की भाषा अथवा बोली में पारम्परिक, स्थानीय अथवा पुरा आख्यानमूलक गेय अभिव्यक्ति लोक गाथा है। लोक गाथा का रचनाकार अज्ञात होता है, इसमें प्रमाणिक मूल पाठ की कमी होती है। लोक की भाषा अथवा बोली में परम्परा से चली आ रही मौखिक रूप से प्रचलित कहानी 'लोक कथा' है।

सही गलत

झ. (ग)

ञ. (√)

उत्तर 6. ग्रामीण जनता द्वारा अभिनीत नाटक लोक नाट्य हैं, जिनकी रचना उनके द्वारा सरल, सीधी भाषा में की जाती है। उत्तर भारत में 'रामलीला' और 'रासलीला' तो प्रचलित है ही, मालवा का 'माच' नामक नाटक भी अत्यंत लोक प्रिय है। राजस्थान में 'ख्याल', हाथरस की 'नौटंकी', उत्तर प्रदेश का 'स्वांग', बृजमंडल का 'भगत', गुजरात का 'भवाई', बंगाल की 'जात्रा' और 'गम्भीरा', महाराष्ट्र का 'तमाशा', ललित, गोंधल, बहुरूपिया और 'दशावतार', दक्षिण भाषा का 'यक्षगान', तेलुगा का 'विधिभागवतम्' देश के कुछ प्रसिद्ध लोक नाट्य हैं।

सही गलत

ट. (√)

ठ. (ग)

ड. (√)

उत्तर 7. लोक साहित्य को हम पाँच श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते हैं- लोक-गीत, लोक-गाथा, लोक-कथा, लोक-नाटय और लोक सुभाषित।

2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुमाउँनी लोक साहित्य एवं कुमाउँनी साहित्य, पृ01
2. लोक साहित्य विज्ञान, डा. सत्येन्द्र, पृ0 4
3. लोक साहित्य विमर्श, लोक साहित्य और जनजीवन, पृ0 9
4. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृ0 5
5. लोक साहित्य विज्ञान, डा. सत्येन्द्र, पृ0 5
6. हिन्दी साहित्य कोष, डा. धीरेन्द्र वर्मा, पृ0 682
7. कुमाउँ का लोक साहित्य, पृ0 1
8. लोक गीतों की सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि, डा. विद्या चौहान, पृ0 49

9. लोक साहित्य की भूमिका, डा. कृष्ण देव उपाध्याय, पृ0 22

10. वही, पृ0 21

11. कुमाउँनी लोक साहित्य एवं कुमाउँनी साहित्य, पृ03

12. वही, पृ03

13. जनपद, त्रैमासिक, खंड-1, अंक-2, पृ0 63-64

14. मेरिया लीच-डिक्शनरी, भाग-1, पृ0 399।

15. मेरिया लीच-डिक्शनरी, भाग-1, पृ0 399।

16. मेरिया लीच-डिक्शनरी, वही, भाग-1, पृ0 402-403।

17. मेरिया लीच-डिक्शनरी, भाग-1, पृ0 401।

18. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास, भाग-16, प्रस्तावना, पृ0 14

19. कुमाउँनी लोक साहित्य एवं कुमाउँनी साहित्य, पृ0 6

20. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन, पृ. 55

21. हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, लोक काव्य की भावात्मकता और रसात्मकता, रघुवंश, पृ0 503

22. लोक संस्कृति की समीक्षा, पृ0 8

23. कुमाउँनी लोक साहित्य एवं कुमाउँनी साहित्य, पृ0 13

24. कविता कौमुदी, भाग-5, प्रस्तावना, पृ0 1,2

25. कविता कौमुदी (गा्रमगीत) पृ0 69

26. भारतीय लोक साहित्य, पृ0 53

27. लोक धारा, हीरामणि सिंह साथी, अपनी बात, पृ0 5

28. लोक धारा, हीरामणि सिंह साथी, प्रस्तावना, (लेखक)-डा. कैलाश गौतम, पृ0 2

29. मालवी लोक गीत; एक विवेचनात्मक अध्ययन, पृ0 18

30. हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 689

31. कविता कौमुदी, भाग 5, पृ0 45

32. पारीकः राजस्थानी लोकगीत, पृ0 22-25

33. श्याम परमार: भारतीय लोक साहित्य, पृ0 64-65

34. लोक संस्कृति और इतिहास, बद्री नारायण, पृ0 78

35. लोक-साहित्य की भूमिका, लोक कथाओं का विश्लेषण, पृ0 131

36. ब्रज लोक साहितय का अध्ययन, डा. सत्येन्द्र, पृ0 83

37. फोक लिटरेचर ऑफ बंगाल, डा. सेन, पृ0 3

38. लोक साहित्य की भूमिका, पृ0 136

39. लोक साहित्य की भूमिका, पृ0 140

40. कुमाउनी, शेर सिंह बिष्ट, पृ0 185

41. बोलचाल, पृ0 36,37

42. त्रिपथगा, अंक-6, मार्च 1956, पृ0 30

43. लोक साहित्य की भूमिका, पृ0 164

44. लोक साहित्य की भूमिका, पृ0 155

45. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1, पृ0 485

46. कुमाउनी, शेर सिंह बिष्ट, पृ0 192

47. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1, पृ0 485

48. लोक साहित्य की भूमिका, पृ0 172

2.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. लोक साहित्य की भूमिका, डा. कृष्ण देव उपाध्याय, साहित्य भवन प्रा0लि0, के0पी0कक्कड़ रोड़, इलाहाबाद-211003, पंचम संस्करण-1992

2. लोक संस्कृति और इतिहास, बद्री नारायण, लोक भारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्ड़िग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, पहला संशोधित संस्करण-2010।

3. बुंदेलखंड की लोक संस्कृति का इतिहास, नमृदा प्रसाद गुप्त, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा0लि0 2/38, अंसारी रोड़ दरियागंज नई दिल्ली-110002,

4. लोक संस्कृति की रूपरेखा, डा. कृष्ण देव उपाध्याय, लोक भारती प्रकाशन, 15ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, संस्करण 1998

5. लोक धारा, हीरामणि सिंह साथी, अनंग प्रकाशन, बी-202, गली मंदिर वाली, उत्तरी घोण्डा, दिल्ली-110055, प्रथम संस्करण 1998

6. उत्तराखण्ड का लोक साहित्य और जन-जीवन, डा. सरला चन्दोला, तक्षशिला प्रकाशन, 23/4761, अंसारी रोड़, दरिया, गंज नई दिल्ली, 110002, प्रथम संस्करण 1999

7. लोक साहित्य विमर्श, डा. स्वर्णलता, रत्नस्मृति प्रकाशन, बीकानेर, प्रथम संस्करण 1979

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोक से आप क्या समझते हैं? लोक साहित्य के स्वरूप और प्रवृत्ति पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

इकाई 3 लोक साहित्य के संरक्षण की समस्या एवं समाधान

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 लोक साहित्य के संरक्षण की समस्या
    3.3.1 लोक साहित्य संग्रहकर्ता के उपादान
3.4 संकलनकर्त्ता के अपेक्षित गुण अथवा विशेषताएँ
    3.4.1 लोक साहित्य संग्रह की समस्याओं के समाधान
3.5 सारांश
3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 उपयोगी पाठ् सामग्री
3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

लोक साहित्य लोक संस्कृति का प्राण है। यदि लोक जीवन न हो तो लोक मानव का जीवन नीरस और निष्क्रिय होकर यंत्रवत् हो जायेगा। उसकी सहज मुस्कुराहट, उत्साह, उल्लास, उमंग समाप्त ही हो जायेंगे। वास्तव में लोक साहित्य से प्रेरणा पाकर ही मानव जीवन सदैव ऊर्जावान बना रहता है इसलिए इस लोक साहित्य को बचाना एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य है। प्रस्तुत पाठ में इसके संरक्षण की दिशा में की जाने वाली कोशिशों पर चर्चा की जायेगी।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप

1. लोक साहित्य के संरक्षण के क्षेत्र में आने वाली समस्याओं से अवगत हो सकेगें।
2. लोक साहित्य के संरक्षण में आने वाली कठिनाइयों के समाधान की दिशा में भी सोच सकेंगे।
3. लोक साहित्य के संरक्षण के महत्त्व को जान सकेंगे.

3.3 लोक साहित्य के संरक्षण की समस्या

लोक साहित्य का संरक्षण एक अत्यंत दुष्कर कार्य है। इसके पग-पग पर अनेक विभिन्न बाधाएँ प्रस्तुत होती रहती हैं। यह काम पर्याप्त समय और धन की अपेक्षा रखता है। इसका मूलरूप सुदूर पिछड़ी जातियों के मौखिक परम्परा में ही शेष है। आज की विकास की दौड़ ने इन ग्राम्य प्रदेशों में नागरिक सभ्यता का प्रभाव पड़ा है और ये लौकिक साहित्य आज अपना मूल रूप खोते जा रहे हैं। इसके संग्रह और संकलन का कार्य बहुत ही परिश्रम साध्य है। इस कार्य के निष्पादन में बहुत सी समस्याओं का सामना करना पडता है। उत्तराखंड के लोक गीतों के संरक्षण में कुछ समस्याएँ निम्नवत् हैं-

1. लोक गायकों का अभाव- लोक गायक धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं। पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने लोक गीतों के प्रति लोगों के मन में उपेक्षा का भाव ला दिया है। वृद्ध पीढ़ी इन गीतों को संरक्षित रखे हुए है। अतः इनका संग्रह एक कठिन काम बन गया है।

2. पर्दे की प्रथा- ग्रामीण क्षेत्रों के अधिकांश स्त्रियाँ पर्दे का व्यवहार करती हैं। ऐसी स्थिति में इनके कंठ में संरक्षित गीतों का संग्रह करना एक दुष्कर कार्य है।

3. पुनरावृत्ति में असमर्थता- अकसर लोक गायक अपनी मस्ती में लोक गाथाओं का गान करते हैं। सुर, लय ताल से निबद्ध भावावेश में गाये गीतों को कभी-कभी यथावत् संग्रह करना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में किसी छूटी पंक्ति को पुनः गाने में गवैया असमर्थ होता है। इसी प्रकार स्त्रियों के मांगलिक अवसरों पर समवेत स्वर में गाये गीतों पर भी पुनः गायन की समस्या रहती है।

4. विशेष समय पर ही गायन का क्रम- लोक गीतों के संग्रह कर्ता के सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि ऋतु विशेष पर, अवसर विशेष पर या आयोजन विशेष पर ही कुछ गायन संभव हो पाते हैं। इन्हें कभी भी गवैयों से सुनने के अवसर नहीं मिल पातें। संग्रह कर्ता को अनुकूल समय की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। उदाहरण के लिए रोपनी के गीत, खेतों में धान रोपते समय ही गाये जाते हैं। प्रतिकूल अवसर पर इनकी उपलब्धि संभव नहीं। उत्तराखण्ड के संदर्भ में 'जागर' इत्यादि गीत पूजा या आयोजन के समय ही अनुकूल वातावरण की सृष्टि के साथ गाये जाते हैं। इनका संग्रह कही भी और कभी भी के आधार पर नहीं किया जा सकता।

5. संकोची मनोवृत्ति- प्रायः सुदूर ग्रामीणवर्ती क्षेत्र के लोग संकोची प्रवृत्ति के होते हैं। उनसे गीतों को समझकर लिपिबद्ध कराना अत्यंत कठिन काम है।

6. पहाड़ के दुर्गम प्रदेश- उत्तराखण्ड के अधिकांश प्रदेश दुर्गम, अतिदुर्गम पहाडियों पर बसे हैं। वहाँ तक पहुँचना बहुत टेढी खीर है। यातायात के न तो उपयुक्त साधन है न कई क्षेत्रों में विधिवत् सड़कें ही बनी हैं। मीलों दूर पैदल चलकर सुदूर स्थलों पर पहुँचना संग्रह कर्ता के लिए अत्यंत

कष्ठकारी है। यही नहीं यहाँ की भौगोलिक स्थिति और मौसम समय-समय पर रंग बदलता है। ऐसी स्थिति में संग्रह कर्ता से पर्याप्त धैर्य, साहस और जीवट की अपेक्षा की जाती है।

बोध प्रश्नः-

प्रश्न 1. 'लोक साहित्य संरक्षण की क्यो आवश्यकता है?

.....

.....

.....

प्रश्न 2. लोक साहित्य संरक्षण में आने वाली समस्याओं पर प्रकाश डालिये।

.....

.....

.....

नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं कुछ गलत उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

क. लोक साहित्य संरक्षण अत्यंत सरल कार्य है। ( )

ख. प्रायः सुदूर ग्रामीणवर्ती क्षेत्र के लोग संकोची प्रवृत्ति के होते हैं।( )

3.3.1 लोक साहित्य संग्रहकर्ता के उपादान

डा. कृष्ण देव उपाध्याय ने लोक साहित्य संग्रह हेतु दो प्रकार के साधनों की चर्चा की है- 1. आंतरिक साधन 2. बाह्य साधन1। आंतरिक साधन में उन्होंने लोक साहित्य प्रेमी के लिए कुछ गुणों की चर्चा की है, जिनमें ग्राम्य जनता से तादाम्यीकरण, सहानुभूति, अनुसंधान चातुरी, तथ्यों की भली भाँति परख, स्थानीय शब्दों का प्रयोग, यथा श्रुतम् तथा लिखतम्, संग्रह की प्रमाणिकता, विभिन्न पाठों का संग्रह तथा बाह्य साधनों में नोट बुक, पैन, पेन्सिल, कैमरा रिकॉर्डिंग मशीन, फिल्म निर्माण इत्यादि की चर्चा की है। इन साधनों की विस्तार से चर्चा करने पर ही हम संग्रह की कठिनाइयों और उसकी निराकरण की दिशा में आगे बढ़ सकेंगे।

3.4 संकलन कर्त्ता के अपेक्षित गुण अथवा विशेषताएँ

1. विषय बोध- संग्रह कर्त्ता के मनोमस्तिष्क में विषय प्रवेश का एक स्पष्ट खाका होना चाहिए। उसे क्षेत्र विशेष की आवश्यक जानकारी होनी चाहिए ताकि वह उपयुक्त स्थल विशेष तक पहुँचकर लोक साहित्य को जुटा सके।

2. जिज्ञासा- अनुसंधित्सु को जिज्ञासु होना अत्यंत आवश्यक है। जिज्ञासा उसे अभीप्सित लोक साहित्य की विविध विधाओं के प्रति आकर्षित करती है और वह पूर्ण मनोयोग से तथ्यों का संकलन करता चलता है।

3. दूरदृष्टि- संकलन कर्त्ता को अपने काम में निपुण होने के साथ-साथ दूर दृष्टि रखने वाला भी होना चाहिए। यह दृष्टि ही उसे संकलित तथ्यों को विश्लेषित करने में सहायता प्रदान करती है और स्वयं ही अनावश्यक व कम उपयोगी तत्व व छाँट लेता है।

4. आत्मानुशासन- संकलन कर्त्ता को लोक साहित्य के मौलिक स्वरूप को प्राप्त करने के लिए कई व्यक्तियों, संस्थानों से सम्पर्क करना पड़ता है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उसे अपना काम करना होता है। ऐसी स्थिति में झुंझलाहट या क्रोध उसके कार्य में बाधा उपस्थित कर सकता है। उसे यथासंभव अनुशासित रहकर मृदु भाषी व्यक्तित्व का परिचय देना ही होता है।

5. ईमानदारी- संकलन कर्त्ता को आलस्य या प्रमाद वश स्वयं जानकारी इकट्ठी न कर दूसरे पर आधारित रहना घातक होता है। ऐसी स्थिति में उसके अनुसंधान की दिशा और स्तर पर प्रभाव पड़ सकता है। उसे पूरी निष्ठा और ईमानदारी के साथ तथ्यों को संकलित और विश्लेषित करना चाहिए।

6. वस्तु निष्ठता- संकलन कर्त्ता किसी पूर्वाग्रह से मुक्त होना चाहिए। उसे लोक मानस को समझते हुए उनकी आस्थाओं, विश्वासों और मान्यताओं का सम्मान करना चाहिए और बिना किसी दुराग्रह के उनकी कृतियों को यथा तथ्य स्वीकार कर लेना चाहिए।

7. निर्भीकता- अनुसंधित्सु को निर्भीक होना चाहिए और किसी भी दुर्गम भौगोलिक अथवा तात्कालिक परिस्थिति में आत्मिक संतुलन का परिचय देना चाहिए।

8. धैर्यवान एवं भ्रमणशील- अनुसंधित्सु को कई बार ऐसे व्यक्तियों या स्थितियों का सामना करना पड़ता है जो दुराग्रह से ग्रस्त होते हैं। ऐसी स्थिति में उसे धैर्य, विवेक और सहनशीलता का परिचय देना होता है। अन्यथा वह अपने कार्य में सफल नहीं हो पायेगा। उसे अपने अनुसंधान के लिए अनेक स्थलों की खाक छाननी पड़ सकती है। इसलिए उसे भ्रमण प्रिय होना भी जरूरी है।

9. समयनिष्ठ- अनुसंधान कर्त्ता को समय का पाबंद होना चाहिए। लोक गीत, लोक कथा अथवा लोक गाथा को प्राप्त करने के लिए उन्हें जिस व्यक्ति से मिलना है उसके द्वारा निर्धारित समय पर पहुँचने पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। प्रभावित व्यक्ति उसे पूरी सहायता देने हेतु तत्पर हो सकता है। समयबद्ध होना यदि अनुसंधित्सु के व्यवहार का अंग बन जाये तो वह अपना कार्य निर्धारित समय सीमा पर पूरा कर सकता है।

10. व्यवहार कुशल- व्यवहार कुशलता अन्यवेषक के लिए अनिवार्य है। विनम्र और वाकपटु व्यक्ति अजनबी स्थान और व्यक्तियों के मध्य भी घुलमिल जाता है और अपने लिए उपादेय सामग्री ले लेता है। उसकी व्यवहार कुशलता ही सामने वाले के मन पर किसी प्रकार की चोट पहुँचाये बिना मन्तव्य को पूरा कर जाती है।

11. परिश्रमी और संघर्षशील- परिश्रमी और संघर्षशील व्यक्ति ही जोखिम उठा सकता है और अध्ययनोपयोगी सामग्री को इकट्ठा कर सकता है। गढ़वाल और कुमाऊँ का अधिकांश भूभाग बीहड़ पहाडियों में है जहाँ आवागमन के साधन तक उपलब्ध नहीं हैं। यहाँ पहुँचना एक टेठी खीर है। केवल संघर्षशील व्यक्ति ही ऐसे स्थानों में जाकर लोक साहित्य की सामग्री उपलब्ध कर सकते हैं।

12. अध्यवसायी- एक सफल अन्वेषण कर्त्ता को अध्यवसायी होना चाहिए। यही गुण उसे स्थान विशेष के इतिहास, भूगोल, धर्म, दर्शन, संस्कृति को समझने में सहायक सिद्ध होता है।

13. आधुनिक तकनीकी का जानकार- आज विज्ञान का युग है। अनेक संचार माध्यमों ने लोक साहित्य की सामग्री सुलभ करने के अनेक साधन उपलब्ध कराये हैं। अनुसंधित्सु को फोटोग्राफी, वीडियोग्राफी, टंकण और इंटरनेट की जानकारी आवश्यक है। ध्वनियों को यथावत् संरक्षित करने के लिए ऑडियों विजुअल संसाधनों के प्रयोग से बहुत सहायता मिलती है। रिकॉर्ड की गई सामग्री को व्यक्ति बाद में भी बार-बार सुनकर उसे सही-सही लिपिबद्ध कर सकता है।

बोध प्रश्नः-

प्रश्न 3. लोक साहित्य संरक्षण कर्ता में कौन-कौन से गुण होने चाहिए?

.....

.....

प्रश्न 4. संग्रह कर्ता को आधुनिक कौन सी तकनीक का जानकार होना चाहिए?

.....

.....

नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं कुछ गलत उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

ग. संकलन कर्त्ता किसी पूर्वाग्रह से मुक्त नहीं होना चाहिए। ( )

घ. एक सफल अन्वेषण कर्त्ता को अध्यवसायी होना चाहिए। ( )

3.4.1 लोक साहित्य संग्रह की समस्याओं के समाधान

लोक साहित्य संग्रह कर्ता की समस्या के लिए कुछ समाधान निम्नवत् हैं -

1. क्षेत्र विशेष की परम्पराओं का ज्ञान- इस कार्य को करने वाले के पास लोक क्षेत्र की परम्पराओं का पूर्व ज्ञान आपेक्षित है। यह आवश्यक है कि उसे यहाँ की भाषा पर अच्छा अधिकार हो। उसके अन्दर समाज विशेष से तादात्म्य स्थापित करने की अनूठी क्षमता होनी चाहिए। इसलिए यहाँ की आस्था, विश्वास, खान-पान, रीति-रिवाज का जानना अनुसंधित्सु के लिए अनिवार्य है। यही कारण है कि इस अंचल विशेष का अनिवासी इस कार्य को करने में बेहद कठिनाई महसूस करता है।

2. क्षेत्रीय भाषा का ज्ञान- अनुसंधित्सु इतिहास, समाज और पूर्व परम्परा का ज्ञान तो होना ही चाहिए, साथ ही साथ उसे बहुभाषाविद् और लोक बोलियों का जानकार भी होना चाहिए।

3. तादात्म्यीकरण का गुण- अनुसंधित्सु को व्यवहारिक और समाज में घुल-मिल जाने वाला होना चाहिए, क्योंकि इसके अभाव में वह समाज के अलग-अलग वर्गों से लोक गीतों के विविध प्रकार को ग्रहण करने में असमर्थ रहेगा। यह तो सर्वविधित है कि लोक साहित्य सम्बन्धी सामग्री समाज के विभिन्न वर्गों के पास होती है। कुछ गाथाएँ और गीत समाज की अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों के पास हैं तो कुछ घरेलू, अपढ़ महिलाओं के कंठ में सुरक्षित हैं। अनुसंधित्सु के पास वह व्यवहारिक कौशल होना चाहिए ताकि वह इन सभी में असानी से घुल-मिल जाए और लोक साहित्य संग्रह कर सके। डा. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार ''लोक साहित्य के प्रेमी के लिए यह आवश्यकहै कि जिस देश या प्रदेश को वह अपने कार्य का क्षेत्र बनाए वहाँ की जनता से निकटतम सम्बन्ध स्थापित करे। अपने का महान् समझना अथवा जिन लोगों के बीच कार्य करना है, उनको सभ्य या शिक्षित बनाने की भावना घातक सिद्ध होती है। इसलिए यह आवश्यक है कि संग्रही अपने वैभव तथा सुन्दर एवं बहुमूल्य वेश-भूषा का प्रदर्शन उनके सामने न करे।''[2] सोफिया बर्न के अनुसार ''सुष्ठु तथा सुन्दर व्यवहार, सज्जनतापूर्ण बर्ताव और स्थानीय शिष्टाचार के नियमों का पालन करना अनिवार्य है।[3]

4. संग्रहकर्ता को स्थानीय जनता के प्रति सहानुभूति पूर्वक व्यवहार करना चाहिए। स्थानीय विश्वासों, प्रथाओं तथा अंधपरम्पराओं के लिए सम्मान प्रदर्शित करना भी जरूरी है अन्यथा वे लोग आत्मीयता की भावना नहीं रखेंगे। डा. कृष्ण देव उपाध्याय ने अपना तर्क कुछ इस प्रकार रखा है-''यदि हम उनकी प्रथाओं का आदन न करेंगे तो वे लोग आत्मीयता की भावना नहीं रखेंगे। उदाहरण के लिए देहरादून जिले के जौनसार-भावर क्षेत्र में बहुपति प्रथा आज भी प्रचलित है। यदि किसी कुटुम्ब में पाँच भाई हैं तो उन सब की एक ही पत्नी होगी, जो पाँ को अपना पति समझेगी। शास्त्रों ने बहुपतित्व-प्रथा को गर्हित बतलाया है। यदि संग्रहकर्ता अपने कार्य के उद्देश्य से इस प्रदेश में जाय और वहाँ के लोगों से शास्त्र-विरुद्ध इस प्रथा की निन्दा करे तो उसका मिशन

कदापि सफल नहीं हो सकता है। इस बात को गाँठ में बाँध लेना चाहिए कि जंगली तथा असभ्य जातियों के विश्वास और प्रथाएँ हमें कितनी ही अद्भुत तथा निन्दित क्यों न मालूम हों, परंतु स्थानीय निवासियों की दृष्टि में वे तथ्यपूर्ण और तर्कपूर्ण है। अतः आवश्यकता इस बात कि है कि उनके दृष्टिकोण से ही उनकी प्रथाओं को समझने का प्रयास किया जाये।''[4]

4. अनुसंधित्सु की दृष्टि निष्पक्ष व वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए। कभी-कभी लोक गीतों या लोक कथाओं के अनेक प्रारूप प्राप्त होते हैं। प्राचीन हस्तलिखित पोथियों और ग्रथों में क्षेपक भी होते हैं। इसमें संग्रह कर्ता की वस्तुनिष्ठ दृष्टि प्रमाणिकता का अनुमान कर सकती हैं। कहीं-कहीं लोक साहित्य किसी परिवार की अमूल्य धरोहर के रूप में भी संरक्षित हो सकता है। ऐसी स्थिति में अनुसंधित्सु के पास उसकी छायाप्रति प्राप्त करने की सुविधा भी होनी चाहिए।

5. संग्रहकर्ता जिस जगह से सामग्री एकत्र करता है उस क्षेत्र और व्यक्ति विशेष के विषय में भी जानकारी रखना आवश्यक है क्योंकि सामग्री की यथार्थता, भाषिक ज्ञान और ऐतिहासिकता की जाँच-पड़ताल बाद में की जा सकती है।

6. अधिकांश लोक साहित्य मौखिक या श्रुत परम्परा में ही जीवित रहता है। ऐसे लोक साहित्य का लिप्यंकन अत्यंत कठिन कार्य है, क्योंकि जैसे सुनें ठीक वैसा ही लिखे जाने में बेहद कठिनाई है। इसलिए जो उस क्षेत्र की बोली को जानता हो या उस क्षेत्र विशेष की बोली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन करने में समर्थ हो, वही शुद्ध रूप से लिप्यंकन कर सकता है। कभी-कभी व्याकरणिक रूप से शुद्ध करने की प्रवृत्ति उस साहित्य के मूल रूप को भी बाधित करती है। अधिकांशतः क्षेत्रीय बोलियों के शब्द उनका ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत उच्चारण विशिष्ट स्थितियों और व्यापारों का बोधक होता है। इसकी जानकारी के अभाव में भी लोक साहित्य का संकलन भ्रामक और त्रुटिपूर्ण हो जाता है। इसलिए यह अवधान योग्य है कि लोक साहित्य को जैसा कहा या जैसा सुना जाता है उसे वैसे ही संकलित करना चाहिए।

7. उच्चारण विशेष के आरोह-अवरोह को टेपरिकॉर्डर की सहायता से यथावत संरक्षित किया जा सकता है तथा हस्तलिखित रूपों को फोटो कॉपी द्वारा संरक्षित किया जा सकता है। संग्रह कर्ता को थोड़ा बहुत फोटोग्राफी का ज्ञान भी होना चाहिए, ताकि वस्तु विशेष को फोटोग्राफी द्वारा समझाया जा सके।

8. गढ़वाल और कुमाउँ में लोक नाट्य पांडव नृत्य का अपना एक विशेष महत्त्व है। इन गाथाओं का केवल लिखित संग्रह उपादेय नहीं हैं। यह एक अभिनय परम्परा है। जिसमें औजी ढ़ोल, नगाड़े और विविध वाद्य बजाकर करुण, वीर और श्रृंगार रस से परिपूर्ण गाथाएँ गाते हैं। पात्र के बदलते ही वाद्य यंत्रों के स्वर भी बदल जाते हैं और कभी-कभी सामूहिक नृत्य भी होता है। यह समग्र अनुभव केवल लिखित प्रत्यंकन से अभिव्यक्त नहीं हो सकता। लोक चित्त की सामूहिकता और उल्लास का मूर्त रूप प्राप्त करने के लिए इनकी वीडियों ग्राफी करनी चाहिए।

9. लोक गीतों की अपनी विशिष्ट लय और धुन होती है। कोई भी लोक गीत अपने विशिष्ट अवसर पर विशिष्ट धुन और लय के साथ गाया जाता है। इसलिए इनकी स्वर लिपि का निर्माण कर इनके सौदर्य को संरक्षित करना भी लोक साहित्य के संग्रह कर्ता का कर्तव्य बन जाता है।

10. ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियाँ पर्दा करती हैं और वे किसी अनजान व्यक्ति के सामने आकर गा नहीं सकतीं या परम्परा से प्राप्त कथाओं को बाँट नहीं पाती। ऐसे गीतों को एकत्रित करना अत्यंत कठिन हो जाता है। साथ ही उत्तराखण्ड में कुछ ऐसे गीत हैं जो विशेष समय में ही गाये जाते हैं इन्हें अतिरिक्त समय में गाना अमंगलकारी माना जाता है। जैसे 'जागर गीत' विशेष अवसरों पर ही सुनायी पड़ते हैं। इसी प्रकार मांगल गीत, चौमासे में गाये जाने वाले बाजूबंद विशेष मौको और मौसम में गाये जाते हैं। इन गीतों को संकलन करते समय अनुसंधित्सु को चाहिए की वह प्रत्येक मौसम और अवसर विशेष पर जाकर इनका संग्रह करें।

11. सोफिया बर्न मानती हैं कि लोक साहित्य के लिए विशिष्ट अनुसंधान चार्तुय होना चाहिए। कुछ प्रथाएँ केवल पुरुष पालन करते हैं और कुछ विधि विधान स्त्रियों द्वारा सम्पादित होता है। यही नहीं कुछ परम्पराएँ विशिष्ट कुलों की होती हैं। इन्हें उन्हीं से सम्पर्क साध करके जाना जा सकता है। इस विश्लेषण की क्षमता अनुसंधित्सु में अनिवार्य है। सोफिया का मानना है-''युवती स्त्रियाँ प्रेम-गीत, टोटका, शकुन शास्त्र तथा भूत-दूत के विषय में प्रमाणभूत है। बूढ़ी स्त्रियाँ शिशु-गीत, लोक-कथा तथा जन्म, मृत्यु और बीमारी से सम्बन्धित विधि-विधानों की अधिक जानकारी रखती हैं। संग्रही को पशु पक्षियों के विषय में किसी शिकारी से बातचीत करनी चाहिए, लकड़ीहारे से वृक्षों के विषय में और गृहणी से रसोई बनाने और कपड़ों को साफ करने के सम्बन्ध में पूछ-ताछ करनी चाहिए।''[5]

12. तथ्यों को जाँच परख कर ही स्वीकार करना चाहिए। किसी वस्तु विशेष के अभाव में साक्षीभूत प्रमाणों को लिपिबद्ध कर लेना चाहिए। किसी तथ्य को केवल जानकारी के अभाव में अस्वीकृति नहीं देनी चाहिए।

13. उत्तराखण्ड के अधिकांश प्रदेश बीहड़, दुर्गम स्थानों पर हैं अतः अनुसंधित्सु को पर्याप्त साहस, धैर्य और जीवट का परिचय देना होगा क्योंकि अधिकांश प्रदेशो में यातायात की सुविधा भी नहीं है।

14. यह अत्यंत आवश्यक है कि संग्रह कर्ता को स्थानीय भाषा के शब्दों में ही लोक साहित्य का संग्रह करना चाहिए। लोक गीत और लोक कथाओं के संग्रह में यह अत्यंत वांछनीय है। यही नहीं स्थल विशेष की प्रथाओं और रीति-रिवाजों को लिपिबद्ध करते समय स्थानीय परिभाषिक शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिए। यह भी संभव है कि उनके पर्यायवाची या समानार्थी शब्द हिन्दी में उपलब्ध ही न हो।

15. यह भी संभव है कि एक ही लोक गीत या लोक गाथा के विभिन्न पाठ उपलब्ध हों। संग्रह कर्ता को उनके अलग-अलग रूपों का संग्रह करना वांछनीय है। कोई भी लोक गाथा या गीत राज्यों या प्रातों में यत्किंचित परिवर्तन के साथ उपलब्ध हो सकती है। उदाहरण के लिए राजूला मालूशाही के कुमाऊँ और गढ़वाल प्रांत में अनेक पाठ उपलब्ध हैं। इसी प्रकार अनेक लोक गाथाएँ कुमाऊँ और गढ़वाल में स्थानीय पुट लेकर थोड़ी बहुत परिवर्तित हुई हैं। इसीप्रकार डा. कृष्ण देव उपाध्याय ने 'आल्हा' की बुन्देलखंडी, कन्नौजी और भोजपुरी अनेक पाठों का उल्लेख किया है। राजा गोपी चंद और भरथरी की लोक गाथा भी समस्त उत्तरी भारत में अनेक पाठों में उपलब्ध है। ढोला मारू की प्रेम कथा भी राजस्थान से लेकर भोजपुरी तक विभिन्न गायकों द्वारा स्थानीय परिवर्तन के साथ गायी जाती है। डा. चाइल्ड ने भी स्कॉटिश लोक गीतों को अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'इंग्लिश एण्ड स्कॉटिश पोपुलर बैलेड्स' में विभिन्न पाठों के साथ उपलब्ध कराया है। पं.रामनरेश त्रिपाठी ने भी अपनी पुस्तक 'ग्राम गीत' में 'भगवती देवी' शीर्षक गीत को तीन चार पाठों में उपलब्ध कराया है।

16. आज आधुनिक पीढ़ी अपनी लोक परम्पराओं, लोक संस्कृति और साहित्य के प्रति उदासीन होती जा रही है। वे लोग इसे पिछड़ेपन का चिन्ह मानने लगे हैं इसलिए इनके प्रति अभिरूचि जगाना और विलुप्त होते लोक साहित्य को बचाना हमारा पहला कर्तव्य बन जाता है।

प्रश्न

नीचे गए कथनों में से कुछ सही हैं कुछ गलत उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

ड. अधिकांश लोक साहित्य मौखिक या श्रुत परम्परा में ही जीवित रहता है। ( )

च. अनुसंधित्सु की दृष्टि निष्पक्ष व वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए। ( )

3.5 सारांश

सारांशतः लोक साहित्य के संरक्षण की समस्या व समाधान के विषय में अवगत होते हुए पग-पग पर प्राप्त समस्याओं पर विचार किया गया है। लोक गीतों के संग्रह व संरक्षण करते समय संग्रह कर्ता को लोक गायकों का अभाव, पर्दे की प्रथा, पुनरावृत्ति में असमर्थता, विशेष समय पर ही गायन का क्रम, ग्रामीणों की संकोची मनोवृत्ति, पहाड़ के दुर्गम प्रदेशों में यातायात के साधनों के अभाव का सामना करना पड़ता है। एक लगनशील अनुसंधित्सु को अपूर्व धैर्य का परिचय देना पड़ता है। एक अच्छे संकलन कर्ता में विषय बोध, जिज्ञासा, दूरदृष्टि, आत्मानुशासन, ईमानदारी, वस्तु निष्ठता, निर्भीकता, धैर्यवान एवं भ्रमणशील, समयनिष्ठ, व्यवहार कुशल, परिश्रमी और संघर्षशील, अध्यवसायी सदृश गुणों के साथ-साथ उसे आधुनिक तकनीकी का जानकार भी होना चाहिए।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. लोक साहित्य लोक संस्कृति का प्राण है। यदि लोक जीवन न हो तो लोक मानव का जीवन नीरस और निष्क्रिय होकर यंत्रवत् हो जायेगा। उसकी सहज मुस्कुराहट, उत्साह, उल्लास, उमंग समाप्त ही हो जायेंगे। वास्तव में लोक साहित्य से प्रेरणा पाकर ही मानव जीवन सदैव ऊर्जावान बना रहता है इसलिए इस लोक साहित्य को बचाना एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य है।

उत्तर 2. लोक साहित्य का संरक्षण एक अत्यंत दुष्कर कार्य है। इसके पग-पग पर अनेक विभिन्न बाधाएँ प्रस्तुत होती रहती हैं। यह काम पर्याप्त समय और धन की अपेक्षा रखता है। इसका मूलरूप सुदूर पिछड़ी जातियों के मौखिक परम्परा में ही शेष है। आज की विकास की दौड़ ने इन ग्राम्य प्रदेशों में नागरिक सभ्यता का प्रभाव पड़ा है और ये लौकिक साहित्य आज अपना मूल रूप खोते जा रहे हैं। इसके संग्रह और संकलन का कार्य बहुत ही परिश्रम साध्य है। लोक गीतों के संग्रह व संरक्षण करते समय संग्रह कर्ता को लोक गायकों का अभाव, पर्दे की प्रथा, पुनरावृत्ति में असमर्थता, विशेष समय पर ही गायन का क्रम, ग्रामीणों की संकोची मनोवृत्ति, पहाड़ के दुर्गम प्रदेशों में यातायात के साधनों के अभाव का सामना करना पड़ता है।

उत्तर 3. लोक साहित्य संरक्षण कर्ता में विषय बोध, जिज्ञासा, दूरदृष्टि, आत्मानुशासन, ईमानदारी, वस्तु निष्ठता, निर्भीकता, धैर्यवान एवं भ्रमणशील, समयनिष्ठ, व्यवहार कुशल, परिश्रमी और संघर्षशील, अध्यवसायी सदृश गुणों के साथ-साथ उसे आधुनिक तकनीकी का जानकार भी होना चाहिए।

उत्तर 4. संग्रह कर्ता को फोटोग्राफी, वीडियोग्राफी, टंकण और इंटरनेट की जानकारी आवश्यक है। ध्वनियों को यथावत् संरक्षित करने के लिए ऑडियो विजुअल संसाधनों के प्रयोग से बहुत सहायता मिलती है। रिकॉर्ड की गई सामग्री को व्यक्ति बाद में भी बार-बार सुनकर उसे सही-सही लिपिबद्ध कर सकता है।

2. सही गलत उत्तर

क. (ग्)

ख. (√)

ग. (ग्)

घ. (√)

ड. (√)

च. (√)

3.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लोक साहित्य की भूमिका, लोक साहित्य का संकलन, पृ0 3-8

2. वही, पृ0 3

3. A kindly simple genial manner, much patience in listening and quick perception of and compliance with the local rules of etiquette and courtesy are needful- Sophiya Burn.k उद्धृतांश वही, पृ0 3

4. वही, पृ0 3

5. Young women are the best authority"s on love songs, charms, omens, and simple methods of divination, old women on nursery songs and tales and all the lore connected with birth, death and sickness.k~ One must talk to the hunter about birds and beasts, to the woodcutter about trees and to the housewife about baking and washing.- Sophiya Burn, oxford, page.8

3.8 उपयोगी पाठ् सामग्री

1. लोक साहित्य की भूमिका, डा. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन, प्रा0लि0 इलाहाबाद, पंचम संस्करण, 1992।

2. लोक संस्कृति की रूप रेखा, डा. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. लोक साहित्य संरक्षण की समस्याएँ कौन-कौन सी हैं?

प्रश्न 2. लोक साहित्य संग्रह में आने वाली समस्याओं के समाधान को प्रस्तुत कीजिए।

इकाई 4 कुमाउनी लोकसाहित्य का इतिहास एवं स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 कुमाउनी लोकसाहित्य: तात्पर्य एवं परिभाषा
4.3.1 लोक साहित्य से तात्पर्य
4.3.2 लोकसाहित्य एवं लोकवार्ता
4.3.3 लोकसाहित्य एवं परिनिष्ठित साहित्य
4.4 कुमाउनी लोकसाहित्य का इतिहास
4.4.1 कुमाउनी लोकसाहित्य तथा कुमाउनी साहित्य
4.4.2 कुमाउनी लोकसाहित्य का वर्गीकरण
4.5. सारांश
4.6 पारिभाषिक शब्दावली
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री
4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

कुमाउनी लोकसाहित्य को समझने के लिए यह जरूरी है कि कुमाऊँ में प्रचलित मौखिक परंपरा किस प्रकार परिनिष्ठित साहित्य में परिवर्तित हुई। कुमाऊँ क्षेत्र में आरंभ से चली आ रही मैखिक परंपरा को जानने समझने के लिए कुमाउनी भाषा का ज्ञान जरूरी है। कुमाऊँ में आरंभिक काल से चली आ रही मौखिक परंपरा ने ही कुमाउनी लिखित साहित्य को जन्म दिया है। इकाई के पूर्वार्द्ध में आप कुमाउनी लोकसाहित्य और परिनिष्ठित साहित्य को जान सकेगे।

इकाई के उत्तरार्द्ध में कुमाउनी लोकसाहित्य के इतिहास पर दृष्टि डाली गई है,साथ ही कुमाउनी लोकसाहित्य के वर्गीकरण को भी आप इस इकाई के अन्तर्गत आसानी से समझ सकेगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

- कुमाउनी लोकसाहित्य के महत्त्व को बता सकेंगे।
- यह समझा सकेंगे कि कुमाउनी लोकसाहित्य तथा कुमाउनी साहित्य में क्या अन्तर है ?
- कुमाउनी लोकसाहित्य की विविध विधाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- मौखिक परंपरा की मौलिकता को बता सकेंगे।
- यह बता सकेंगे कि कुमाउनी साहित्य को आगे बढ़ाने में लोकसाहित्य ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

4.3.कुमाउनी लोकसाहित्य: तात्पर्य एवं परिभाषा

लोकजीवन की विविध क्रियाएं व अनुभूति जब अभिव्यक्ति के धरातल पर आती है तब वह लोकसाहित्य कहलाता है। 'लोक' की अनुभूति की अभिव्यक्ति का दूसरा नाम है लोकसाहित्य। कुमाऊं क्षेत्र भौगोलिक रूप से पर्वतीय क्षेत्र कहलाता है।यहाँ की प्राचीन परंपराएँ, गीत ,संगीत और संस्कृति के मिश्रण से यहाँ के लोकसाहित्य का निर्माण हुआ है। लोकजीवन की भावभूमि पर उगे हुए साहित्य को लोकसाहित्य की संज्ञा दी जाती हैं। आज लोकसाहित्य के प्रति सहदय पाठकों एवं विद्वानों का रुझान अधिक दिखाई पड़ता है। इसका मूल कारण यह हैं कि लोकसाहित्य एक विशाल जनसमुदाय का साहित्य है। लोकसाहित्य में परंपरागत लोकजीवन की धारणाओं, विश्वासों तथा मान्यताओं का पुट होता है। कुमाऊँ क्षेत्र की वाचिक अथवा मौखिक परंपरा का एक दीर्घकालीन इतिहास रहा है। परंपरा सें चली आ रही मौखिक अभिव्यक्ति को कुमाउनी लोकसाहित्य कहा जाता है।

4.3.1 लोकसाहित्य से तात्पर्य

लोकसाहित्य शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के "लोकृ'' (दर्शन) से हुई है "लोक'' तथा "साहित्य'' शब्द मिलकर लोकसाहित्य शब्द का निर्माण करते हैं। अमरकोश में लोकसाहित्य के लोक नामक अग्रशब्द के विभिन्न पर्यायवाची शब्द मिलते हैं यथा - भुवन,जगती,जगत्। लोकसाहित्य पूरे जनसमुदाय की अभिव्यक्ति का दर्पण होता है। लोकसाहित्य इतिहास की दीर्घकालीन परंपराओं को समाविष्ट करता है। लोक में घटित हुई या घटित होने वाली घटनाओं के बारे में संवेदना मूलक धारणा विकसित करता है। लोक साहित्य के ममर्ज्ञ डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लोकसाहित्य के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है-"लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है,उसमें भूत भविष्य,वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है।लोक कृत्स्न ज्ञान और संपूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक,लोक की धात्री सर्वभूता माता पृथिवी मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।''

डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार, "यह एक अर्धसरल स्वाभाविक मानव समाज है,जिसकी भावनाओं,विचारों,परंपराओं एवं मान्यताओं में वास्तविक कल्याण के तत्व विद्यमान रहते हैं।''

प्रोफेसर देव सिहं पोखरिया ने लोकसाहित्य के संबंध में अपना अभिमत व्यक्त करते हुए लिखा है, "लोक'' मानव समाज की वह सामूहिक इकाई है,जो अपने नैसर्गिक और स्वभाविक रूप में अभिजात्य बंधनों तथा परंपराओं से रहित पांडित्य, चमत्कार तथा शास्त्रीयता से दूर स्वतंत्र एवं पृथक जीवन का प्रचेता है और इसी का साहित्य लोकसाहित्य है।

आंग्ल भाषा में लोक को Folk (फोक) तथा साहित्य को Literature कहा जाता है। लोकसाहित्य पूर्णतः लोकमानस की उपज है।लोकसाहित्य को लिपिबद्ध अभिव्यक्ति ही नहीं माना जाता, बल्कि यह वास्तविक रूप में वाचिक अथवा भाषागत अभिव्यक्ति के रूप में समाज के बीच आता है। लोकसाहित्य में प्राचीन काल के विविध आख्यान,जीवन दर्शन के तत्व तथा सभ्यता एवं संस्कृति के कई रूप निहित होते है। मानव व्यवहार के कौशल को मौलिकता के साथ लोकसाहित्य ही प्रकट कर सकता है।

डॉ. रघुवंश के शब्दों में –"लोक की अभिव्यक्ति को साहित्य कहते के साथ ही यह मान लिया गया है कि लोकगीत तथा गाथाओं आदि लोक काव्य के रूप हैं। साहित्य जीवन का सृजन ,पुनः जीने की प्रक्रिया है। लोकाभिव्यक्ति के क्षणों में भी समाज के बीच व्यक्ति अपनी सजगता में प्रमुखतः जीवन का अनुभव करता है।''

डॉ. उर्वादत्त उपाध्याय ने लोकसाहित्य के सांस्कृतिक महत्त्व को प्रकट करते हुए कहा है कि लोक संस्कृति शिष्ट संस्कृति की सहायक होती है। किसी देश के धार्मिक विश्वासों,अनुष्ठानों तथा क्रियाकलापों के पूर्ण परिचय के लिए दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित रहता है।'

डॉ. गणेशदत्त सारस्वत लिखते हैं, 'वाणी के द्वारा प्रकृत रूप में लोकमानस की सरल, निश्छल एवं अकृत्रिम अभिव्यक्ति ही लोकसाहित्य है। इसमें जनजीवन का समग्र उल्लास उच्छवास,हर्ष-विषाद,आशा आकांक्षा,आवेग उद्वेग,सुख दुख तथा हास रुदन का समावेश रहता है।'

इन परिभाषाओं के आलोक में लोकसाहित्य की विशेषताओं को इस प्रकार निर्धारित किया जाता है-

1. लोकसाहित्य व्यक्तिगत सत्ता से ऊपर उठकर समष्टिगत सत्ता का प्रतिनिधित्व करता है।
2. इसमें वाचिक अभिव्यक्ति प्रधान होती है।
3. लोकसाहित्य प्रकृतिपरक होता है इसमें लोक जीवन की शीतल छांव महसूस की जा सकती है।
4. लोकसाहित्य की कतिपय विधाओं के निर्माता अज्ञात रहते हैं।
5. इसमें मौलिकता तथा सजकता होती है।
6. यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्वच्छंद रूप से हस्तान्तरित होती रहती है।
4. लोक की सत्यानुभूति तथा पैराणिक आख्यान स्पष्ट दिखाई देते हैं।

अतः कहा जा सकता है कि लोकसाहित्य लोक जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन करता है। इसमें अर्थवत्ता के साथ साथ रसज्ञता भी होती है।

4.3.2 लोक साहित्य और लोकवार्ता

लोकवार्ता शब्द अंग्रेजी के फोक(Folk) तथा लोर(Lore) के मेल से बना है। फोकलोर शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम इंग्लैण्ड के पुरातत्त्व विज्ञानी विलयम जॉन टामस ने लोकसाहित्य एवं लोकसंस्कृति के लिए किया । बाद में डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसे हिन्दी में 'लोकवार्ता' नाम से पारिभाषित किया। उन्ही के शब्दों में - 'लोकवार्ता एक जीवित शास्त्र है। उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है, लोक में बसने वाला जन ,जन की भूमि और मौलिक जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति,इन तीनों क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव होता है और लोकवार्ता का सम्बन्ध इन्ही के साथ है। दरअसल लोकवार्ता समाज के निम्न वर्गों के वैचारिक क्रिया व्यापारों को पारिभाषित करती है। पश्चिमी देशों में निवास कर रही आदिवासी जन समुदायों के भाषा शास्त्रीय अध्ययन तथा लोक मनोवैज्ञानिक अध्ययन के फलस्वरूप फोकलोर की विधा विकसित हुई। हिन्दी में कई विद्वानों द्वारा लोकवार्ता शब्द का प्रयोग किया गया है। लोकसाहित्य के कुशल अध्येता डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार, 'लोकवार्ता लोकमानस एवं

लोकतत्व का गहन,मनोवैज्ञानिक एवं मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन है।' सुनीतिकुमार चटर्जी ने लोकवार्ता को 'लोकयान' माना है। हजारी प्रसाद द्विवेदी इसे 'लोकसंस्कृति'मानते हैं अन्य विद्वानों ने इसे लोकविज्ञान,लोकप्रतिभा,लोकप्रवाह,लोकज्ञान, लोकशास्त्र तथा लोकसंग्रह आदि के रूप में ग्रहण किया है।

लोक साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान प्रोफेसर डी.एस.पोखरिया ने अपना अभिमत प्रस्तुत करते हुए कहा है , 'लोकसाहित्य लोकवार्ता का एक अंग है, किन्तु अंग होते हुए भी वह एक स्वतंत्र और पृथक विद्या है। लोकवार्ता का क्षेत्र वृहत और व्यापक है। लोकवार्ता में लोक परम्पराओं प्रथाओं और लोकविश्वासों लोकसाहित्यों नृतत्व समाजशास्त्र भाषाशास्त्र इतिहास तथा पुरातत्व आदि सबका अध्ययन समाविष्ट है। यह संपूर्ण लोकसंस्कृति का व्यापक अध्ययन करने वाला गतिशील विज्ञान हैं। यहाँ हमें इस बात को मानना पड़ेगा कि लोक में उत्पन्न हुई विधा लोकविधा तो कही जा सकती हैं। अर्थात उसे लोकसाहित्य तो आसानी से कहा जा सकता हैं, किन्तु जो विधा परिमार्जित होकर मनोविज्ञान की गूढ़ संकल्पनाओं का बोध कराती हुई आदिमजातीय तथ्यों से परिचित कराती है । उसे लोकवार्ता कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए । विस्तृत क्षेत्र में आप लोकवार्ता के प्रभाव को देखेंगे तथा उस वार्ता के जरिए साहित्यसम्मत उद्देश्यों के वैज्ञानिक प्रभावों का ज्ञान भी आसानी से प्राप्त कर सकेंगे ।

लोकसाहित्य जहाँ केवल अनुभूति की साहित्यिक विधाओं को प्रकट करता है, वहीं लोकवार्ता समष्टिगत ऐतिहासिक तथ्यों, पुरातात्विक मान्यताओं एंव भाषाशास्त्र के लक्षणों को भी रूपायित करती है। इससे हमें इन दोनों को समझने में आसानी हो जाती है।

4.3.3 लोकसाहित्य और परिनिष्ठत साहित्य

आप साहित्य के विषय में पढ़ते आए हैं। यहाँ हम लोकजीवन के साहित्य के विविध रूपों को समझने का प्रयास करेंगे।परिनिष्ठित साहित्य को लिखित साहित्य भी कहा जाता है। जो साहित्य सुदीर्घ साहित्य परंपरा का निर्वहन करता हुआ लोक की भावभूमि से उठकर मानकों,परिष्कार की सीढ़ियाँ चढ़ने लगता है, उसे हम अभिजात या परिनिष्ठित साहित्य के नाम से जानते हैं।अभिजात साहित्य का प्रदुर्भाव लोक साहित्य से हुआ माना जाता है। उदाहरण के लिए कुमाऊँ क्षेत्र की जागर परंपरा को ही ले लें। जागर एक कुमाउनी लोक नृत्य की गायन शैली मिश्रित विधा है। जागर लगाने का क्रम इतिहास काल में प्रारंभ से माना जाता रहा है। अशिक्षित जागर गायक वर्षो से अपने दन्तवेद से इस विधा को संजोए हुए है। कतिपय स्थितियो में हम पाते हैं कि जागर के कुछ नमूने विचित्र भाषा में लिखे गए प्राचीन भोजपत्रों या अन्य पत्रों में मिलते हैं, किन्तु जागर गाने वाला जगरिया इस लिखित पत्रों को देखे बिना सुन्दर लयात्मक अंदाज में जागर लगाता है। इससे स्पष्ट होता है कि वर्षो से चली आ रही मौखिक परंपरा स्वंय में पुष्ट है। उसमे अभिव्यक्ति की ठोस क्षमता है। किन्तु कालान्तर में विकास के साथ साथ जागर जैसी अन्य

कई गायन शैलीपूर्ण विधाएँ टेपरिकार्डर आदि के माध्यम से ध्वन्यालेखित होती गई। उसका अभिजात या लिखित साहित्य में परिवर्तन होता गया।

परिनिष्ठत साहित्य के विषय में देव सिहं पोखरिया लिखते हैं, 'लोकसाहित्य परंपरा मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी चलती आई। साहित्य लिखित और परिष्कृत रूप "अभिजात'' नाम से अभिहित किया जाता रहा। लोक की यह परंपरा ही विकास और परिवर्द्धन के विविध सोपानों को पार करती हुई लोक कवि के कंठ में पीयूषवर्षी वीणा के समान अमृत वर्षा करती रही। वेदों का "श्रुति '' नाम भी इस बात का परिचायक है कि वैदिक परंपरा भी अपने प्रारंभिक रूप में मौखिक रूप में प्रचलित थी। इसलिए वैदिक साहित्य को लोक जीवन की आदि सम्पदा कहा जाता सकता है। बाद में लक्षणकारों द्वारा लैकिक साहित्य को शास्त्रीय रूप प्रदान किया गया। निरंतर प्रगतिशील परिवर्तन शील सभ्यता और संस्कृति लोकमानस के परिवर्तन की स्थितियों के साथ ही साहित्य के स्वरूप को भी परिवर्तित करती रही। समय के साथ ही उसमें गति, युगबोध और मूल्यों की नवीनता ने प्रकृष्ट रूप से स्थान प्राप्त किया। इसी कारण लोककवि वैदिक परंपरा से भी आगे बढ़ आया और लोक जीवन के साथ ही उसके अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष भी परिवर्तित होकर नए आयामों का रेखांकन करने लगे।'

उपर्युक्त अभिमतों तथा परिभाषाओं के आलोक में आप लोकसाहित्य को मौलिक सहज तथा परंपरा से चली आ रही लोक सम्मत विधा मानेंगे तथा लोकसाहित्य का सुव्यवस्थित , अभिजात तथा लिखित स्वरूप को परिनिष्ठित साहित्य के रूप में समझ सकेंगे।

बोध प्रश्न

(क) सही विकल्प का चयन कीजिए

1. परिनिष्ठित साहित्य को क्या कहा जाता है ?

क. लोकसाहित्य

ख. ग्राम साहित्य

ग. अभिजात साहित्य

घ. आदिम साहित्य

2. लोकसाहित्य की परिभाषा दीजिए तथा अपने शब्दों में उसकी संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

3. लोकवार्ता से आप क्या समझते हैं?

4.4 कुमाउनी लोकसाहित्य का इतिहास

कुमाऊँ में आरंभिक काल से प्रचलित मौखिक साहित्य को लोकसाहित्य कहा जाता है।यद्यपि कुमाउनी में हमें दो प्रकार का साहित्य मिलता है, किन्तु मौखिक परंपरित साहित्य के निर्माता रचयिता अज्ञात होने के कारण लोगों के दन्तवेद या टेपरिकार्डर आदि के माध्यम से लोकसाहित्य यत्र तत्र किसी रूप में उपलब्ध हो जाता है। कुमाउनी लोकसाहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालने से हमें पता चलेगा कि जिन रचनाकारों के कालक्रम का हमें पता है या जिनके द्वारा लिखा गया साहित्य हमें उपलब्ध है, हम उसे इतिहास में जोड़ते हुए लिखित या मौखिक का भेद किए बिना अध्ययन की समग्र सामग्री के रूप में स्वीकार करेंगे।

कुमाउनी भाषा में कविता, कहानी , निबंध तथा नाटक तथा अन्य विधाओं की रचनाओं का उल्लेख हुआ है। इतिहास काल में समय समय पर विभिन्न शासनों का प्रभाव यहाँ के साहित्य पर भी पड़ा। इसीलिए संस्कृत,बगंला,उर्दू आदि भाषाओं का प्रभाव भी कुमाउनी लोकसाहित्य में देखा जा सकता है।

प्रो. शेर सिंह बिष्ट के अनुसार, " कुमाउनी में लिखित शिष्ट साहित्य की परंपरा अधिक प्राचीन नहीं है। यद्यपि लिखित रूप में कुमाउनी भाषा का प्रयोग ग्यारहवी सदी से उपलब्ध ताम्रपत्रों, सनदों एवं सरकारी अभिलेखों में देखने को मिलता है,परन्तु साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में उसका लिखित रूप गुमानी (1790-1846 ई.) से प्रारंभ होता है। गुमानी ने जिस तरह की परिष्कृत कुमाउनी का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है, उससे लगता है कि उससे पूर्व भी कुमाउनी में साहित्य लिखा जाता रहा होगा। लेकिन उसकी कोई प्रामाणिक जानकारी अभी तक सामने नहीं आ पाई है।

कुमाउनी के लिखित साहित्य को प्रकाश में लाने का श्रेय तत्कालीन स्थानीय अखबारों को जाता है जिसमें 'अल्मोड़ा अखबार', 'कुमाऊँ कुमुद', 'शक्ति','अचल' आदि प्रमुख हैं। डॉ. विष्ट ने कुमाउनी के लिखित साहित्य को कालक्रमानुसार तीन चरणों में बाटा है-

प्रारंभिक काल (1800 ई. से 1900 ई.)

मध्य काल (1900 ई. से 1950 ई.)

आधुनिक काल (1950 ई. से अब तक)

कुमाउनी साहित्य का प्रारंभिक दौर काफी उतार चढ़ावों से भरा था। सन् 1790 ई. में चन्द शासक के पतन के फलस्वरूप कुमाऊँ क्षेत्र गोरखा शासन के अधीन हो गया था। इसके उपरांत सन् 1815 में कुमाऊँ अंग्रेजी शासक के कब्जे में आ गया। प्रत्येक शासन काल में तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य का असर उस समय की रचनाओं पर पड़ा। गुमानी पन्त ने

अंग्रेजी शासन के विरूद्ध कविताओं के माध्यम से आवाज उठाई। गुमानी पतं को लिखित कुमाउनी साहित्य का प्रथम कवि माना जाता है। इनका जन्म सन् 1790 में काशीपुर में हुआ। इन्होंने रामनाम, पंचपंचाशिका,राममहिमा वर्णन,गंगाशतक,रामाष्टक जैसी महान कृतियों की रचना की। इनका अवसान सन् 1848 ई. को हुआ। गुमानी के समकालीन कवि कृष्णापाण्डे (सन् 1800-1850 ई.) का जन्म अल्मोड़ा के पाटिया नामक ग्राम में हुआ था। इनकी रचनाओं में भी सामाजिक यथार्थ का चित्रण मिलता है। इनकी फुटकर रचनाओं में 'मुलुक कुमाऊँ' तथा 'कलयुग वर्णन' प्रमुख हैं। सन् 1848 ई. में फल्दाकोट में जन्मे शिवदत्त सती मध्यकालीन कुमाउनी कवि हैं। ये वैद्यक थे। इन्होंने घस्यारी नाटक मित्र विनोद नामक पुस्तकें लिखी।

गौरीदत्त पाण्डे 'गौर्दा' भी मध्यकालीन कुमाउनी कवियों में अपना अलग स्थान रखते हैं। इनका जन्म 1872 ई. को देहरादून में हुआ तथा मृत्यु 1939 ई. को हुई। इनकी रचनाओं की प्रासंगिता के कारण हम इन्हें वर्तमान पाठ्यक्रम में भी पढ़ते है। इनकी कविताओं का संकलन 'गौरी गुटका' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अलावा इनकी अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाएँ प्रथम वाटिका तथा छोडों गुलामी खिताब है। अंग्रेजी शासक के अत्याचारों के विरूद्ध इन्होने बड़ा काव्यांदोलन किया था।आधुनिक युग के छायावादी काव्य के आधार स्तंभ सुमित्रानंदन पंत का जन्म अल्मोड़ा जनपद के कौसानी नामक ग्राम में हुआ था। इनकी कुमाउनी में 'बुरूंश'नामक कविता प्रकृति का साक्षात निरूपण करती है। पंत जी का हिन्दी साहित्य जगत में भी बहुत बड़ा नाम है। श्यामाचरण पंत (1901 ई. से 1967) का जन्म रानीखेत में हुआ। इनके द्वारा कई फुटकर रचनाएँ लिखी गई। कुमाऊँ के जोड़ एवं भगनौल विधा के ये एक अच्छे ज्ञाता थे। 'दातुलै धार ' इनकी विख्यात प्रकाशित पुस्तक है।

अल्मोड़ा में सन् 1910 को जन्में चन्द्रलाल चौधरी ने कुमाऊँ की प्रसिद्ध लोक विधा कहावतों पर आधारित पुस्तक 'प्यास' सन् 1950 में लिखी । इनका निधन वर्ष 1966 में हुआ। इनके अलावा मध्यकालीन कुमाउनी कवियों में जीवनचन्द्र जोशी, तारादत्त पाण्डे, जयन्ती पंत, बचीराम, हीराबल्लभ शर्मा, ताराराम आर्य, कुलानन्द भारतीय तथा पीताम्बर पाण्डे का नाम उल्लेखनीय है। सन् 1950 से लेकर वर्तमान समय तक का रचनाकाल आधुनिक काल कहलाता है। स्वतंत्रता के बाद कुमाउनी रचनाकारों की रचनाओं में आए बदलाव को हम आसानी से देख सकते है। समय के साथ साथ ठेठ कुमाउनी का रूप मानक भाषा की तरफ बढ़ता दिखाई देता है। युगीन प्रभाव के साथ साथ रचनाओं के अर्थग्रहण शैली में परिवर्तन देखा जा सकता है।

आधुनिक युग के कवियों में सर्वप्रथम चारूचंद पाण्डे का नाम उल्लेखनीय है। इनका जन्म सन् 1923 को हुआ। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'अड.वाल' सन् 1986 में प्रकाशित हुआ। इन्होंने पूर्ववर्ती कवि गौर्दा के काव्य दर्शन पर चर्चित पुस्तक लिखी। लोकसाहित्य के मर्मज्ञ ब्रजेन्द्र लाल साह का जन्म 1928 ई. को अल्मोड़ा में हुआ। रंगमंच से जुड़ाव होने के कारण इनकी

रचनाओं को पर्याप्त प्रसिद्धि मिली है। इसी क्रम में नंदकुमार उप्रेती जिनका जन्म सन् 1930 को पिथौरागढ़ में हुआ, अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। इनकी 'भुलिनिजान आपुण देश',तीन कांड प्रकाशित पुस्तकें हैं। आधुनिक कुमाउनी के लोकप्रिय कवि शेर सिहं विष्ट 'अनपढ़' सन् 1933 में जन्मे थे। गीत एवं नाटक प्रभाग के एक जाने माने हास्य कलाकार के रूप में भी उनका नाम जन जन की जुबान पर आज भी है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं- 'मेरि लटि पटि', 'जाँठिक घुड्.र', तथा 'फच्चैक (बालम सिहं जनोटी के साथ)। बंशीधर पाठक 'जिज्ञासु' का जन्म 1934 ई. को अल्मोड़ा में हुआ । इनकी सुप्रसिद्ध रचना 'सिसौण' है। हिन्दी साहित्य के जाने माने मूर्धन्य साहित्यकार रमेशचन्द्र साह का जन्म स्थान अल्मोड़ा है। इन्हें 'पद्म श्री' तथा 'व्यास सम्मान' जैसे महानतम अलंकरणों से विभूषित किया जा चुका है। 'उकाव हुलार' इनकी कुमाउनी में प्रतिष्ठित पुस्तके है। श्रीमती देवकी महरा का जन्म सन् 1937 ई. को अल्मोड़ा में हुआ। इनकी पुस्तकों में वेदना तथा विरहानुभूति दिखाई देती है। 'प्रेमाजंलि', 'स्वाति', 'नवजागृति' तथा उपन्यास 'सपनों की राधा' इनकी प्रकाशित कृतियाँ है।सन् 1939 को बेरीनाग के गढ़तिर नामक ग्राम में जन्मे बहादुर बोरा 'श्रीबंधु' की रचनाएँ विविध पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं इनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता की झलक मिलती है। मथुरादत्त मठपाल कुमाउनी के एक लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार हैं। इनका जन्म सन् 1941 को भिक्यासैण (अल्मोड़ा) में हुआ। ये 'दुदबोलि' कुमाउनी पत्रिका का संपादन वर्षों से करते आ रहे हैं।

इसके अतिरिक्त कुमाउनी साहित्य में अनेक पुरोधा रचनाकारों के नाम उल्लेखनीय हैं- यथा गोपाल दत्त भट्ट ,भवानीदत्त पंत, दीपाधार, हीरा सिहं राणा, गिरीश तिवारी 'गिर्दा',महेन्द्र मटियानी, दुर्गेश पंत,राजेन्द्र बोरा (अब त्रिभुवन गिरी), जुगल किशोर पेटशाली, बालम सिहं जनोटी,दामोदर जोशी 'देवांशु' डॉ. शेरसिहं विष्ट ,डॉ. देवसिहं पोखरिया , जगदीश जोशी, रतन सिहं किरमोलिया, उदय किरौला, दीपक कार्की, हेमन्त विष्ट, श्याम सिहं कुटौला, डॉ. दिवा भट्ट , मोहम्मद अली अजनबी, रमेश पाण्डे राजन, देवकी नंदन काण्डपाल, महेन्द्र सिहं महरा 'मधु' सहित वर्तमान के अन्य लेखक एवं कवि।

4.4.1 कुमाउनी लोकसाहित्य तथा कुमाउनी साहित्य

युग युगों से लोकमानस की स्वच्छंद स्वतंत्र अभिव्यक्ति को लोकसाहित्य की परिधि में रखा जाता है। यहाँ आप 'जो लिखा ना गया हो किन्तु गाया गया ' को लोकसाहित्य समझेंगे , लोक की भावभूमि पर मौलिक और स्वाभाविक रूप से जो कुछ उच्चरित होता रहा या वह लोकरंजक गुणों से परिपूर्ण था, जिसे तत्कालीन व अद्यतन समाज ने ज्यों का त्यों ग्रहण किया, को लोकसाहित्य कहना उचित प्रतीत होता है। हालाँकि कालान्तर में यही वाचिक अभिव्यक्ति परिनिष्ठित या लिखित साहित्य के रूप में सर्व समाज के समक्ष आई, किन्तु अपने उद्भव एवं विकास काल से जो कुछ बुजुर्गों के मुख से गाया गया तथा सुना गया उसे लोक का साहित्य या

लोकसाहित्य कहा गया। उदाहरण के लिए फूलदेई के त्योहार में बच्चें घर घर जाकर फूल चढ़ाते हुए कहते हैं ।-

" फूल देई छम्मा देई
दैणौ द्वार भर भकार
त्वी देली सो नमस्कार।''

घुघुतिया त्यार (मकर संक्रान्ति) पर्व पर कुमाऊँ में कौवे बुलाने का प्रचलन है-

"काले कव्वा काले
घुघुती मावा खा ले
तु ल्हि जा बड़
म्यकैं दिजा सुनु घड़ा ''

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त परंपरा आरंभिक काल से चली आ रही है। इसका प्रदुर्भाव कैसे हुआ ? ये किसने रचा ? इस संबंध में कोई सटीक उत्तर प्राप्त नहीं होता। जो पढ़ना लिखना कभी नहीं जानते थे। वे लोग भी इसे आसानी से कह जाते है।लिखित साहित्य के अस्तित्व में आते ही समस्त या कुछ कुछ वाचिक परंपराओं का प्रतिफलन लिखित साहित्य में किया जाने लगा। अतः कहा जा सकता है कि वर्तमान दौर में भी कतिपय लोक सम्मत विधाएँ ऐसी है जिन्हें केवल दन्तवेद के द्वारा ही अनुभूत किया जा सकता है। अनुभूति के धरातल पर उर्वर लोकमानस की उपज ही लोकसाहित्य है।

कुमाउनी साहित्य लोकसाहित्य का ही लिखित एवं परिमार्जित रूप है। मध्यकालीन तथा आधुनिक कालीन कुमाउनी लोकसाहित्य की परंपरा का विशुद्ध लिखित रूप कुमाउनी साहित्य के नाम से जाना जाता है। कुमाऊँ क्षेत्र की विविध भाषा बोलियों में कुमाउनी लोकसाहित्य तथा लिखित साहित्य उपलब्ध होता है। डी0 एस0 पोखरिया ने लिखा है, ' परिनिष्ठत या अभिजात साहित्य को लिखित साहित्य के रूप में कुमाउनी साहित्य के नाम से अभिहित किया जाता है। परिनिष्ठित साहित्य में युगीन परंपराओं को मर्मज्ञ अपने दृष्टिकोण से अभिव्यक्त करता है। इस साहित्य में क्रमिक विकासवादी दृष्टिकोण से रचनाकार ठेठ भाषा का परिमार्जन कर विषयवस्तु को ग्राहय बनाता है।कुमाउनी लोकसाहित्य के ध्वन्यालेखन तथा मुद्रण आदि से कुमाउनी साहित्य का अस्तित्व बहुत विकसित हुआ है। कुमाउनी साहित्य के परिनिष्ठित स्वरूप पर शोधकार्य करने वाले अनुसंधाताओं को विषयवस्तु को समझने में आसानी हो जाती है। कुमाउनी लिखित साहित्य के द्वारा नवीन भावबोधों एवं कलापक्ष पर आसानी से विवेचना की जा सकती है। कुमाउनी साहित्य में लोकसाहित्य की तरह गेयता को लिखने या अभिव्यक्त करने में कठिनाई जरूर होती है, फिर भी गेय विधाओं को कुमाउनी साहित्य में आसानी से लिखने के लिए हलन्त तथा अन्य स्वर व्यंजनों को यथास्थान अंकित किया जाता है ताकि पाठकवर्ग या विद्यार्थी उसे आसानी से समझ सकें।

4.4.2 कुमाउनी लोकसाहित्य का वर्गीकरण

कुमाउनी लोकसाहित्य को विभिन्न विद्वानों ने अपने अपने ढ़ग से वगीकृत किया है।प्रो. पोखरिया के अनुसार, 'परिनिष्ठित या अभिजात साहित्य की भाँति देखने व सुनने की योग्यता के आधार पर कुमाउनी लोकसाहित्य के भी दो भेद किये जा सकते हैं- (1)श्रव्य और (2)दृश्य । कुमाउनी लोकसाहित्य की कई विधाओं में श्रव्य और दृष्य के गुण एक साथ पाए जाते हैं कुमाउनी के झोड़ा ,चाँचरी, छपेली आदि गीत रूप श्रव्य भी हैं और दृश्य भी। 'लोक जीवन की अभिव्यक्ति को प्रायः गेय शैली में देखा सुना जा सकता है। लयात्मक आधार पर कुमाउनी लोकसाहित्य को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है', (1)पद्य (2)गद्य तथा (3)चम्पू (गद्य पद्यात्मक विधा) पद्य के अन्तर्गत विविध,लोकगीत, गद्य के अन्तर्गत लोककथा,मुहावरे,कहावतें तथा मंत्र साहित्य तथा चम्पू के अन्तर्गत गद्य,पद्य मिश्रित लोकगाथाएँ आती हैं। प्रो. पोखरिया ने कुमाउनी लोकसाहित्य का वर्गीकरण अधोलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया है-

(1) लोकगीत

(2) लोकगाथा

(3) लोककथा

(4) लोकोक्ति या कहावत

(5) मुहावरे

(6) पहेलियाँ

(7) लोकनाट्य तथा

(8) प्रकीर्ण लोक साहित्य।

डॉ. कृष्णानंद जोशी ने बटरोही द्वारा पुस्तक 'कुमाउनी संस्कृति ' में कुमाऊँ का लोकसाहित्य विषयक वर्गीकरण इस प्रकार किया है-

(1) पद्यात्मक (गेय)

(अ) धार्मिक गीत

(ब) संस्कार गीत

(स) ऋतु गीत

(द) कृषि गीत

(इ) उत्सव तथा पर्व संबंधी

(ई) मेलों के गीत

(य) परिसंवादात्मक गीत

(र) न्योली तथा जोड़

(ल) बालगीत

(2) गद्य पद्यात्मक (चम्पू काव्य)

(अ) प्रेम प्रद्यान काव्य: मालूसाही

(ब) वीरगाथा काव्य: भड़ौ- (सकराम कार्की, अजीत बोरा, रणजीत बोरा,सालदेव, जगदेव पंवार आदि)

(स) लोक काव्य – रमोला

(द) ऐतिहासिक गाथाएँ

(3) गद्य

(अ) लोक कथाएँ

(ब) लोकोक्तियाँ

(स) पहेलियाँ

(द) लोक प्रचलित जादू टोना

इस प्रकार हम देखते हैं कि यहाँ लोकसाहित्य के ज्ञाताओं ने कुमाउनी लोकसाहित्य को लगभग एक समान रूप से वर्गीकृत किया है। आप दोनों वर्गीकरणों की तुलना से पाएँगे कि मुख्य रूप से गद्य पद्य तथा चम्पू काव्य वर्गीकरण का मुख्य आधार हैं। इस के बाद उप शीर्षकों में गेयता के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। गद्य पद्य तथा चम्पू काव्य के अन्तर्गत उपबिन्दुओं को समझते हुए हम कुमाउनी लोकसाहित्य का विशद वर्गीकरण कर सकेंगे

बोध प्रश्न

(1) कुमाउनी लोकसाहित्य के वर्गीकरण को संक्षेप में समझाइए

(2) आधुनिक काल के चार कुमाउनी रचनाकारों के नाम तथा उनकी रचनाओं के नाम लिखिए

सही विकल्प चुनिए

3 (क) दृश्य श्रव्य लोकगीत है-

(अ) चाँचरी

(ब) न्योली

(स) संस्कार गीत

(द) जोड़

(ख) 'भड़ौ' किस प्रकार का काव्य है ?

(अ) प्रेमप्रधान काव्य

(ब) लोक काव्य

(स) वीरगाथा काव्य

(द) ऐतिहासिक गाथा

4.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

कुमाउनी लोकसाहित्य का अर्थ एवं परिभाषा समझ चुकें होंगे।

कुमाउनी लोकसाहित्य और परिनिष्ठित साहित्य के बारे में ज्ञान प्राप्त कर चुकें होंगे।

कुमाउनी के उद्भव एवं विकास की जानकारी प्राप्त कर चुकें होंगे।

कुमाउनी लोकसाहित्य तथा लिखित साहित्य के विद्वानों के विचारों से अवगत हो चुके होंगे।

कुमाउनी लोकसाहित्य के वर्गीकरण को समझ गए होंगे।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

परिनिष्ठित - लिखित

अभिजात - सभ्य , सुसंस्कृत

वाचिक - मौखिक

पर्यवसान - निथार या सार

ध्वन्यालेखन - टेपरिकार्डर से सुनकर लिखना

जागर - जागरण,एक कुमाउनी लोकनृत्य

चम्पू - गद्य तथा पद्यात्मक काव्य

पीयूषवर्षी - अमृत बरसाने वाली

गेय - गाने योग्य

परिमार्जन - शुद्ध करना

अन्तर्भाव - आत्मसात या ग्राह्यता का गुण

दन्तवेद - वाणी द्वारा उच्चरित

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.3 के उत्तर

1 (क) अभिजात साहित्य

7.4 के उत्तर

अति लघु उत्तरी प्रश्नों के उत्तर

2

(अ) शेर सिहं विष्ट 'अनपढ़', रचनाएँ 'मेरि लटि पटि', 'जांठिक घुड़.र', 'हसणै बहार'

(ब) गोपालदत्त भट्ट -'अगिनि आँखर', 'फिर आल फागुण','गहरे पानी पैठ','आदमी के हाथ'।

(स) देवकी महरा - 'सपनों की राधा', 'नवजागृति', 'स्वाति' ,'प्रेमांजलि'।

(द) शेर सिहं विष्ट - 'भारत माता', ईजा', उचैण।

3 (क) चाँचरी

(ख) वीरगाथा काव्य

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 पोखरिया,देव सिहं, लोक संस्कृति के विविध आयामः मध्य हिमालय के संदर्भ में, प्रथम संस्करण,1994,पृ -2-7

2. हिन्दुस्तानी,भाग 20 अंक 02 अप्रैल - जून 1959 में 'लोकवार्ता शीर्षक निबंध '

3. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, डॉ. सत्येन्द्र, पृ -3

4. लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि , डॉ. विद्या चौहान, पृ - 41

5. लोक साहित्य विज्ञान, डॉ. सत्येन्द्र ,पृ -4

6 . हिन्दी साहित्य कोश, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ - 682

7. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास,भाग - 16 प्रस्तावना, पृ - 14

8. कुमाउनी भाषा और साहित्य का उद्भव एवं विकास डॉ. शेर सिहं विष्ट, पृ -109 -112

9. उत्तराँचल पत्रिका ,सं0 दीपा जोशी,नई दिल्ली, पृ -32

4.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

(1) कुमाउनी संस्कृति , सं. बटरोही ,रूद्रपुर

(2) कुमाउनी लोकसाहित्य,डॉ. देवसिहं पोखरिया,डॉ. डी. डी. तिवारी,अल्मोड़ा

(3) कुमाऊँ की लोकगाथाओं का साहित्यिक व सास्ंकृतिक अध्ययन , डॉ. उर्वादत्त उपाध्याय , बरेली

(4) कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य डॉ.त्रिलोचन पाण्डे, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान,लखनऊ

(5) कुमाऊँ हिमालय: समाज एवं संस्कृति , डॉ. शेरसिहं विष्ट, अल्मोंडा

(6) कुमाउनी भाषा,साहित्य और संस्कृति, डॉ. देवसिहं पोखरिया, अल्मोड़ा

(7) कुमाऊँ का इतिहास, बद्रीदत्त पाण्डे, अल्मोड़ा

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

(1) कुमाउनी लोकसाहित्य का परिचय देते हुए इसके महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

(2) कुमाउनी लोकसाहित्य का वर्गीकरण कीजिए तथा इसके गद्य एवं पद्य स्वरूप की विवेचना कीजिए।

(3) लोकसाहित्य क्या है? कुमाउनी परिनिष्ठित एवं लोकसाहित्य का स्वरूप निर्धारण कीजिए।

इकाई 5 कुमाउनी लोकगीत: इतिहास, स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 कुमाउनी लोकगीतों का इतिहास एवं स्वरूप
5.3.1 कुमाउनी लोकगीत : स्वरूप विवेचन
5.3.2 कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण
5.4 कुमाउनी लोकगीतों का भावपक्षीय वैशिष्ट्य
5.4.1 कुमाउनी लोकगीतों की विशेषताएँ
5.4.2.कुमाउनी लोकगीतों का महत्त्व
5.5 कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
5.10 सहायक ग्रंथ सूची
5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आप ने कुमाउनी लोकसाहित्य के इतिहास स्वरूप का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई कुमाउनी लोकसाहित्य की अनूठी विधा लोकगीत पर आधारित है। लोकसाहित्य का पूर्ण ज्ञान रखने वाले व्यक्ति के लिए लोकगीतों को समझना आसान होगा, क्योंकि लोकसाहित्य की एक विधा लोकगीत भी है। लोकगीत आरंभिक काल से लोक की गहन अनुभूति को प्रकट करते रहे हैं। लोकमानस की जमीन से जुड़ी यथार्थता स्वतः लोकगीतों में प्रस्फुटित हुई है। इस इकाई में हम लोकगीतों के दीर्घकालीन इतिहास पर दृष्टि डालेंगे तथा इसके स्वरूप का विवेचन करते हुए इसके महत्त्वपूर्ण पक्षों को समझ सकेंगे। कुमाउनी लोकगीतों के महत्त्व को समझकर उनकी सामाजिक प्रासंगिकता का ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे। कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण से अलग अलग प्रकार के लोकगीतों का परिचय प्राप्त हो सकेगा। इकाई के उत्तरार्ध में कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है, जिसके माध्यम से

हम विविध कुमाउनी लोकगीतों में निहित अनुभूति एवं अभिव्यक्ति विधान सहित स्वरूप को भलि भाँति जान सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- कुमाउनी लोकगीतों का प्रादुर्भाव एवं इतिहास को समझ सकेंगे।
- आप बता पायेंगे कि कुमाउनी लोकगीत आरंभ से लोगो की जुबान पर किस प्रकार अवस्थित रहे हैं।
- कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण से आपको कुमाउनी साहित्य का समग्र बोध हो सकेगा।
- कुमाउनी रचनाकारों के अनुभूत ज्ञान का आपको ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।
- आप जान सकेगे कि किस तरह लोकगीत हमारे लोकजीवन की अपूर्व वस्तु है।
- कुमाउनी लोकगीतों की गेयता से आप एक गूढ़ अस्तित्व का भान कर सकेंगे।
- इन लोकगीतों के सामाजिक पक्ष से उद्घाटित होने वाली समरस सरल दृष्टि का अनुशीलन कर पाएँगे।

5.3 कुमाउनी लोकगीतों का इतिहास एवं स्वरूप

कुमाऊँ में लोकगीत प्रारंभ से प्रचलित रहे हैं। कुछ लोकगीत युगो से चली आ रही परंपरा को प्रदर्शित करते हैं तथा कालान्तर में परिनिष्ठित साहित्य के विकास के साथ ही लोकगीतों का अभिनव निर्माण किया जाने लगा। लिखित साहित्य के इतिहास में कुमाउनी लोकगीतों के रचयिता ज्ञात हैं। प्रारंभ से चले आ रहे लोकगीत लोकमानस का स्वच्छंद प्रवाह हैं प्रायः इनके निर्माता अज्ञात रहते हैं। आपने जिस इकाई का पूर्व में अध्ययन किया है उसमें कुमाउनी साहित्य के उद्भव एवं विकास के अन्तर्गत ज्ञात रचनाकारों की रचनाओं का परिचय दिया गया है। यही लोकगीतों का इतिहास भी है। उन्हीं विकास के चरणों में लोकगीतों की ऐतिहासिक दृष्टि हमें प्राप्त होती है। कुमाऊँ में लोकगीतों का प्रचलन तो आरंभिक काल से रहा है। लिखित साहित्य के रूप में उपलब्ध लोकगीतों को हम ऐतिहासिक रूप से स्वीकार करेंगे, डॉ त्रिलोचन पाण्डे ने कुमाउनी लिखित साहित्य को निम्नलिखित कालक्रमानुसार विभाजित किया है-

(1) 19वीं सदी का साहित्य

(2) 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का साहित्य

(3) 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का साहित्य

हम उपर्युक्त काल विभाजन को लोकगीतों के क्रम में मान सकते हैं क्योंकि उपर्युक्त काल विभाजन में अस्सी फीसदी लोकगीतों वाली सामग्री हमें प्राप्त होती है। गुमानी कवि को सबसे प्राचीनतम कवि माना जाता है। इनका पुराना नाम लोकरत्न पंत था, इन्होनें लगभग 15 ग्रंथ लिखे जिनमें 'रामनाम पंच पंचाशिका ,गंगाशतक, कृष्णाष्टक, नीतिशतक प्रमुख हैं, इनका काल सन् 1790 से 1846 ई.तक माना जाता है। बैर और भगनौल विधा के कुशल प्रणेता कृष्णा पाण्डे (सन् 1800-1850) का जन्म अल्मोड़ा के पाटिया नामक ग्राम में हुआ था, व्यवस्था की बदहाली का वर्णन उनकी कविताओं का मुख्य विषय था। इनकी प्रमुख काव्य रचना 'कृष्णा पाण्डे को कलियुग' है।

नयनसुख पाण्डे अल्मोड़ा के पिलखा नामक ग्राम में जन्मे थे। पहाड़ी स्त्री की मनोदशा पर इन्होंने कई कविताएं लिखी। 19वीं शताब्दी के अवसान काल में गौरीदत्त पाण्डे का प्रादुर्भाव हुआ। इनका जन्म भी अल्मोड़ा के बल्दीगाड नामक स्थान में हुआ था। इनकी रचना गीदड़ सियार के गीत से प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त इस काल के कवियों में ज्वालादत्त जोशी, लीलाधर जोशी, चिन्तामणि जोशी का नाम उल्लेखनीय है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के कवियों ने पद्य रचनाओं के निर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया। शिवदत्त सती इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं। इनका जन्म 1870 ई. में फल्दाकोट रानीखेत में हुआ था। इनकी प्रमुख रचनाओं के नाम हैं- बुद्धिप्रवेश, मित्र विनोद, गोपीगीत, नेपाली भाषा के गीत, गोरखाली गीत, भाबर के गीत। गौरीदत्त पाण्डे गौर्दा (सन् 1872-1939) का जन्म अल्मोड़ा के पाटिया ग्राम में हुआ था। इनकी रचनाओं में गांधी दर्शन की स्पष्ट झलक मिलती है। इनकी रचना गौरी गुटका नाम से प्रसिद्ध है। शिरोमणि पाठक (सन् 1890-1955) का जन्म स्थान शीतलाखेत है। इनके द्वारा झौड़े ,चांचरी तथा भगनौल लिखे गए। इसके अतिरिक्त इस काल के कवियों में श्यामाचरण दत्त पंत, रामदत्त पंत, चन्द्रलाल वर्मा चौधरी ,जीवनचन्द्र जोशी, तारादत्त पाण्डे, जयन्ती देवी पंत, पार्वती उप्रेती, दुर्गादत्त पाण्डे, दीनानाथ पंत, तथा लक्ष्मी देवी के नाम प्रमुख है।

स्वतंत्रता के बाद अर्थात 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सामाजिक जीवन के यथार्थ से जुड़ी चीजें कुमाउनी लोकगीतों के माध्यम से प्रकट होने लगी। भाषा भी अपने परिष्कार तथा परिमार्जन की तरफ अग्रसर हुई। स्वतंत्रता आंदोलन के बाद लिखी गई कुमाउनी कविताओं में वैयक्तिक चेतना के अतिरिक्त सामाजिक सुधार के स्वर अधिक मुखरित हुए। इस काल के प्रमुख कवियों में चारूचन्द्र पाण्डे प्रथम कवि माने जाते हैं। इनका जन्म सन् 1923 ई. को हुआ। ब्रजेन्द्र लाल साह का नाम भी 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के कवियों में आदर के साथ लिया जाता है। इनकी रचनाओं में लोकजीवन की मधुरतम छवि दिखाई देती है। कुमाउनी रामलीला को गेयपूर्ण ढंग से इन्होनें लिखा। इस काल को अद्यतन तक माना जाता है। शेर सिंह बिष्ट 'अनपढ़ इस समय के प्रख्यात रचनाधर्मी रहे। इनकी काव्य प्रतिभा लोगों के मन में नए उत्साहपूर्ण स्वर जाग्रत करती

है। शेरदा अनपढ़ की प्रमुख रचनाएं , मोरि लटि पटि, जांठिक घुड्डर, हसणै बहार हैं। बंधीधर पाठक जिज्ञासु का जन्म सन् 1934 को हुआ। ये एक कुशल आकाशवाणी के कलाकार थे। इनकी कुमाउनी रचना 'सिसौंण' युगीन परिस्थितियों का जीता जागता उदाहरण है। इसके अतिरिक्त देवकी महरा,गोपाल दत्त भट्ट ,किसन सिंह बिष्ट, कत्यूरी, रतन सिंह किरमोलिया, देव सिंह पोखरिया, शेर सिंह बिष्ट, दिवा भट्ट, बालम सिंह, जनोटी, त्रिभुवन गिरी, बहादुर बोरा, श्रीबंधु, दीपक कार्की एम.डी.अण्डोला, दामोदर जोशी, देवांशु, विपिन जोशी ,श्याम सिंह कुटौला, देवकीनंदन काण्डपाल ने 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में परिनिष्ठित कुमाउनी लोकगीतों का प्रणयन किया।

5.3.1 कुमाउनी लोकगीतः स्वरूप विवेचन

लोकगीत शब्द का निर्माण लोक और गीत शब्दों से मिलकर हुआ है। लोकमानस की तरंगायित लयबद्ध अभिव्यक्ति को लोकगीत कहा जाता हैं। लोक जीवन में व्यक्ति अनेक उतार-चढ़ावों का सामना करता है। जीवन जीने की यही संघर्षपूर्ण अवस्था में व्यक्ति का विवके या मानस उसे कुछ रचने के लिए प्रेरित करता है। अनुभूतियों को व्यक्ति द्वारा शब्दों वाक्यों के रूप में पारिभाषित करने से लोकगीतों का निर्माण हुआ है। डॉ. देवसिंह पोखरिया ने लोकगीतों के संबंध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है- 'लोकमानस की सुख दुखात्मक अनुभूति ही अनपढ़ गेय और मौखिक रूप में लोकगीत के रूप में फूट पड़ती है। साहित्यिक दृष्टि से काव्यात्मक गुणों की अभिजात्यता के अभाव में भी इनका अपना अलग ही नैसर्गिक सौन्दर्य होता है। ये लोकजीवन की धरती से स्वतः स्फूर्त जलधार की तरह होते हैं। इनमें लोकमानस का आदिम और जातीय संगीत सन्निहित रहता है। लोक जीवन के विविध क्रियाकलापों में रसज्ञ रंजन करने वाली अभिवृत्ति को लोकगीत माना जा सकता है।

डॉ. सदाशिव कृष्ण फड़के ने लोकगीत को पारिभाषित करते हुए लिखा है- लोकगीत विद्यादेवी के उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानो अकृत्रिम निसर्ग के श्वास प्रश्वास है। सहजानंद में से उत्पन्न होने वाली श्रुति मनोहरत्व से सहजानंद में विलीन हो जाने वाली आनंदमयी गुफाएं हैं। रामनरेश त्रिपाठी के विचारों को हम यहां समझ सकते है कि ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इसमें अलंकार नहीं केवल रस है। छंद नहीं केवल लय है। लालित्य नहीं केवल माधुर्य हैं। सभी मनुष्य के स्त्री पुरूषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठ कर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम्य गीत है।

कुमाउनी लोकगीतों के निर्माण के पीछे यहां की प्रकृति की सुकुमारता तथा निश्छल जनजीवन का बहुत बड़ा हाथ है। अपनी माटी, अपने लोग तथा अपनी संस्कृति के संवाही सुरों ने लोकगीतों की समष्टि रची है। हमारे कुमाउनी आदिकालीन आशु कवि अपने अन्तर्मन की विचाराधारा को बड़ी लयात्मक अभिव्यक्ति के साथ समाज के समक्ष रखते थे। वही निश्छल एवं गेय पूर्ण शैली लोकगीतों के सृजन में उपादेय सिद्ध हुई। यहाँ हम जान पाएंगे कि लोकगीतों में

मानवीय संवेदनाओं का पुट रहता है तथा ये सरस जीवन शैली के आधारभूत उपागम भी होते हैं। लोकगीत शब्द का निर्माण लोक और गीत शब्दों से मिलकर हुआ है। लोकमानस की तरंगायित लयबद्ध अभिव्यक्ति को लोकगीत कहा जाता हैं। लोक जीवन में व्यक्ति अनेक उतार-चढ़ावों का सामना करता है। जीवन जीने की यही संघर्षपूर्ण अवस्था में व्यक्ति का विवके या मानस उसे कुछ रचने के लिए प्रेरित करता है। अनुभूतियों को व्यक्ति द्वारा शब्दों वाक्यों के रूप में पारिभाषित करने से लोकगीतों का निर्माण हुआ है। डॉ. देवसिंह पोखरिया ने लोकगीतों के संबंध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है- 'लोकमानस की सुख दुखात्मक अनुभूति ही अनपढ़ गेय और मौखिक रूप में लोकगीत के रूप में फूट पड़ती है। साहित्यिक दृष्टि से काव्यात्मक गुणों की अभिजात्यता के अभाव में भी इनका अपना अलग ही नैसर्गिक सौन्दर्य होता है। ये लोकजीवन की धरती से स्वतः स्फूर्त जलधार की तरह होते हैं। इनमें लोकमानस का आदिम और जातीय संगीत सन्निहित रहता है।

लोक जीवन के विविध क्रियाकलापों में रसज्ञ रंजन करने वाली अभिवृत्ति को लोकगीत माना जा सकता है। डॉ. सदाशिव कृष्ण फड़के ने लोकगीत को पारिभाषित करते हुए लिखा है- लोकगीत विद्यादेवी के उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानो अकृत्रिम निसर्ग के श्वास प्रश्वास है। सहजानंद में से उत्पन्न होने वाली श्रुति मनोहरत्व से सहजानंद में विलीन हो जाने वाली आनंदमयी गुफाएं हैं।

रामनरेश त्रिपाठी के विचारों को हम यहां समझ सकते है कि ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इसमें अलंकार नहीं केवल रस है। छंद नहीं केवल लय है। लालित्य नहीं केवल माधुर्य हैं। सभी मनुष्य के स्त्री पुरूषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठ कर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम्य गीत है।

कुमाउनी लोकगीतों के निर्माण के पीछे यहां की प्रकृति की सुकुमारता तथा निश्छल जनजीवन का बहुत बड़ा हाथ है। अपनी माटी, अपने लोग तथा अपनी संस्कृति के संवाही सुरों ने लोकगीतों की समष्टि रची है। हमारे कुमाउनी आदिकालीन आशु कवि अपने अन्तर्मन की विचाराधारा को बड़ी लयात्मक अभिव्यक्ति के साथ समाज के समक्ष रखते थे। वही निश्छल एवं गेय पूर्ण शैली लोकगीतों के सृजन में उपादेय सिद्ध हुई। यहाँ हम जान पाएंगे कि लोकगीतों में मानवीय संवेदनाओं का पुट रहता है तथा ये सरस जीवन शैली के आधारभूत उपागम भी होते हैं।

5.3.2 कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण

कुमाउनी लोकगीतों के सम्यक अध्ययन के लिए हम उनका वर्गीकरण करेंगे। पूर्व मे लोक साहित्यकारों द्वारा किए गए वर्गीकरण को आधार मानकर उनका विषयवस्तुगत भाषायी, प्रकृति, तथा जातिगत आदि आधारों पर वर्गीकरण किया जाना समीचीन प्रतीत होता है। डा.

पोखरिया ने कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण करते हुए लिखा है- 'वर्ण्य विषय, भाषा क्षेत्र और काव्य रूप आदि की दृष्टि से लोकगीतों के निम्न आधार हो सकते हैं-

(1) विषयगत आधार (2) क्षेत्रीय आधार (3) भाषागत आधार (4) काव्य रूप गत आधार (5) जातिगत आधार (6) अवस्था भेद (7) लिंगगत आधार (8) उपयोगिता का आधार (9) प्रकृति भेद

कुमाउनी के आधिकारिक विद्वानों , विशेषज्ञों तथा शोधकर्ताओं ने सामान्यतया विषयवस्तु सम्मत आधार को ही अपनाया है। वैषयिक तथा वर्ण्य विषय को स्वीकारते हुए हम अन्य विद्धानों के वर्गीकरण को इस प्रकार समझ पाएंगे-

डॉ. त्रिलोचन पाण्डे का वर्गीकरण

मुक्तक गीत

I. नृत्य प्रधान -झोड़ा चांचरी छपेली
II. अनुभूति प्रधान- भगनौल तथा न्यौली
III. तर्क सम्मत- बैर
IV. संवाद प्रधान तथा स्फुट

(2) संस्कार प्रधान

I. अनिवार्य
II. विशेष

(3) ऋतुगीत

(4) कृषिगीत

(5) देवीदेवता व्रत त्योहार के गीत

(6) बाल गीत

डा. कृष्णानंद जोशी ने कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है-

(1) धार्मिक गीत

(2) संस्कार गीत

(3) ऋतु गीत

(4) कृषि संबंधी गीत

(5) मेलों के गीत

(6) परिसंवादात्मक गीत

(7) बाल गीत

लोकसाहित्य तथा कुमाउनी भाषा साहित्य के विद्धान भवानीदत्त उप्रेती ने विषयस्तुगत आधार को वर्गीकरण के लिए उपयुक्त माना है-

(1) संस्कार गीत

(2) स्तुति पूजा और उत्सव गीत

(3) ऋतु गीत

(4) जाति विषयक गीत

(5) व्यवसाय संबंधी गीत

(6) बाल गीत

(7) मुक्तक गीत

विभिन्न विद्वानों द्वारा किए वर्गीकरण से स्पष्ट होता है कि लगभग सभी विद्वानों ने विषय को ही वर्गीकरण का आधार माना है। यहां हम वर्गीकरण के लिए विषयवस्तुगत आधार का चयन करेंगे तथा विभिन्न लोकगीतों की मौलिक प्रवृत्तियों से अवगत हो सकेंगे।

धार्मिक पुराण कालीन संदर्भित लोकगीत- पुराण काल की कथाओं एवं आख्यानों को आरंभिक दौर से लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता रहा है। कृष्णानंद जोशी ने धार्मिक गीतों के विषय में लिखा है- इन गीतों में सर्वप्रथम वे गीत आते हैं, जिनकी विषयवस्तु पौराणिक आख्यान से संबंधित है। इसी प्रकार के एक गीत में वर्णित है वह क्षण जब सृष्टिकार ने महाशून्य में हंस का एक जोड़ा प्रकट किया और हंसिनी का अंडा गिरकर फूटने से एक खंड से आकाश बना और दूसरे से धरती।इसी प्रकार महाभारत काल के कौरव पाण्डवों की कथा के अंश लोकगीतों के माध्यम से प्रकट किए जाते रहे हैं। रामचरितमानस में उल्लिखित श्री रामचन्द्र कथा का वर्णन भी इन गीतों के माध्यम से देखे जा सकते हैं।

उदाहरणार्थ

बाटो लागी गया मुनि तपसिन

जै पिरथी राजा को रैछ एक पूत

तिनरा देश वैछ बार बिसी हलिया, बार बीसी बौसीया

रोपन का खेत भगवान कूल टुटी भसम पड़ी गेछ,

लोकमानस की महाभारत कालीन प्रस्तुति इन पंक्तियों में देखी जा सकती है-

पांडवन की लछण बिराली, कौरवन की पहाड़ी कुकुड़ी,

तेरी बिराली कुकुड़ी ब्यूज बैरछ बिराली कुकुड़ी मारी दीयो ।

इन गीतों में पौराणिक कथा सार की अभिव्यक्ति को हम सरलता से समझ सकते हैं।

संस्कार गीत- मनुष्य के जीवन में संस्कारों का बड़ा महत्त्व है। बच्चे के जन्म से लेकर मृत्यु तक विविध संस्कार सम्पन्न किए जाते हैं। कुमाउनी संस्कार गीतों में जन्म छठी, नामकरण उपनयन विवाह आदि के गीत सम्मिलित हैं, ये गीत प्रायः महिलाओं द्वारा गाए जाते हैं। संस्कारों में होने वाली पूजा अनुष्ठान के अनुसार इन गीतों को गाया जाता है। यहां हम कुछ कुमाउनी संस्कार गीतों को संक्षेप में जानने का प्रयास करेंगे। कुमाऊँ में प्रत्येक सुअवसर पर शकुनांखर सगुण (सगुन) के गीत गाने की परंपरा है।

ध्यायनु भयै, ध्यायनु भैये,थाति को थत्याल

ध्यायनु भयै , ध्यायनु भैय ,भुई को भूम्याल

बच्चे के जन्म के अवसर पर यह गीत गाया जाता है।

धन की धौताला, धन की धौ,

धन की धौताला धन की धौ,

यरबा सिर सिड़ जोड़ सिरसिड़

पाडव्वा बाबै जोड़ जोड. बावै

विवाह के समय फाग के गीतों की विशेष परंपरा देखी जा सकती है।

पैलिक सगुन पिडली पिठाक

उति है सगुन दई दई माछ।

पिड.ली पिठाक कुटल है

खनल पनीया ध्वेज उखल कुटल

ऋतु गीत- विभिन्न ऋतुओं के आगमन पर कुमाऊं में लोकगीत प्रचलित हैं, बसंत ऋतु के आगमन पर लोगों का तनमन सुवासित हो जाता है। उसी प्रकार वर्षा ऋतु के आगमन पर भी मन में उठने वाली तरंगे नया आभास जगाती है। ऋतु गीतों में विरह वेदना प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन समविष्ट रहता है। आप ऋतुराज बंसत के यौवन को इस गीत में देख सकते हैं।

रितु ऐ गे हेरी फेरी ओ गरमा रितु,

मारीया मानीख पलटी नी ऊंनो।

इन गीतों में अपने प्रियजनों की स्मृति, निराशा तथा भावुकता देखी जा सकती है।

कृषि विषयक गीत- कुमाऊँ में कृषि विषयक गीतों को हुड़की बौल के नाम से जाना जाता है। प्राचीन विचाराधारा के अनुसार कृषि कार्यों में तत्परता तथा एकाग्रता के लिए मनोरंजक गीत सुनाए जाने का प्रचलन है। हुड़की बौल में एक व्यक्ति हुड़के की थाप पर गाता हुआ आगे बढ़ता रहता है तथा कृषि कार्य निराई गुड़ाई या रोपाई करने वाले लोग कार्य करते हुए बड़ी लगन से बौल लगाने वाले के स्वर को दुहराते हैं, इसमें कार्य भी जल्दी सम्पन्न हो जाता है तथा मनोरंजन के द्वारा लोगों को थकान का अनुभव नहीं होता है। हुड़कि बैल में ऐतिहासिक लघु गाथाएं गायी जाती हैं।

लोकोत्सव एवं पर्व संबंधी गीतः- लोक के विविध उत्सवों, पर्वो पर जो गीत गाए जाते हैं, उनमें लोक मनोविज्ञान तथा लोकविश्वास के लक्षण पाए जाते हैं। स्थानीय पर्वों फूलदेई तथा घुघुतिया को प्रथागत आदर्शों के साथ मनाया जाता है। फूल संक्रान्ति के अवसर पर बच्चे गांव के प्रत्येक घर के दरवाजे पर सरसों तथा फूलदेई के फूल अर्पित करते हुए कहते हैं-

फूल देई छममा देई

भरभकार दैणी द्वारा

जतुकै दिछा उतुकै सई

फूल देई छम्मा देई

घुघुतिया (मकर संक्रान्ति) को बच्चे आटे के बने घुघुतों की माला गले में डालकर प्रातः कौवे को बुलाते हैं-

'काले कौवा काले काले काले

घुघुती मावा खाले खाले खाले

तु ल्हि जा बड़ म्यकै दिजा सुनु घड़

काले कौवा काले काले काले

कुमाऊँ में हरेला पर्व हरियाली का प्रतीत है। हरेले के त्यौहार में हरेला आशीष के रूप में सिर पर रखा जाता है। इस अवसर पर आशीर्वचन देते हुए कहते हैं-

हर्याली रे हर्याली हरिया बण जाली

दुबड़ी कैंछ दुबै चड़ि जूलो

चेली कैंछ मैं मैतुलि जूंलो, आओ चेलि खिलकन मैत

तुमारे बाबू घर, तुमारे भइयन घर हरयाली को त्यार

विभिन्न प्रकार के पर्वोत्सवों पर गाए जाने वाले इन गीतों में उद्बोधन तथा आशीर्वाद के भावों को देखा जा सकता है।

मेलों के गीतः- मेला शब्द की उत्पत्ति मेल से हुई है। कुमाऊँ में विभिन्न प्रकार के मेले आयोजित होते आए हैं। इन मेलों में लोग पारस्परिक मेल मिलाप करते हैं। प्राचीन काल से ज्ञानी लोग मेले में अपनी कवित्व शक्ति का प्रदर्शन करते आए हैं। इनमें सामूहिक नृत्यगीत भी शामिल हैं। यहां पर हम देखेंगे कि मेलों के माध्यम से सामूहिक गायन पद्धति से लोग मनोरंजन करते हैं। इन गीतों में झोड़ा, चांचरी, छपेली, भगनौल और बैर का प्रचलन है। हुड़के की थाप पर लोग एक दूसरे से श्रृंखलाबद्ध होकर थिरकते दिखाई देते हैं। इन लोकगीतों में स्थानीय देवी देवताओं की स्तुति के साथ-साथ प्राचीन वैदिक कालीन संदर्भ कथाओं का गायन भी किया जाता है। झोड़ा और चाँचरी में गोल घेरे में कदम से कदम मिलाकर नृत्य किया जाता है। इसमें लयबद्ध तरीके से गायन पद्धति अपनाई जाती है।

चौकोटै कि पारवती स्कूल नि जानि बली इस्कूला नि जानी ,

मासी का परताप लौंडा स्कूल नि जानि बली इस्कूलनि जाना।

छपेली नृत्य में द्रुत गायन शैली अपनाई जाती है। ओहो करके गीत शुरू किया जाता है। भगनौल में पद्यात्मक उक्तियों को आरोह अवरोह के साथ प्रस्तुत किया जाता है। इन उक्तियों को गेयपदों में जोड़ने वाली गीत शैली जोड़ के रूप में जानी जाती है। बैर में युद्धों का वर्णन किया जाता है। इसमें तार्किक कथनों के द्वारा एक दूसरे को निरुत्तर करने की प्रतियोगिता होती है।

परिसंवादात्मक गीत- संवाद शैली से युक्त गायन पद्धति को परिसंवादात्मक गीतों की श्रेणी में रखा जाता है। इन गीतों में संवादों के माध्यम से विभिन्न पात्रों के कौशल को जाना जा सकता है। डॉ कृष्णानंद जोशी के अनुसार- 'हरियाला का त्यौहार आने पर एक माँ अपनी बिटिया को मायके बुलाने का अनुरोध करती है- कन्या के पिता के जाते समय के अपशकुन माँ के हृदय को दुखित कर देते हैं। बेटी के ससुराल जाकर पिता को बताया जाता है कि 'रघी' घास लकड़ी लाने जंगल गई हुई है, पानी भरने गई हुई है आदि। रघी के पिता बेटी की प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं। उस रघी को, जो अब कभी नहीं लौटेगी, गीत के दूसरे भाग में वह दृश्य 'फ्लैश बैक' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जिसमें रघी की ननद अपनी माँ से अनुरोध करती है कि पोटली में रखे च्यूले उसने खाए हैं। रघी ने नहीं, रघी को मत पीटो। ओ क्रूर माँ! तुमने रघी को मारकर उसका शव तक गोठ में छिपा दिया।

खाजा कुटुरी मैले लुकैछ ईजू पापिणी बोजि नै मार,

पाना मारीछ गोठ लुकैछ, ईजू पापिणी बोजि नै मार।

साग काटछ राम करेली, ईजू पापिणी बोजि नै मार।

इन गीतों में लोक जीवन की मर्मान्तक पीड़ा का भाव देखा जा सकता हैं। हमें पता चलता है कि तत्कालीन परिस्थितियों में मानवीय व्यवहार के तौर तरीकों में कितनी असभ्यता थी। कुछ ऐतिहासिक लोक कथाओं के आख्यान भी हम इन संवाद प्रधान गीतों के माध्यम से जान सकेंगे।

बाल गीत - व्यक्ति के जीवन की शुरूआत बचपन से होती है। बालपन में शिशु का मन निश्छल होता है। वह खेलना पंसद करता है। जीवन के गंभीर उतार चढ़ावों से अनभिज्ञ शिशु अपनी किलकारियों में ही खेल का अनुभव करता हैं। बच्चों द्वारा आपस में खेले जाने वाले खेलों में ही गीत विकसित होते हैं। इन गीतों का निर्माण स्वत: स्फूर्त माना जाता है। यथा -

डक्की डक्की मुक्का पड़ौ

ओ पाने ज्यू भ्यो पड़ो

सात समुन्दर गोपी चन्दर

बोल मेरी मछली कितना पानी

(दूसरी कहती है) इतना पानी

बच्चे गीतों के साथ साथ अपने भावों को हाथ हिलाकर भी प्रकट करते हैं। कहना उचित होगा कि बालगीत बच्चों के सुकोमल मनोविज्ञान की स्वच्छंद सरल अभिव्यक्ति है। जिनमें किसी गंभीर विषय बोध की सदा अनुपस्थिति रहती है।

बोध प्रश्न

क - सही विकल्प को चुनिए -

1. 'फूल देई छम्मा देई' लोकगीत की किस कोटि में आता है?

I. बालगीत
II. नृत्यगीत
III. पर्व संबंधी गीत
IV. भगनौल

2. 'गौरी गुटका' नामक रचना है -

I. गुमानी पंत
II. रामदत्त पंत
III. गौरीदत्त पाण्डे
IV. शेरसिहं विष्ट

3. ऋतुओं का वर्णन किस गीत में मिलता है ?

I. संस्कार गीत
II. ऋतु गीत
III. कृषि संबंधी गीत
IV. पर्व उत्सव संबंधी गीत

ख - 20 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के लोकगीतों का इतिहास संक्षेप में लिखिए।

ग - लोकगीत क्या हैं ? विषयगत आधार पर लोकगीतों का वर्गीकरण कीजिए।

घ - 'झोड़ा' और 'भगनौल' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

5.4 कुमाउनी लोकगीतों का भावपक्षीय वैशिष्ट्य

हम सब जानते हैं कि लोकगीत लोकमानस की वह तंरगायित अभिव्यक्ति है, जो नियति और मानवीय सत्ता के विविध रूपों को समाहित किए रहती है। मानव ने भौतिक विकास के सापेक्ष मानसिक विकास के द्वारा समाज में अपने अस्तित्व को मुखर किया हैं। लोकगीत लोकमानस के संवेदना के मौलिक तत्व हैं। अनुभूति तथा ज्ञान की लयबद्ध अभिव्यक्ति प्रायः लोकगीतों के माध्यम से प्रकट होती है।

भावपक्ष की दृष्टि से हम देखते हैं कि गीतों का निर्माण ही भाव भूमि पर हुआ है। ये वही भाव हैं, जो प्रकृति के नाना रूपों में, व्यथा, वेदना, हर्ष ,विषाद आदि के रूपों में शब्दों में स्वत: उतर आते हैं। इनकी यही लयात्मक प्रवृत्ति इनकों रोचक बनाए हुए है। लोकगीतों में व्यष्टि और समष्टि का अपूर्व मिश्रण होता है, जो समाज के चेतनामूलक फलक को प्रभावित कर उसे सरस बना देता है। अत: हम कह सकते हैं कि व्यक्ति की सुख दुखात्मक स्थितियों में अन्तर्मन से जो वाणी फूट पड़ती है तथा लोक के लिए एक रूचिकर शैली बन जाती है, वही लोकगीत कहलाता है।

5.4.1 कुमाउनी लोकगीतों की विशेषताएँ

कुमाउनी लोकगीत कुमाऊँ के जनमानस की व्यापक संवेदनशीलता को प्रकट करते हैं। वाचिक तौर पर वर्षों से जीवित इन गीतों में अपनी माटी की सुगंध निहित हैं। ये गीत मानव को मानव से जोड़ने में यकीन रखते हैं। कहीं कहीं आप पाएँगे कि इन गीतों में पौराणिक चरित्रों का चित्रण भी हुआ है। वैदिक कालीन समाज व्यवस्था तथा प्रमुख पात्र एवं घटनाओं से संबंधित आख्यान इन लोकगीतों के आधार बनें हैं। सत्य की अनुभूति लोकगीतों के माध्यम से स्पष्ट झलकती है।

इन गीतों में पहाड़ के पशुपक्षियों तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन देखने को मिलता है। 'न्योली' नामक लोकगीत एक विरही पक्षी पर आधारित है। न्योली एक पहाड़ी प्रजाति की कोयल को कहा जाता है। इसे विरह का प्रतीक माना जाता है। ऐसी धारणा है कि न्यौली अपने पति के वियोग में दिन रात मर्मान्तक स्वरों से जंगल को गुंजायमान बनाती फिरती है। लोकमानस ने उस पक्षी को अपने संवेदना के धरातल पर उकेरा है।सामान्य अर्थों में न्यौली का अर्थ 'नवेली' 'नई' से लिया जाता है।

कुमाउनी लोकगीत विभिन्न धार्मिक संस्कारों के संवाहक हैं। गर्भाधान,नामकरण,अन्नप्राशन, जनेऊ, विवाह आदि संस्कारों में गाए जाने वाले लोकगीत युगों से चली आ रही वाचिक परंपरा के सत्यानुभूत कथन हैं। लोकगीतों की विशेषता उनके लयात्मक गायन शैली में निहित है। प्रेम, करूणा विरह आदि की अवस्थाओं पर कई लोकगीत समाज में प्रचलित हैं।

डॉ. त्रिलाचन पाण्डे ने कुमाउनी लोकगीतों की विशेषता को बताते हुए कहा है - 'कुमाऊँ में जमीदार प्रथा तो नहीं है, फिर भी कुछ लोगों के पास बहुत जमीन हो गई है। दूसरे लोग बटाई पर काम करते हैं। जमीन भी 'तलाऊँ ', मलाऊँ, आबाद,बंजर कई प्रकार की है। नदियों की घाटियों वाली भूमि अधिक उत्पादक होती है, जिसे 'स्यारा' कहते हैं। दलदली भूमि 'सिमार' कहलाती है। इसकी उत्पादक क्षमता को ध्यान में रखकर जो लगान वर्षों पूर्व अंग्रेजों द्वारा निर्धारित किया गया या उसमें समय पर परिवर्तन होते गए। अब कुछ वर्ष पूर्व भूमि नाप संबंधी

नई योजना प्रारंभ हुई तो कुछ लोग अपनी जमीन बढ़ा चढ़ाकर लिखाने लगे। कुछ पीछे रह गए। गीतकारों ने इस स्थिति की सटीक व्याख्या की है।'

इस प्रकार आप देखेंगे कि कुमाउनी लोक गीत स्वंय में अनेक विशेषताओं को समेटे हैं। लौकिक ज्ञान की धरातल से जुड़ी प्रस्तुतियाँ इन गीतों के माध्यम से होती है। इन गीतों में कल्पना भी चरम सीमा पर होती है। इन गीतों में अपने समय की सजीवता है। मानव व्यवहार के तौर तरीकों तथा समाज मनोविज्ञान के कई तथ्य इन गीतों द्वारा अभिव्यक्त होते आए हैं। प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन इन गीतों का प्रमुख प्रतिपाद्य होता है। लोक सत्य के उद्घाटन में ये गीत अग्रणी हैं। प्राचीन काल की रोचक एवं ज्ञानवर्धक ज्ञान की समाविष्टि इन गीतों का स्वभाव है।

अत: कहा जा सकता है कि कुमाउनी लोकगीतों की विशेषता यहाँ के जनमानस की सांगीतिक प्रस्तुति है। ये विषय वैविध्य का लक्षण प्रदर्शित करते हैं। वर्गीकरण के आधार पर अलग अलग विषयों के लोकगीतों में तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन हुआ हैं, जिनके द्वारा समाज को मानसिक जगत में बहुत लाभ प्राप्त हुआ है।

5.4.2 कुमाउनी लोकगीतों का महत्त्व

कुमाउनी लोकगीतों द्वारा मनुष्य के भावों को प्रकट करने की तरल क्षमता प्रकट होती है । ये लोकगीत समाज का उचित मनोरंजन करते हैं। साथ ही इनमें अपने समय को व्यक्त करने की पर्याप्त क्षमता होती है। देवसिहं पोखरिया ने 'कुमाउनी संस्कृति के विविध आयाम' पुस्तक में संतराम अनिल के विचारों को प्रकट करते हुए लिखा है – 'लोकगीत साहित्य की अमूल्य और अनुपम निधि हैं। इनमें हमारे समाज की एक एक रेखा , सामयिक बोध की एक एक अवस्था, सामूहिक विजय पराजय , प्रकृति की गति, विधि, वृक्ष ,पशु, पक्षी और मानव के पारस्परिक संबंध बलि,पूजा, टोने टोटके , आशा,निराशा,मनन और चिन्तन सबका बड़ा ही मनोहारी वर्णन मिलता है।'

लोकगीतों के महत्त्व को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है -

(1) लोकगीतों में युगीन परिस्थितियों का वर्णन मिलता है।

(2) ये गीत मानवी संवेदना के हर्ष - विषाद, सुख दुःख तथा काल्पनिकता को अभिवृद्ध करते हैं।

(3) लोकगीतों में सामाजिक परिवेश को सरस बनाने की कला होती है।

(4) लोकगीतों में गीति तत्व तथा लय होने से ये वाचिक परंपरा के मनोहारी आख्यान कहे जाते हैं।

(5) लोकगीत मानव समाज को आदिम परंपरा से सभ्य समाज की तरफ अग्रसर करते हैं।

(6) लोकगीतों में मौलिकता होती है, जो व्यक्ति के जीवन के यथार्थ स्वरूप को सामने लाती है।

(7) कुमाऊँ में प्रचलित लोकगीतों में प्रत्येक युगानुसार उनकी विकासवादी धारणा को समझा जा सकता है।

(5) ये कार्य संपादन के तरीकों में प्रयुक्त होकर कार्य का निष्पादन त्वरित गति से करते हैं।

स्पष्टत: लोकगीतों में समाज के विभिन्न जातियों , धर्मों,अनुष्ठानों तथा उनके तौर तरीकों पर प्रकाश पड़ता है। हम लोकगीतों के माध्यम से समाज की तत्कालीन स्थिति को सरलता से जान सकते हैं।

बोधात्मक प्रश्न

क - नीचे गए प्रश्नों में सही विकल्प चुनकर लिखिए -

1. लोकगीत की वह पद्धति जिसमें स्त्री पुरूष एक दूसरे के कंधे में हाथ डालकर गोलाकार भाग में कदम मिलाकर चलते है, कहलाती है -

I. बैर
II. जागर
III. झोड़ा
IV. जोड़

2 - संवाद मूलक लोकगीत है -

I. झोड़ा
II. छपेली
III. चाँचरी
IV. बैर

3. संस्कारों के अवसर पर गाए जाने वाले गीत हैं -

I. छपेली
II. भगनौल

III. फाग
IV. होली के गीत

(4) लोकगीतों के महत्त्व पर प्रकाश डालिए

(5) कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण का सबसे सरल और व्यावहारिक आधार कौन सा है ? लोकगीतों का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

5.5 कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय

कुमाउनी लोकगीत प्राचीन काल से वर्तमान काल तक लोकजीवन में निर्बाध रूप से प्रचलित रहे हैं।आरंभिक काल से चली आ रही लोकगीतों की परंपरा में यहाँ कें जनमानस की प्रकृतिपरक , मानवीय संवेदना, विरह एवं मनोरंजन का पुट स्पष्ट झलकता है। पर्वतीय जीवन शैली को आप इन सुरधाराओं में आसानी से पा सकते हैं। पशु पक्षियों का आलंबन लेकर उसे मानवीय सत्ता से जोड़कर लोकगीतों को मर्मस्पर्शी बनाया गया है। कुमाऊँ क्षेत्र में प्रचलित लोकगीतों में समय के साथ आए बदलाव को भी परखा जा सकता है। लोकवाणी की तर्ज पर जिन प्राचीन गीतों में प्रकृति सम्मत आख्यान मिलते हैं, वहीं आधुनिक लोकगीतों में नए जमाने की वस्तुओं ,फैशन का उल्लेख मिलता है। नए लोकगीत व्यावसायिक दृष्टिकोण से बनाए तथा गाए जाते हैं। इन गीतों का ध्वनिमुद्रण उच्च इलेक्ट्रॉनिक तकनीक पर आधारित होता है। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि कुमाऊँवासी पहाड़ को छोड़कर मैदानी इलाकों को पलायन कर रहे हैं। मैदानी शहरी जिन्दगी में उन्हें ये लोकगीत पहाड़ी भाषा की मनोरंजक स्मृति मात्र का सुख देते हैं। फिर भी कुछ लोग मौलिक प्राचीन वाचिक परंपरा को अपनाने में ही विश्वास रखते हैं।कुमाउनी लोकसाहित्य के मर्मज्ञ डॉ. देवसिहं पोखरिया तथा डॉ. डी. डी. तिवारी ने अपनी संपादित पुस्तक 'कुमाउनी लोकसाहित्य' में न्योली ,जोड़, चाँचरी, झोड़ा, छपेली, बैर तथा फाग का विशद वर्णन किया है। यहाँ हम इन लोकगीतों को संक्षेप में समझने का प्रयास करेंगे।

न्यौली - न्यौली एक कोयल प्रजाति की मादा पक्षी है । ऐसा माना जाता है कि यह न्यौली अपने पति के विरह में निविड़ जंगल में भटकती रहती है। शाब्दिक अर्थ के रूप में न्यौली का अर्थ नवेली या नये से लगाया जाता है। कुमाऊँ में नई बहू को नवेली कहा जाता है। सुदूर घने बांज, बुरांश के जंगलो में न्यौली की सुरलहरी को सहृदयों ने मानवीय संवेदनाओं के धरातल पर उतारने का प्रयास गीतों के माध्यम से किया है। न्यौली की गायनपद्धति में प्रकृति, ऋतुएँ, नायिका के नख शिख भेद निहित हैं। छंदशास्त्र के दृष्टिकोण से न्यौली को चौदह वर्णों का मुक्तक छंद रचना माना जाता है।

न्यौली का उदाहरण -

चमचम चमक छी त्यार नाकै की फूली

धार में धेकालि भै छै, जनि दिशा खुली

(तेरे नाक की फूली चमचम चमकती है, तुम शिखर पर प्रकट क्या हुई ऐसा लगा कि जैसे दिशाएँ खुल गई हों)

जोड़ - जोड़ का अर्थ जोड़ने से है । गणित में दो और दो चार होता है। कुमाउनी लोकसाहित्य में जोड़ का अर्थ पदों को लयात्मक ढ़ग से व्यवस्थित करना है। संगीत या गायन शैली को देखते हुए उसे अर्थलय में ढाला जाता है। जोड़ और न्यौली लगभग एक जैसी विशेषता को प्रकट करते हैं। द्रुत गति से गाए जाने वाले गीतों में हल्का विराम लेकर 'जोड़' गाया जाता हैं। जोड़ को लोकगायन की अनूठी विधा कहा जाता है।

उदाहरण -

दातुलै कि धार दातुलै की धार
बीच गंगा छोड़ि ग्यैयै नै वार नै पार

(अर्थात दराती की धार की तरह बीच गंगा में छोड़ गया, जहाँ न आर है न पार)

चाँचरी - चाँचरी शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'चर्चरी' से मानी गई है। इसे नृत्य और ताल के संयोग से निर्मित गीत कहा जाता है। कुमाऊँ के कुछ भागों में इसे झोड़ा नाम से भी जाना जाता है। 'चाँचरी' प्रायः पर्व,उत्सवों और स्थानीय मेलों के अवसर पर गाई जाती है। यह लोकगीत गोल घेरा बनाकर गाया जाता है, जिसमें स्त्री पुरूष पैरों एवं संपूर्ण शरीर को एक विशेष लय क्रमानुसार हिलाते डुलाते नृत्य करते हैं। चाँचरी प्राचीन लोकविधा है। मौखिक परंपरा से समृद्ध हुई इस शैली को वर्तमान में भी उसी रूप में गाया जाता है। चाँचरी में विषय की गहनता का बोध न होकर स्वस्थ मनोरंजन का भाव होता है, जो लोगों को शारीरिक और मानसिक रूप से लाभ पहुँचाता है।

उदाहरण - काठ को कलिजों तेरो छम

(वाह! का कलेजा तेरा क्या कहने)

चाँचरी में अतं और आदि में 'छम' का अर्थ बलपूर्वक कहने की परंपरा है। छम का अर्थ घुघरूँ के बजने की आवाज को कहा जाता है। छम' कहने के साथ ही चाँचरी गायक पैर व कमर को झुकाकर एक हल्का बलपूर्वक विराम लेता है।

झोड़ा - जोड़ अर्थात जोड़ा का ही दूसरा व्यवहृत रूप है झोड़ा। कुमाउनी में 'झ' वर्ण की सरलता के कारण 'ज' वर्ण को 'झ' में उच्चरित करने की परंपरा है। झोड़ा या जोड़ गायक दलों द्वारा गाया जाता है। एक दूसरे का हाथ पकड़कर झूमते हुए यह गीत गाया जाता है। इसे सामूहिक नृत्य की संज्ञा दी गई है। किसी गाथा में स्थानीय देवी देवताओं की स्तुति या किसी गाथा में निहित पराक्रमी चरित्रों के चित्रण की वृत्ति निहित होती है।

उदाहरण -

ओ घटै बुजी बाना घटै बुजी बाना

पटि में पटवारि हुँछौ गौं में पधाना

आब जै के हुँ छै खणयूंणी बुड़ियै की ज्वाना

(नहर बांध कर घराट (पनचक्की) चलाई गई पट्टी में पटवारी होता है गांव में होता है प्रधान अब तू बूढ़ी हो गई है कैसे होगी जवान)

छपेली - छपेली का अर्थ होता है क्षिप्र गति या त्वरित अथवा द्रुत वाकशैली से उद्भूत गीत । यह एक नृत्य गीत के रूप में प्रचलित है। लोक के तर्कपूर्ण मनोविज्ञान की झलक इन गीतों में आप आसानी से पा सकते हैं। लोकोत्सवों, विवाह या अन्य मेलो आदि के अवसर पर लोक सांस्कृतिक प्रस्तुति के रूप में इन नृत्य गीतों को देखा जा सकता है। छपेली में एक मूल गायक होता है। शेष समूह के लोग उस गायक के गायन का अनुकरण करते है। स्त्री पुरूष दोनों मिलकर छपेली गाते हैं। मूल गायक प्रायः पुरूष होता है, जो हुड़का नामक लोकवाद्य के माध्यम से अभिनय करता हुआ गीत प्रस्तुत करता है।

छपेली में संयोग विप्रलम्भ श्रृंगार की प्रधानता होती है। प्रेम की सच्ची भावना को सुमधुर ढ़ग से गायकी में अभिव्यक्त किया जाता है।

उदाहरण - भाबरै कि लाई

भाबरै की लाई

कैले मेरि साई देखि

लाल साड़ि वाई

(भाबर की लाही भाबर की लाही किसी ने मेरी लाल साड़ी वाली साली देखी)

बैर - बैर शब्द का प्रयोग प्रायः दुश्मनी से लिया जाता है। लोकगायन की परम्परा में बैर का अर्थ 'द्वन्द्व' या 'संघर्ष' माना गया है। बैर तार्किक प्रश्नोत्तरों वाली वाक् युद्ध पूर्ण शैली है। इसमें अलग अलग पक्षों के बैर गायक गूढ़ रहस्यवादी प्रश्नों को दूसरे पक्ष से गीतों के माध्यम से पूछते हैं। दूसरा पक्ष भी अपने संचित ज्ञान का समुद्घाटन उत्तर के रूप में रखता है। बैर गायक किसी भी घटना , वस्तुस्थिति अथवा चरित्र पर आधारित सवालों को दूसरे बैरियों के समक्ष रखता है। अन्य बैर गायक अपनी त्वरित बुद्धि क्षमता से इन प्रश्नों का ताबड़तोड़ उत्तर देकर उसे निरूत्तर करने का प्रयास करते है। कभी कभार इन बैरियों में जबरदस्त की भिड़न्त देखने को मिलती है।

हार जीत के लक्ष्य पर आधरित इस गीत का परस्पर संवादी क्रम बड़ा ही रोचक होता है। इनके प्रश्नों में ऐतिहासिक चरित्र एवं घटना तथा मानवीय प्रकृति के विविध रूप समाविष्ट रहते हैं।

फाग - कुमाउनी संस्कृति में विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गाए जाने वाले मांगलिक गीतों को 'फाग' कहा जाता है। कही कही होली के मंगलाचरण तथा धूनी के आशीर्वाद लेते समय भी फाग गाने की परंपरा विद्यमान है। शुभ मंगल कार्यों यथा जन्म एवं विवाह के अवसर पर 'शकुनाखर ' और फाग गाने की अप्रतिम परंपरा है। 'फाग' गायन केवल स्त्रियों द्वारा ही होता है। होली के अवसर पर देवालयों में 'फाग' पुरूष गाते हैं। कुमाऊँ में संस्कार गीतों की दीर्घकालीन परंपरा को हम 'फाग' के रूप में समझते हैं। फाल्गुन मास के आधार पर ही 'फाग' का प्रादुर्भाव माना जाता है। मनुष्य के गर्भाधान,जन्म, नामकरण, यज्ञोपवीत, चूड़ाकर्म

विवाह आदि संस्कारों के अवसर पर यज्ञ अनुष्ठान के साथ इन गीतों का वाचन किया जाता है। गीत गाने वाली बुजुर्ग महिलाओं को 'गीदार' कहा जाता है।

उदाहरण - शकूना दे, शकूना दे सब सिद्धि

काज ए अति नीको शकूना बोल दईणा

(शकुन दो भगवान शकुन दो सब कार्य सिद्ध हो जाएँ सगुन आखर से सारे काज सुन्दर ढ़ग से सम्पन्न हो जाएँ)

बोध प्रश्न

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

1- 'न्यौली' का एक उदाहरण दीजिए।

2- फाग किस रूप में गाए जाते हैं ?

3- झोड़ा किस प्रकार गाया जाता है ?

4- चाँचरी से क्या तात्पर्य है ?

5.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप -

- कुमाउनी लोकगीतों का अर्थ स्वरूप तथा इतिहास समझ गए होंगे।

- आपने समझ लिया होगा कि विषयवस्तुगत आधार पर वर्गीकरण करने से आपके अध्ययन की रूपरेखा सरल और स्पष्ट हो गई है।
- कुमाउनी भाषा और बोलियों के लयात्मक स्वरूप को जान गए होंगे।
- कुमाऊँ में प्रचलित लोकगीतों की विशेषताएँ और महत्त्व को समझ चुके होंगे।
- प्रमुख कुमाउनी लोकगीतों का परिचय प्राप्त कर चुके होंगे।

5.7 शब्दावली

आशु	-	मौखिक
उद्गार	-	प्रकट होने वाले भाव
निश्छल	-	छल रहित
उपोदय	-	उपयोगी
स्फुट	-	अन्य, प्रकीर्ण
सन्निहित	-	समाया हुआ
गीदार	-	गीतकार
शकुनाखर	-	सगुन के आखर
न्यौली	-	नवेली, नई
अप्रतिम	-	अनूठी, अनोखी
फाग	-	संस्कार गीत
बैर	-	संघर्ष
छपेली	-	क्षिप्रगति वाली

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.3 के उत्तर

1- पर्व संबंधी गीत

2- गौरीदत्त पाण्डे

3 - ऋतु गीत

5.4 के उत्तर

क (1) झोड़ा

(2) बैर

(3) फाग

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जोशी, कृष्णानंद , कुमाउनी लोकसाहित्य , धार्मिक गीत ,112
2. पूर्वोक्त , संस्कार गीत (1)
3. पाण्डे त्रिलोचन ,कुमाऊँ का लोकसाहित्य , पृ -124,
4. पूर्वोक्त , पृ - 126
5. अचल, जुलाई 1938, श्रेणी - 1, श्रृंग - 6,
6. इंडियन एंटीक्वेरी ,जिल्द 14 (1885)
7. धर्मयुग , अक्टूबर 31, 1954 ,
8. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, खंड 9, भाग 4 ,पृ -167.
9. कुमाउनी लोकसाहित्य , देवसिहं पोखरिया , डी.डी. तिवारी , पृ 2- 12
10. पाण्डे, त्रिलोचन ,कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य, उत्तर प्रदेश ,हिन्दी संस्थान, पृ - 190- 211
11. बटरोही , कुमाउनी संस्कृति, पृ - 13-25
12. पोखरिया, देवसिंह , कुमाउनी संस्कृति के विविध आयाम, पृ- 13- 15

5. 10 उपयोगी / सहायक ग्रंथ सूची

1- न्यौली सतसई , डॉ.देवसिहं पोखरिया, अल्मोड़ा बुक डिपो

2- कुमाउनी कवि गौर्दा का काव्य दर्शन, सं. चारूचन्द्र पाण्डे

3- कुमाउनी भाषा , डॉ. केशव दत्त रूवाली

4- कुमाउनी हिन्दी शब्द कोश, डॉ. नारायण दत्त पालीवाल

5- कुमाऊँ का लोक साहित्य , डॉ. त्रिलोचन पाण्डे

6- कुमाउनी भाषा का अध्ययन, डॉ. भवानी दत्त उप्रेती

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कुमाउनी लोकगीतों की विशेषताएँ बताते हुए इसके महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
2. कुमाउनी लोकगीतों के विषयगत आधार पर विस्तृत वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।
3. लोकगीत क्या हैं ? कुमाउनी लोकगीतों की विविध विधाओं का वर्णन कीजिए।

इकाई 6 कुमाउनी लोकगाथाएँ - इतिहास स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 कुमाउनी लोकगाथाओं का इतिहास एवं स्वरूप
    6.3.1 कुमाउनी लोकगाथाएँ : अर्थ एवं स्वरूप
    6.3.2 कुमाउनी लोकगाथाएँ:ऐतिहासिक स्वरूप
    6.3.3 कुमाउनी लोकगाथाओं की विशेषताएँ
6.4 कुमाउनी लोकगाथाओं का भावपक्षीय वैशिष्ट्य
    6.4.1 कुमाउनी लोकगाथाओं में प्रकृति चित्रण
    6.4.2 कुमाउनी लोकगाथाओं में निहित स्थानीय तत्व
6.5 कुमाउनी लोकगाथाओँ का वर्गीकरण
6.6 सारांश
6.7 महत्त्वपूर्ण शब्दावली
6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.10 सहायक पुस्तक सूची
6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

किसी भी राष्ट्र की अपनी लोकसंस्कृतिक पहचान होती है । ये पहचान उस राष्ट्र के लोकजीवन में जीवंत लोकसाहित्य के विविध पहलुओं द्वारा चरितार्थ होती है। आप देखेंगे कि सभ्यता और संस्कृति के आधारभूत तथ्य ही एक गौरवशाली अतीत से लोगों को परिचित कराते हैं । कुमाउनी लोकगाथाएँ भी यहाँ के ऐतिहासिक स्वर्णिम अतीत का परिचय प्राप्त कराती हैं। आदिकाल से प्रचलित लोककथात्मक आख्यानों की गवेषणा लोकगाथाओं के रूप में हमारे

समक्ष आती हैं। इस इकाई के प्रारंभ में कुमाउनी लोकगाथाओं का अर्थ प्रस्तुत करते हुए उसके इतिहास एवं स्वरूप पर चर्चा की जाएगी। कुमाउनी लोकगाथाओं की विशेषताओं का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उनके भावपक्षीय पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। स्थानीय तत्व तथा प्रकृति चित्रण से लोकगाथाएँ कितनी प्रभावशाली सिद्ध हुई हैं। इस पर भी व्यापक दृष्टि डाली गई है। इकाई के उत्तरार्द्ध में कुमाउनी लोकगाथाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है।

लोकगाथाओं में निहित सांस्कृतिक तत्वों के समाजबद्ध अध्ययन के फलस्वरूप प्रस्तुत इकाई उपादेय समझी जा सकती है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

(1) कुमाउनी लोकगाथाओं के इतिहास एवं स्वरूप को जान सकेंगे।

(2) कुमाउनी लोकगाथाओं में निहित तत्कालीन पात्रों के चरित्रों की प्रासंगिकता को समझ सकेंगे।

(3) लोकगाथाओं के विविध रूपों को वर्गीकरण के आधार पर समझ जाएंगे।

(4) लोकगाथाओं की विशेषता के द्वारा कुमाउनी लोक मानस के अनुभूति पक्ष को जान पाएंगे।

(5) यह निर्धारित कर सकेंगे कि लोकसाहित्य के विकास में कुमाउनी लोकगाथाएं किस प्रकार सहायक सिद्ध हो सकती हैं?

6.3 कुमाउनी लोकगाथाओं का इतिहास एवं स्वरूप

लोकगाथा प्राचीन आख्यानमूलक गेय रचना है। प्रारंभ से लोकपरंपरा के रूप में प्रचलित लोकगाथाओं के रचयिता सर्वथा अज्ञात हैं। जिस प्रकार वाचिक परंपरा से लोकसाहित्य की कहावतें आदि विधाएँ समृद्ध हुई हैं, ठीक उसी प्रकार लोकगाथाओं में भी प्राचीन काल की घटनाक्रम तथा चरित्रों का सतत उल्लेख होता रहा है। इतिहास काल से प्रचलित इन गाथाओं को किसने रचा? कैसे रचा? इस संबंध में सटीक कुछ नहीं कहा जा सकता। इतना जरूर है कि ये प्राचीन गाथाएं या तो महाभारत रामायण कालीन परिदृश्य को प्रकट करती हैं, या फिर तत्कालीन परिस्थितियों में लोगों द्वारा दिन रात के अथक चिंतन द्वारा अपनी मनोभावना को प्रकट करने वाली वृत्ति के रूप में परिलक्षित होती हैं।

प्रो. डी.एस. पोखरिया ने लोकगाथाओं के संबंध में कहा है-‘ लोक की भाषा अथवा बोली में पारंपरिक स्थानीय अथवा पुरा आख्यानमूलक गेय अभिव्यक्ति लोकगाथा है। इन गेय कथा प्रबंधों के लिए अंग्रेजी के फोक एपिक या बैलेड शब्द के पर्याय के रूप में हिन्दी में लोकगाथा शब्द का प्रयोग होता है। लोकगाथा का रचनाकार अज्ञात होता है। इसमें प्रामाणिक मूलपाठ की कमी होती है। संगीत और नृत्य का समावेश होता है। स्थानीयता की सुवास होती है। अलंकृत शैली का अभाव होता है। कथानक बड़ा होता है टेक पदों की आवृत्ति की बहुलता होती है। रचनाकार के व्यक्तित्व तथा उपदेशात्मकता का अभाव होता है। यह मौखिक रूप में कंठानुकंठ परंपरित होती है।

चूंकि यहां हम देखते है कि लोकगाथाओं के रचनाकार अज्ञात हैं अतः इतिहास काल क्रम को तय करना असंभव सा प्रतीत होता है। इतना अवश्य पाया जा सकता है कि इन लोकगाथाओं में निहित पौराणिक आख्यान अपने अपने समय का उल्लेख करते हैं। कुमाउनी में पौराणिक धार्मिक , वीरतापूर्ण, प्रेम परक तथा ऐतिहासिक लोकगाथाओं की प्रचलित अवस्था के अनुसार ही हम उनके स्वरूप इतिहास का मोटा अनुमान लगा पाते हैं।

कुमाउनी लोकगाथाओं में मालूसाई, आठूँ ,रितुरैण, ठुलखेत, घणेली, भड़ा आदि गाथाओं के समान कई गाथाएं प्रचलित हैं। हुड़कीबौल में भी लोकगाथा का गायन किया जाता है। संदर्भ कथा को आत्मसात करने वाली विधा के रूप में लोकगाथाएं एक अप्रतिम गेय आख्यान हैं, जो प्रारंभ से लेकर वर्तमान काल तक समाज को एक सरस भाव से आप्लावित करती रही है। कहीं-कहीं मालूसाही जैसी लोकगाथा प्रेमपरक मर्मभेदी कथा प्रसंग को प्रकट करती हैं, तो कहीं ‘जागर’ जैसी गाथा सैकड़ों छोटी -छोटी कथात्मक आख्यानों को गायन नृत्य द्वारा अभिव्यक्त करती है।

6.3.1 कुमाउनी लोकगाथाएँ : अर्थ एवं स्वरूप

कुमाउनी लोकगाथाओं को समझने से पूर्व गाथा शब्द का अर्थ जानना आवश्यक है। कुमाऊं की लोकगाथाओं पर शोधकार्य कर चुके डा. उर्वादत्त उपाध्याय का कहना है‘गाथा बड़ा ही प्राचीन शब्द है। ब्राह्मण ग्रंथों में गाथा शब्द का प्रयोग आख्यानों के लिए हुआ है। गाथा को प्राचीन प्राकृत आदि जन भाषाओं में ‘गाथा’ कहा गया है। जन साहित्य तथा प्राकृत भाषाओं में गाथा विधा इतनी प्रिय हुई है कि प्राचीन, पालि, मागधी तथा जैन प्राकृत भाषाओं में गाथा साहित्य अपनी समृद्धि के साथ विकसित हुआ।’

डॉ कृष्णदेव उपाध्याय ने हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (ना.प्र.स.) 16वां भाग की प्रस्तावना में लोकगाथा को पारिभाषित करते हुए लिखा है- ‘लोकगाथा वह प्रबंधात्मक गीत है, जिसमें गेयता के साथ ही कथानक की प्रधानता हो।’ प्रो. कीट्रीज ने गाथा के संबंध में कहा है कि बैलेड वह गीत है, जो कोई कथा कहता हो।

न्यू इंगलिश डिक्शनरी के प्रधान संपादक का अभिमत है- 'बैलेड वह स्फूर्तिदायक या उत्तेजनापूर्ण कविता है, जिसमें कोई लोकप्रिय आख्यान सजीव रीति से वर्णित हो।'

डॉ उर्वादत्त उपाध्याय ने उक्त परिभाषाओं के आलोक में लिखा है- ''गाथा गेय तत्व से युक्त किसी लोकप्रिय आख्यान पर आधारित वह लोकप्रबंध काव्य है, जिसमें लोकजीवन की अनुभूतियां और अभिव्यक्तियों का सहज प्रयोग किया जाता है।

यहां आप देखेंगे कि कुमाउनी लोकगाथाओं में कुमाऊँ की विषम भौगोलिक स्थितियों के अनुरूप लोकमानस की अभिव्यक्ति जन-जन के जीवन को रससिक्त करती आई है। लोकगाथा अभिजात साहित्य की धरोहर नहीं है। पहाड़ के जनजीवन में स्वतः प्रस्फुटित आख्यान जब संस्कृति का अभिन्न अंग बनते गए, तब इन गाथाओं को जनजीवन ने उसी मौलिक रूप में अपनाया। इनकी मौखिक परंपरा लोकमानस का कुशल मनोरंजन एवं ज्ञान का प्रतिपादन करती आई है। लोकसाहित्य की समग्र विधाओं के अनुरूप लोकगाथाओं में चिरंतन सत्ता के प्रति एक रहस्य साधना का भाव भी दृष्टिगोचर होता है। समूचे कुमाऊँ प्रदेश में अलग-अलग भाषा बोलियों के क्षेत्र में गाथाएं गाई जाती हैं, किन्तु भाव प्रायः सब जगह एक सा रहता है।

डा. कृष्णानंद जोशी ने लोकगाथा को गद्य पद्यात्मक काव्य की कोटि में रखते हुए लिखा है-' 'कुछ विद्वानों ने इस वर्ग को लोकगाथाएं नाम भी दिया है। इस वर्ग के सभी गीतों में अनेक स्थलों पर गद्य का भी प्रयोग किया गया है। गायक द्वारा यह गद्य स्थल भी विशेष लय से कहे जाते हैं, सामान्य गद्य की भांति नहीं। इन गाथाओं में मालूसाही 'प्रेम काव्य' कहा जाता है। वीरगाथा काव्य में जिन्हें कुमाउनी में भड़ौ (भटो-वीरों की गाथाएं) कहा जाता है। बफौल, सकराम कार्की, कुंजीपाल चंद बिखेपाल, दुलासाही, नागी भागीमल, पंचूद्योराल, भागद्यो आदि की गाथाएं भी इसी वर्ग की हैं। ऐतिहासिक घटनाओं से संबंधित गाथाओं तथा कत्यूरी और चंद राजाओं की गाथाओं- धामद्यो, समणद्यो तथा कत्यूरी और चंद राजाओं की गाथाओं- धामद्यो, समणद्यो,उदैचन्द, रतनचन्द्र भारतीचंद की ऐतिहासिक गाथाएं कहा जा सकता है। इनमें धार्मिक ऐतिहासिक वीरगाथा तथा प्रेमगाथा के तत्वों का समन्वय मिलता है। 'रमोला' में जिसे हम कुमाउनी का लोक महाकाव्य कह सकते हैं ,इससे स्पष्ट होता है कि गाथाओं की उत्पत्ति के पीछे लोक ऐतिहासिक घटनाक्रम निहित है। इन चरित्रों एवं घटनाओं के संदर्भ गाथाओं की उत्पत्ति के मूल कहे जा सकते हैं।

6.3.2 कुमाउनी लोकगाथाएं : ऐतिहासिक स्वरूप

कुमाउनी लोकगाथाओं को लोक महाकाव्य के नाम से जाना जाता है। इनकी उत्पत्ति एवं प्रादुर्भाव के संबंध में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। इतिहास के दीर्घकालीन प्रवाह में ये प्राच्य आख्यान कुछ काल्पनिक चीजों तथा कुछ सत्य घटनाओं का समन्वित स्वरूप प्रदर्शित करती हैं। इतिहास काल क्रम के आधार पर निश्चित रूप से इन लोकगाथाओं को बांधना कठिन

प्रतीत होता हैं किंतु, इतिहास काल की कथाओं के आख्यान इन विभिन्न प्रकार की गाथाओं में देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि हम नंदा देवी की बैसी को देखें तो बैसी अर्थात बाईस दिन के गायन का निरंतर क्रम हमें प्राप्त हो जाएगा।

लोकगाथाओं में प्रमुख रूप से परंपरागत, पौराणिक धार्मिक तथा वीरतापूर्ण आख्यान मिलते है। परंपरागत रूप से मालूसाही तथा रमौल की गाथा प्रचलित है। जागर नामक गाथा में पौराणिक कथाओं का सार मिलता हैं । कुमाऊं की जागर गाथाओं तथा कृषि संबंधी गाथा हुड़की बौल में यहां के पौराणिक तत्व सम्मिलित हैं।

इन गाथाओं में महाभारत तथा रामायण कालीन घटनाओं तथा चरित्रों का महिमामंडन गायन शैली द्वारा प्रकट किया जाता है। इनमें महाभारत , कृष्णजन्म, रामजन्म तथा वनगमन शिव शक्ति, चौबीस अवतारों सहित नागवंशीय परंपरा का समुद्घाटन हुआ है।

जागर में विभिन्न कालों में घटित हुई विशेष घटनाओं का उल्लेख करते हुए उन चरित्रों को आधार बनाया जाता है, जो आज के समय में भी तत्कालीन परिस्थितियों की स्मृति कराकर अवतार में परिणत हो जाते हैं। कुमाऊँ के विभिन्न लोकदेवता इन गाथाओं में समाविष्ट हैं।

कुमाऊँ के कत्यूरी चंद वंशीय शासकों का उल्लेख भी जागर में हुआ है। धामदेव, बिरमदेव तथा जियाराणी के जागर कत्यूरी राजाओं से संबंध रखते हैं। धामदेव तथा बिरमदेव को क्रूर एवं अत्याचारी शासकों के रूप में दर्शाया गया है। 'हरू' की जागर चंद वंश से संबंधित है। इसके अतिरिक्त इतिहास की वीरतापूर्ण गाथाओं, जिन्हे 'भड़ौ' कहा जाता है, में वीरोचित चरित्रों तथा उनके पराक्रम तथा रोमांच का प्रतिनिधित्व करती जनमानस को तत्कालीन शौर्यगाथा से परिचित कराती हैं। हुड़की बौल में राजा विरमा की गाथा को गायक बड़े सुरीले दीर्घ स्वर में गाता है। शेष कार्य करने वाली महिलाएँ उस गायन को सस्वर गाती हैं। जाति संबंधी गाधाओं में झकरूवा रौत, अजीत और कला भड़ारी, पचू द्योराल, रतनुवा फड़त्याल, अजुवा बफौल, माधोसिहं , रिखोला के विस्तृत वृतान्त प्राप्त होते हैं। इनमें कुछ ऐतिहासिक व्यक्तित्व हैं तथा शेष को गाथाकारों ने अपने ढ़ग से स्वयं गढ़ लिया है।

रोमांचक गाथाओं में प्रेमाख्यान मिलता है। ये गाथाएँ प्रेमपरक हैं। प्राचीन काल में किसी सुदंरी को प्राप्त करने के लिए लोग आपस में युद्ध करते थे। इस युद्ध में विजयी राजा या व्यक्ति उस वस्तु या सुदंरी को पाने का हकदार हो जाता था। इस श्रेणी के चरित्रों में रणुवारौत ,सिसाउ लली, आदि कुवाँरि, दिगौली माना, हरूहीत, सुरजू कुवंर और हंस कुवंर की गाथाओं के नाम प्रमुख हैं। इनका गायन वीररसपूर्ण होता है, जो भड़ौ में स्पष्ट दिखाई देता है। अतः आप समझ सकते हैं कि प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक विभिन्न प्रकार की लोकगाथाओं में इतिहासकालीन चरित्रों तथा घटनाओं का उल्लेख एक समान रूप से किया गया है। मूलकथा का भाव समूचे कुमाऊँ क्षेत्र में लगभग एक समान दिखाई देता है।

6. 3. 3 कुमाउनी लोकगाथाओं की विशेषताएँ

कुमाउनी लोकगाथाएँ यहाँ की पैराणिक संस्कृति की संवाहक रही हैं। इन लोकगाथाओं के निर्माण के पीछे इतिहासपरक घटनाओं की विशेष भूमिका रही है। लोकमानस की भाव भूमि पर प्रचलित इन गाथाओं में आप प्रचीन काल की घटनाओं तथा चरित्रों का उल्लेख पाएँगे। कुमाऊँ क्षेत्र की विशेष पर्वतीय भौगोलिक संरचना, सभ्यता , संस्कृति तथा लोकजीवन की अनुभूति के लयात्मक संस्पर्श को हम इन गाथाओं के माध्यम से आत्मसात करते हैं। भाषा बोली के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों में इन गाथाओं की लय विलग हो सकती है, किन्तु भावात्मक सुन्दरता प्रायः एक सी है। कुमाउनी लोकगाथाएँ स्वयं में आख्यान का वैशिष्ट्य प्रकट करती हैं। आप कुमाउनी लोकगाथाओं की विशेषताओं को निम्नलिखित शीर्षकों के द्वारा समझ सकेंगे -

(1) **वाचिक परंपरा के मूल स्त्रोत:** - कुमाउनी लोकगाथाएँ मौखिक परंपरा के आधारभूत स्त्रोत हैं। इतिहास की दीर्घ कालीन परंपराओं से ये अनुभवजन्य ज्ञान की संचित राशि के रूप में व्याख्यायित होते रहे हैं। आप देख सकते हैं कि कई अनपढ़ गाथा गायक जो अपना नाम तक लिखना नहीं जानते, गाथाओं के मौखिक गायन में पारंगत होते हैं। ये गांथाकार कई दिन तथा रातों तक निरंतर बिना किसी बाधा के गाथा का वाचन करते हैं। उसे लयबद्ध ढ़ग से गाते हैं। वाचिक परंपरा में गाथाकारों की अभिव्यक्ति अनूठी होती है। स्वरों के आरोही अवरोही तथा हाव भाव को गाथाकार बड़ी रोचकता के साथ श्रोताओं के समक्ष रखते हैं। इससे प्रतीत होता है कि मौखिक परंपरा में गाथा एक मौलिक अभिव्यक्ति है, जो बिना किसी उद्देश्य तथा तर्क के अनुभूत ज्ञान की रूपरेखा को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है।

(2) **सुदीर्घ कथानक की प्रधानता**:- कुमाउनी लोकगाथाओं के कथानक इतने लम्बे होते हैं कि एक गाथा एक पुस्तक के रूप में लिखी जा सकती है। मौखिक परंपरा में प्रचलित इन गाथाओं के मूल पाठ के लिए कोई निश्चित प्रतिबद्धता नहीं है। जीवन जीने की कला के रूप में बुजुर्गों द्वारा लम्बे कथानक वाली गाथाएँ गायी जाती रही है। राजुला मालूसाही की गाथा एक सुदीर्घ कथानक वाली गाथा है।इसमें गद्य भाग को भी गाया जाता है तथा पद्य भाग को भी । इन गाथाओं में संवादमूलकता बनी रहती है। नाटकीय अंदाज में अलग अलग चरित्रों द्वारा उच्चरित संवादों को शामिल करने के कारण इन गाथाओं की अन्तर्वस्तु सुदीर्घ हो गई है। कथानक का बड़ा या छोटा होना गाथाओं के लिए कोई प्रभावकारी नहीं है। सार्थक संवादों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रसंग भी गाथाओं में अकारण जुड़े प्रतीत होते हैं। मूल एवं प्रामाणिक पाठ के अभाव में ही गाथाओं का कथानक विस्तृत बन पड़ा है। आप समझ सकते हैं कि रमौल, मालूसाही तथा जागर आदि सुदीर्घ गाथाओं के गायन में गाथाकार कितना अधिक समय लेते हैं। इनके गायन में लगे समय के सापेक्ष ध्वन्यालेखन में और अधिक समय खर्च होता है।

(3) **रचयिता अथवा सृजनकर्ता का अज्ञात होना:** - कुमाउनी लोकसाहित्य की वाचिक परंपरा में परंपरित कई विधाओं के रचनाकारों का कुछ पता नहीं है। इन गाथाओं के मूल जन्मदाता कौन थे ? किस व्यक्ति ने इन गाथाओं को सर्वप्रथम गाना शुरू किया ? इस संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता । कुमाउनी मुहावरे तथा कहावतों के संबंध में भी यही बात सामने आती है कि इन सूक्तियों एवं कहावतों के निर्माणकर्ता या रचयिता कौन थे ? लोकगाथाओं का जनमानस में प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ? इस संबंध में भी ठीक ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता। ये लोकगाथाएँ अपनी मौलिकता के साथ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती आई हैं।

डॉ. उर्वादत्त उपाध्याय ने हडसन के मत का संदर्भ ग्रहण करते हुए अलंकृत काव्य तथा संवर्धित काव्य के बारे में बताते हुए लिखा है कि लोकगाथा सवंर्धित काव्य का रूप है। मूल में जिसका कोई कवि रहा होगा, किन्तु विकास के साथ साथ अनेक लोक कवि एवं गायकों द्वारा उसकी वस्तु में वृद्धि की गई होगी। इसी कारण उसमें परिवर्तन भी स्वाभाविक रूप में आ गया अतः आप समझ पायेंगे कि रचनाकारों के अज्ञात होने के बावजूद इतिहास काल से अद्यतन इन गाथाओं का स्वरूप जीवन्त है।

(4) **नैतिक प्रवचनों एवं उपदेशात्मकता का अभाव:-** कुमाउनी लोकगाथाएँ किसी कथाख्यान का आलंबन लेकर सीधे प्रवाहित होती हैं। इनमें नैतिकता तथा जीवन के लिए जाने वाले उपदेशों का नितान्त अभाव है। इससे प्रतीत होता है कि ये गाथाएँ जब निर्मित हुई होंगी, तब के समाज में कोई ऐसी विभीषिका नहीं होगी ,जो गाथाओं को प्रभावित कर सके । गाथाएँ अपने कथाभाव को लय के साथ अभिव्यक्त करती हुई आगे बढ़ती हैं। इसमें जीवन जीने के लिए जाने वाले उपदेशों का सर्वथा अभाव है।

(5.) **संगीत तथा नृत्य का अप्रतिम साहचर्य:-** कुमाउनी लोकगाथाओं में संगीत और नृत्य का अनूठा साहचर्य है। जागर गाथा को वाद्य यंत्रों के माध्यम से गाया जाता है, घर में लगने वाली जागर में हुड़का तथा कांस्य की थाली को बजाने का विधान है। जबकि मंदिरों या धूनी की जागर बैसी इत्यादि में ढोल दमाऊँ बजाकर देवताओं का आह्वान किया जाता है। कुमाऊँ में कृषि कार्यो को द्रुत गति से सम्पन्न कराने के लिए हुड़कीबौल का प्रचलन है। इसमें भी बौल गायक हुड़के की थाप पर किसी प्राचीन गाथा का गायन करता है। इन गाथाओं में छंद की महत्ता उतनी नहीं समझी जाती। छंद विधान की कट्टरता को दरकिनार करते हुए लय और सुरताल पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

(6) **अतिमानवीय तथा अतिप्राकृतिक तत्वों से युक्त कथानक रुढ़ियाँ-** जीवन के यथार्थमय दृष्टिकोण को प्रतिपादित करने के बाद भी इन गाथाओं में अतिमानवीय प्रकृति का समावेश हुआ है। डा. गोविन्द चातक के अनुसार देव गाथाओं में इसका समावेश एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, किंतु अन्य वर्गो की गाथाओं में उसका उपयोग एक बहुत बड़ी सीमा तक हुआ है। इसका कारण समाज में समय-समय पर प्रचलित अंधविश्वासों, अनुष्ठानों, मनःस्थितियों,

कथानक रूढ़ियों तथा लोकमानस की चिन्तन विधियों में निहित है। इस प्रकार अतिमानव तत्व उस आदिम सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों की देन है, जिससे लोकमानस प्रीलौजिकल विवेकपूर्ण होता है। वह अपने चिन्तन में कार्य कारण क्रम का तारतम्य अपने ढंग से स्थापित करता है। दूसरे अर्थ में वह अपने नियम को प्रतिपादित करने के लिए अतिमानवीय तथा अतिप्राकृतिक शक्तियों का आश्रय लेता हैं।

(7) **स्थानीय तत्वों का समावेश:-** कुमाउनी लोकगाथाओं में स्थानीय तत्वों का प्रचुरता से समावेश हुआ है। राजुला मालूसाही की गाथा में भोटांतिक जन समुदाय की स्थानीय विशेषता दिखाई देती है। उत्तरार्ध में बैराठ द्वाराहाट, कत्यूर दानपुर, भोटदेश की झांकी दिखाई देती है। मादोसिंह मलेथा की गाथा में गढ़वाल के मलेथा नामक जगह का उल्लेख हुआ है। इनमें स्थान विशेष की परंपरा का बाहुल्य है। लोक जीवन की कला संस्कृति तथा स्थानीय रीतिरिवाजों, रहन-सहन आदि के साहचर्य से गाथाओं का रूप निखरा है। स्थान विशेष के लोगों के द्वारा किए जाने वाले पूजा, धार्मिक अनुष्ठान, रीतियों का वर्णन कई गाथाओं में देखा जा सकता है। स्थानीय देवी देवताओं का वर्णन जागर गाथा में स्पष्ट रूप से हम पा सकते हैं। प्रेम तथा प्रणय की गाथाओं में भी स्थानीय जनता के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रतिफलन इन गाथाओं में हुआ है।

यहां उपर्युक्त विशेषताओं के आलोक में आप कह सकते हैं कि गाथाएं अपनी जमीन से जुड़ी हरेक प्राच्य आख्यान को समाविष्ट करती हैं समाज को दिशा निर्देश देने के पूर्वाग्रह को आप इन गाथाओं में नहीं पा सकेंगे, ये गाथाएं मानव सभ्यता के उस दौर में प्रस्फुटित हुई है जब लोकजीवन में कुछ रचने एवं गढ़ने का एक स्वच्छंद शौक विद्यमान था। इसीलिए कुमाउनी तथा गढ़वाली लोकगाथाओं में सूक्ष्य चिन्तन दृष्टि को छोड़ स्थूल मनोरंजक प्रवृत्ति स्पष्ट झलकती है। स्थानीय प्रकृति तथा वातावरण के अनुभूत स्वर लहरियों को गाथाकारों ने एक विशद् लयात्मक स्वरूप प्रदान किया, तब से ये गाथाएं अपने स्वतंत्र अस्तित्व के साथ अभिव्यक्त होती रही हैं।

बोध प्रश्न

क- सही विकल्प चुनिए

1. मालूसाही है-

I. लोकसंगीत
II. लोकगाथा
III. लोकवार्ता
IV. लोककथा

2. लोकगाथा को क्या कहा गया है?

I. लोककथा

II. लोकगीत
III. लोकवाद्य
IV. गद्य- पद्यात्मक काव्य

3. हुड़कीबौल का संबंध है-

I. कृषि गाथा से
II. जागर गाथा से
III. प्रणय गाथा से
IV. लोकवार्ता से

ख. निम्नलिखित में सत्य या असत्य छॉटिए-

1- लोकगाथा कुमाऊँ तथा गढ़वाल दोनों मंडलों में प्रचलित है। (सत्य/असत्य)

2- जागर में केवल हुड़का नामक वाद्य यंत्र बजाया जाता है। (सत्य/असत्य)

3- लोकगाथा के रचयिता अज्ञात हैं। (सत्य/असत्य)

4- लोकगाथा में स्थानीय तत्वों का सर्वथा अभाव है। (सत्य/असत्य)

ग- लोकगाथा से क्या तात्पर्य है। लोकगाथा के स्वरूप को समझाइए।

घ- लोकगाथाओं में इतिहास कालीन घटनाओं तथा चरित्रों का उल्लेख किस प्रकार हुआ है,समझाइए।

6.4 कुमाउनी लोकगाथाओं का भावपक्षीय वैशिष्ट्य

कुमाउनी लोक परंपरा के द्वारा ही यहां की विविध लोक साहित्यिक विधाओं का जन्म हुआ है। प्रत्येक लोकजीवन की अपनी कुछ अलग भावपक्षीय विशेषताएं होती हैं। इन विशेषताओं का प्रभाव उस काल खंड में रचे गए लोकसाहित्य पर भी पड़ता है। डॉ.उर्वादत्त उपाध्याय ने लोकगाथाओं के भावपक्ष संबंधी विशेषताओं पर लिखा है- 'यद्यपि ये विशेषताएं एकान्तिक रूप से केवल कुमाउनी साहित्य की विशेषताएं ही नहीं की जा सकती हैं। अर्थात यह आवश्यक नहीं है कि ये विशेषताएं केवल कुमाऊँ के गाथा साहित्य के अतिरिक्त विश्व साहित्य में सुलभ ही न हो।' यहां के गाथाओं की विशेषताओं में भावपक्ष की प्रबलता है, जिन्हें अधोलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है-

(1) कुमाउनी गाथाकार कतिपय स्थानों पर भूतकाल की जगह भविष्यत काल का वर्णन करता है-

तेरी होली राणी

गाउली सौकेली

सुनपति सौका हो लौ

बड़ो अन्नी धन्नी

सुनपति शौका का

सनतान न होती

अर्थात् तेरी रानी गॉउली सौकेली होगी। सुनपति भोटिया बड़ा अन्नवान तथा धनवान होगा। सुनपति सौक की कोई संतान नहीं है।

(2) तुकबंदी के लिए प्रथम पंक्ति को निरर्थक रूप में जोड़ने का लक्षण प्रस्तुत है-

भरती भरली

दैण नौर दाथुली

वो नौर धरली

सांटी में को सूलो

झिट घड़ी जागी जावो

ऊंमी पकै लूलो (गंगनाथ गाथा)

अर्थात भरती भरेगी। दाहिने कंधे की दराती बांये पर रखेगी, सांटी में का सूल। तनिक प्रतीक्षा करो, मैं ऊंमी पकाकर लाऊंगी।

(3) साहित्य जगत में कवियों द्वारा नायिका के रूप में सौन्दर्य का वर्णन 'दिने दिने सा ववृधे शुक्ल पक्षे यथा शशी' द्वारा किया जाता है। किन्तु राजुला मालूसाही गाथा में राजुला के शैशवकाल से यौवन तक का वर्णन गाथाकार ने अपने निजी ज्ञान के आधार पर किया है-

द्वियै दिन में हो छोरी चार दिन जसी

नावान बखत छोरी, छे महैणा कसी

म्हैणन में हई गैछ बरसन कसी

चैत की कैरूवा कसी वणण बगै छ

भदौ की भंगाल कसी बड़ण बैगे छ

पूस की पालड. कसी ओ छोरी रजुली

राजन की मुई जनमी देवातों की वैरी

ओ छोरी रजुली ऐसी जनमी रै छ (मालूसाही द्वितीय श्रुति)

(दो ही दिन में वह छोकरी चार दिन के समान हो गई है। नामकरण के समय छः मास की हो गई, महीनों में ही वर्षो के समान वृद्धि पा गई, चैत्र मास के कैरूवा के समान बढ़ने लगी हैं भादौ की भंगाल जैसी उगती गई। पूस मास के पालक जैसी हे रजुली, राजाओं को तू मूल नक्षत्रों के समान खटक रही है। इसका सौन्दर्य राजाओं के लिए चुनौती बन गया है। इसका सामना देवतागण स्वर्गवासी होने के कारण नहीं कर सकते।)

आपने पढ़ा कि किस प्रकार भावपक्षीय सुंदरता को गाथाओं में वर्णित किया जा सकता है। जीवन के मूल भाव को नेपथ्य में रखते हुए गाथाएं अपनी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अनुसार चलती हैं।

6.4.1 कुमाउनी लोकगाथाओं में प्रकृति चित्रण

साहित्य की लगभग भावात्मक विधाओं में प्रकृति के नाना रूपों का चित्रण हुआ है। प्रकृति एक विराट विषय है । मनुष्य की प्रकृति कहने से भी यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि मानव मन की प्रकृति भी वाह्य प्रकृति की एक अनुकृति है। डॉ.उर्वादत्त उपाध्याय लिखते हैं-'जहां तक लोकगाथाओं में प्रकृति चित्रण का संबध है। वहां भी प्रकृति के नानारूपात्मक चित्रणों का अभाव नहीं कहा जा सकता है। यद्यपि ये गाथाएं घटना प्रधान हैं, तथा वर्णन प्रधान हैं ये खंडकाव्य, इनकी रचना प्रकृति चित्रण के लक्ष्य से नहीं हुई है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इन गाथाओं में प्रकृति चित्रण का सर्वथा अभाव है। वायु में मिश्रित सुरभि को सूंघने तथा आंखों के आगे कुसुमित प्राकृतिक सुषमा से कौन मुख मोड़ सकता है कुमाऊँ का प्रदेश तो नियति नटी के विभिन्न वेशभूषाओं तथा अलंकरणों से सुसज्जित है तथा उसके नाना प्रकार के व्यापारों से मुखरित है।'

वैदिक कालीन अभिव्यक्ति से लेकर आज तक जितने भी लोक सम्मत विधाओं का निर्माण हुआ है। उनमें प्रकृति एक सार्थक आलंबन के रूप में वर्णित रही है। यहां हम कुछ लोकगाथाओं के अंशों में प्रकृति चित्रण का अध्ययन करेंगे।

मौलिक आलंबन के रूप में प्रकृति चित्रणः- राजुला मालूसाही गाथा में जब गंगा के गर्भ से राजुला का प्रादुर्भाव हुआ, तब तत्कालीन हिमालयी पर्वत प्रदेश की छटा निखर उठी। आप उस छटा की मनोरम झांकी प्रस्तुत अंश में देख सकते है-

हिमाल बादो फाटो री री री. पंचाचूली चांदी जस चमकी रौ

नन्दा देवी की घुडि.टी री री री और तली खिसकण लागी रै

गोरिगंगा पाणी बड़ौ री री री उज्यालो चमकीलो है रौ

(मालूसाही प्रथम श्रृति)

अर्थात हिमालय के बादल फट गए हैं और पंचाचूली चांदी के समान चमक रहा है। नंदादेवी के घूंघट को और नीचे खिसका रहा है। गौरी गंगा का पानी बढ़कर साफ और चमकीला हो गया है।

गाथाकार ने एक अन्य स्थान पर गंगा के तट का प्रातःकालीन चित्र उभारते हुए कहा है-

चार पहर रात अब, खतम है गई हो

गंगा का सुसाट नरैण आब बड़ि गयो हो

करकर ठंडी हवा ऊँछै सरसर जाड़ो लागो हो

(हरू सैम की गाथा)

अर्थ रात्रि के चार पहर बीत चुके हैं । हे नारायण गंगा के पानी की कलकल ध्वनि अब बढ़ गई है। करकर करती हुई हवा आकर ठंडे का आभास करा रही है अर्थात जाड़ा होने लगा है।

एक गाथा में छिपलाकोट जंगल की नैसर्गिक सुषमा के बारे में गाथाकार ने कहा है-

समुणी बीचा माजी, फल फूल बोट

बीस अमिर्त दाख दाड़िम आम पापली चौरा

कत्यूर शिलिंग कुन्जूफूलो और फूली प्योली

अर्थात सामने के बाग में फल और फूल के पेड़ है।

अमृत, विष दाख तथा दाड़िम के फल हैं। आम तथा पीपल के पेड़ों में चबूतरे का निर्माण हुआ है। कनेर शिलिंग कुञ्ज तथा प्योली के फूल खिले हैं।

प्रकृति का उद्दीपक रूपः- प्रकृति के उद्दीपक रूपों का वर्णन भी गाथाओं में हुआ हैं। नायक नायिका की मन स्थिति के अनुसार वेदना में उसे प्रकृति असुंदर लगती है तथा हर्षित क्षणों में वही प्रकृति नायक या नायिका के लिए वरदान सी साबित हो जाती है-

हिमाल की हवा क्या मीठी लगी रे

के धूरा हो राजू तेरि दीठि लागी रे

राजू का शोर या हवा ले मीलि रे

शौक्यूड़ा बगीचा मेरि राजू खिलि रे।

अर्थात हिमालय की हवा में कितनी मीठी सुवास है । राजुला तेरी दृष्टि किस दिशा में लग रही हैं। क्या तू मेरे आगमन को नहीं देख रही हैं। राजुला के श्वास में यह घुली है इसी के द्वारा मिठास का अनुभव होता है। भोट प्रदेश में बगीचे में मेरी रजुली खिली है।'

विरहिणी राजुला की विरह व्यथा में स्थानीय पक्षी फाख्ता (घुघुत) का वर्णन आया है। राजुली के विरहाकुल मनोदशा पर उसे घुघुत की बोली भी असहनीय कष्ट दे रही है ।

ए नी बासो घुघुती को रूमझूम

मेरी ईज सुणली को रूमझूम

काटी खांछ भागी गाड़ को सुसाट

छेड़ी खांछे भागी तेरी वाणी

(मालूसाही द्वितीय श्रृति)

(हे घुघुत! तुम घुर्र घुर्र कर आवाज मत निकालो कही तेरी मर्मस्पशी आवाज मेरी मॉ सुन लेगी हे भाग्यवान पक्षी! नदी के बहने की ध्वनि को सुनकर मुझे बहुत कष्ट होता है। तेरी दुःखभरी वाणी मुझे काट खाने को आती है।)

अलंकारों के रूप में प्रकृति चित्रण- कुमाउनी लोकगाथाओं में प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत विधान अलंकारों के माध्यम से प्रकट होता है। कहीं उपमाएं दी जाती है तो कही रूपक अतिश्योक्ति के रूप में वस्तुस्थिति का चित्रण किया जाता है । राजुला मालूसाही गाथा में अलंकृत शैली का प्रयोग द्रष्टव्य है-

कांस जसी बूड़ी गंगा रीरि रीरि कफुवा जसी फूली रै

कंठकारी जसी गंगा री री, सब दुःख भूली गै

(श्वेत जलधार वाली गंगा कफुवे की जैसी फूली है

ऐसा लगता है कि उसके गले से अनेक ग्रंथियां फूटकर दुखों को भुला रहे हैं।

इन गाथाओं में गाथाकार ने आशीर्वाद लेने के अर्थ में भी अलंकारों का प्रयोग किया है

यथा- दवा जसी जड़ी पाती जसी पीली

बांसा जसी घाड़ी जुग जुग रौओ

(अर्थात दूब की जैसी जड़ पत्तियों जैसी वृद्धि तथा बांस के झुरमुट जैसा सघन विस्तार तुम्हारे जीवन में हो, यही कामना की जाती है)

प्रकृति के उपादानों का वर्णनः- लोकगाथाओं में प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन हुआ है। ध्यान से देखा जाए तो समग्र प्रकृति ही गाथाओं के मूल में अवस्थित है। नदी,नाले पशु पक्षी, पेड़ पौधें किसी न किसी उपादान के रूप में इन गाथाओं में वर्णित हैं। राजुला मालूसाही गाथा में जब भोट प्रदेश से राजुली बैराठ की तरफ प्रस्थान करती है, तब मार्ग में पड़ने वाली सदानीरा नदियों से वह संवाद करती हैं। सरयू के पावन संगम बागेश्वर में पहुंचकर वह बागनाथ जी का आशीर्वाद ग्रहण करती है और मार्ग में पड़ने वाली अन्य सहायक नदियों से भी अपने अमर सुहाग का वरदान मांगती है। चूंकि लोकगाथाओं का प्रणयन लोकमानस की भावभूमि पर हुआ है। अतः इन गाथाओं में मनुष्य की प्रकृति पौराणिक सन्दर्भों को रूपायित करती प्रतीत होती है । नागगाथा का उदाहरण दर्शनीय है-

अधराती हई रैछ, अन्यारी रात छ

अन्यारी जमुना को पाणी, अन्यारी छ ताल

(अर्थात आधी रात का समय है घुप्प अंधेरा है, यमुना का पानी भी अंधियाला या काला है इसी कारण ताल भी अंधेरे से घिरा है।)

आप देख सकते है कि कुमाऊँ में बुरांश प्योली आदि के पुष्पों को सुंदरता के उपादानों के रूप में गाथाकारों ने प्रस्तुत किया है।

कतिपय गाथाओं में आप पायेंगे कि कफुवा न्यौली, घुघुता शेर आदि वन्य पशु पक्षियों को भी आलंबन के रूप में ग्रहण किया गया है। प्रकृति के रूपों को गाथाकार ने सरस ढंग से प्रस्तुत किया है इससे कुमाऊँ प्रदेश की सुरम्य प्राकृतिक सुदंरता का बोध आसानी से हो जाता है।

कुमाउनी लोकगाथाओं में निहित स्थानीय तत्व

स्थानीय तत्व को अंग्रेजी भाषा में local colour कहा जाता है। स्थान विशेष की विशेषता के कारण लोकसाहित्य की प्रत्येक विधा प्रभावशाली एवं रोचक होती है। किसी भी सर्पक का अपना एक लोक होता है। वह उस निजी लोक का निर्माता भी स्वयं होता है। लोक की प्रत्येक क्रिया अथवा प्रतिक्रिया सर्पक को प्रभावित करती है। इस लोकरंजक सृजन में कवि अपनी

अनुभूति को शब्द देते समय स्थान विशेष की वस्तुओं भावनाओं तथा परम्पराओं का बहुत ध्यान रखता है। यदि वह ध्यान न भी रखे तो भी उसकी काव्य में स्वतः समाविष्ट हो जाती है।

कुमाऊँ की लोकगाथाओं में आप समझ सकेंगे कि स्थान विशेष के लोक पारंपरिक आचार व्यवहार प्रकृतिपरक चीजें तथा प्रतिमानों की समिष्ट बड़ी सुरूचि के साथ गाथाकार ने गढ़ी हैं। डॉ. उर्वादत्त उपाध्याय के शब्दों में -अतः कुमाऊँ प्रदेश के लोकगाथाओं में यहाँ का पूरा लोकजीवन अपनी स्थानीय संस्कृति सहित साकार तथा सजीव हो उठा है। कवि ने अपनी स्थानीय प्रकृति पशु ,पक्षी तथा लोकजीवन के दैनिक व्यापारों का पूरा चित्रण किया है। यद्यपि

स्थानीय तत्व का यह रंग गाथाओं में सर्वत्र बिखरा है। कोई भी गाथा पढ़ी या सुनी जाए स्वतः ही उसमें यहाँ का स्थानीय रंग अपनी आभा लिए निखरने लगेगा।

पशु पक्षियों के वर्णन तथा उनकी गाथाओं से संबंधता को देखने से पता चलता है कि कुमाऊँ के धुर जंगलों में कोयल कफु का बोलना, घुघुत (फाख्ते) की घुर्र-घुर्र तथा न्यौली की मीठी सुरीली तान गाथाओं का प्रमुख आधार बने हैं। हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं को भी गाथाकारों ने गाया के माध्यम से वर्णित किया है। नंदा देवी, पंचाचूली, छिपलाकेदार, त्रिशूली तथा अनेक ग्लेशियरों का वर्णन भी यत्र-तत्र दिखाई देता है। प्राकृतिक सदानीरा सरिताओं में प्रमुख काली गंगा, गौरी गंगा, सरयू रामगंगा के माध्यम से कुमाऊँ क्षेत्र की पतित पावनी नायिकाओं के चरित्र की उदात प्रभा का उद्घाटन किया गया हैं कुमाऊँ के प्रसिद्ध शिवमंदिरों जागेश्वर धाम का वर्णन भी गाथा में इस प्रकार हुआ है-

जागेश्वर धुरा बुरूशि फुली रै

मौलि रैई बांजा फुली रै छ प्योली

(अर्थात जागेश्वर के जंगलों में बुरांश को पुष्प खिले हैं, बांज के वृक्ष ने श्याम सी छवि धारण की है तथा पीले-पीले प्यूंली के फूल खिल रहे है)

कहीं बुरूश नाम प्रसिद्ध पुष्प का वर्णन है, तो कही चैत्र मास में फूलने वाली पीलाभ प्यूंली से नायिका के रूप सौन्दर्य को अभिव्यक्त किया जाता है। कहीं स्थानीय ताल पोखरों का वर्णन भी गाथाओं में आया है। कुमाऊँ में ग्रामीण क्षेत्रों में कम पानी वाले क्षेत्रों में तालाब से बनाए जाते हैं। गर्मियों में इन तालों में भैसों को स्नान कराया जाता है। इन पोखरों को भैसीखाल या भैंसी पोखर के नाम से भी जाना जाता है। स्थानों के पौराणिक नामों का समावेश भी गाथाओं में हुआ है। भोटांतिक क्षेत्र को भोट बागेश्वर का क्षेत्र दानपुर तथा कत्यूर तथा द्वाराहाट का क्षेत्र बैराठ के रूप में गाथाकार ने वर्णित किया है। इसके अतिरिक्त जौलजीवी मेला, उत्तरायणी मेला, बग्वाल का वर्णन भी मिलता है। स्थानीय वस्त्राभूषण जिनमें बुलांकी गले की जंजीर, कानों के झुमके, पैरों के झांवर, तथा झर हाथों की धागुली, नाक की नथुली दस पाट का घाघरा, मखमली अंगिया, धोती

प्रमुख हैं, का भी समावेश लगभग स्थानीय गाथाओं में सभी में हुआ है। इस प्रकार आप समझ जाएंगे कि कुमाऊँ के स्थानीय मेले सांस्कृतिक तथा भौगोलिक परंपरा के सभी सूत्र गाथाओं के विशाल कथानक के आधार स्तंभ हैं।

बोधात्मक प्रश्न

क- बहुविकल्पीय प्रश्न

सही उत्तर का चयन कीजिए

1- लोकगाथाओं के रचयिता हैं-

I. ज्ञात
II. अज्ञात
III. एक दर्जन
IV. दस

2- कुमाउनी लोकगाथा में अभाव है-

I. रचयिता का
II. मूल पाठ का
III. उपदेशों का
IV. उपर्युक्त सभी का

3- कुमाउंनी लोकगाथा के भावपक्ष में प्रमुख कौन सा है?

I. प्रकृति वर्णन तथा स्थानीय तत्व
II. गाथाकार का व्यक्तित्व
III. अलंकार
IV. कोई नहीं

ख- अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1-कुमाउनी लोकगाथा में वर्णित किसी एक स्थानीय पक्षी का नाम बताइए ?

2- मालूसाही की नायिका/ प्रेमिका का नाम बताइए ?

3- नाक में पहने जाने वाले भोट प्रदेश के आभूषण का नाम क्या है?

4- कत्यूर क्षेत्र किस जनपद के अन्तर्गत आता है?

6.5 कुमाउनी लोकगाथाओं का वर्गीकरण

कुमाऊँ में प्रचलित लोकगाथाओं के अनेक रूप हमें प्राप्त होते हैं। इन गाथाओं में प्राचीन काल के विविध आख्यान निहित है। इन गाथाओं में आधुनिक काल की किसी कथा आख्यान को सम्मिलित नहीं किया गया है। कुछ गाथाओं की कथा बहुत विस्तृत हैं, तो कुछ गाथाएं संक्षिप्त भी है। यहां आप संक्षेप में गाथाओं के वर्गीकरण को समझ सकेंगे।

(1) परंपरागत गाथाएं

(2) पौराणिक गाथाएं

(3) प्रेमपरक गाथाएं

(4) धार्मिक गाथाएं

(5) स्थानीय एवं वैदिक देवी देवताओं से संबंधित गाथाएं

(6) वीर गाथाएं

परंपरागत गाथाओं में मालूसाही तथा रमौल की गाथाएं प्रसिद्ध है। मालूसाही की विस्तृत गाथा में राजुला मालूसाही का जातीय प्रेमाख्यान प्रदर्शित होता है। इसमें मध्यकालीन कुमाउनी संस्कृति के दर्शन होते हैं। कुछ विद्वान मालूसाही की गाथा को जातीय महाकाव्य के रूप में भी स्वीकारते है। कुमाऊँ के सीमान्त क्षेत्र जोहार से लेकर नैनीताल के चित्रशिला घाट तक का वर्णन इस गाथा में हुआ है।

दूसरी परंपरागत लोकगाथा रमौल के नाम से जानी जाती है। कुमाऊँ तथा गढ़वाल मंडल में प्रचलित इस गाथा में आप महाभारत कालीन चरित्रों एवं घटनाओं का वर्णन समझ सकते हैं।

पौराणिक गाथाओं में पुराण कालीन अनेक गाथाओं का सम्मिश्रण मिलता है। महाभारत काल के कृष्ण अर्जुन संवाद, कौरव पाण्डवों के मध्य हुए युद्ध के कारण तथा उनकी तत्कालीन प्रवृत्तियों को इसमें दर्शाया गया है। रामायण काल की रामचन्द्र जी एवं कृष्ण जी के अवतार संबंधी कथा का वर्णन भी प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त शिव पार्वती संवाद, कृष्ण जन्म की घटना, चौबीस अवतार तथा नागवंश की विशेषताओं को पौराणिक गाथाओं के रूप में जाना जाता है। राजुला मालूसाही की गाथा विशुद्ध रूप से प्रेमपरक गाथा है। जातिगत वैभिन्य के बावजूद भी दोनों के मिलन की एक अलौकिक कथा हमारे समक्ष आती है। धार्मिक गाथाओं के अन्तर्गत वे गाथाएं आती हैं ,जिनके मूल में विशेष धार्मिक अनुष्ठान, पूजा पाठ की क्रियाएं सम्मिलित हैं। कुमाऊँ में जागर गाथा को धार्मिक गाथा कहा जाता है। यद्यपि कुछ विद्वानों का

इसके संबंध में अलग मत हैं। कुछ लोग जागर में महाभारत या रामायण काल की घटना की उपस्थिति के कारण इसे पौराणिक गाथा की कोटि में रखते हैं। किन्तु मूलतः पहाड़ की पूजा अनुष्ठान की विशेष छवि जागर गाथा में दिखाई देने के कारण इसे धार्मिक गाथा कहना उचित प्रतीत होता है। स्थानीय देवी देवताओं से संबंधित गाथाओं में नंदा का जागर, नंदा का नैनौल, सिदुवा बिदुवा की कथा, अजुवा बफौल आदि की गाथा सम्मिलित है। वीर गाथाओं में चंद, कत्यूरी वंशजों की गाथाएं गायी जाती हैं। राजा बिरमा की कत्यूरी गाथा भी एक प्रभावशाली वीर गाथा है। चंद राजाओं, उदैचन्द, रतन चंद, विक्रमचंद की गाथाओं में तत्कालीन वीरतापूर्ण आख्यान समाविष्ट हैं।

बोध प्रश्न

क- सही विकल्प छॉटिए

1. प्रेमपरक आख्यान किस गाथा में मिलते है-

I. जागर गाथा
II. धार्मिक गाथा
III. मालूसाही गाथा
IV. रमौल गाथा

2. नंदा का नैनौल है-

I. देवी देवताओं संबंधी गाथा
II. प्रेम गाथा
III. वीर गाथा
IV. परंपरागत गाथा

3. रमौल है-

I. परंपरागत गाथा
II. वीर गाथा
III. धार्मिक गाथा
IV. प्रेमाख्यान

ख - निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए

1 पौराणिक गाथाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए

2 धार्मिक गाथाओं से क्या तात्पर्य है?

3 वीरगाथाओं की विशेषताएं बताइए।

6.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप

- ☐ कुमाउनी लोकगाथाओं का अर्थ एवं स्वरूप समझ चुकें होंगे
- ☐ कुमाउनी लोकगाथाओं के ऐतिहासिक स्वरूप को जान गए होंगे
- ☐ लोकगाथाओं की भाव भावपक्षीय सुंदरता का अध्ययन कर चुके होंगे।
- ☐ लोकगाथाओं के वर्गीकरण से विभिन्न प्रकार की

प्रचलित गाथाओं के बारे में ज्ञात प्राप्त कर चुके होंगे।

6.7 शब्दावली

उपादेय -	उपयोगी
भड़ौ -	भड़ौ अर्थात भटों एक प्रकार की वीर गाथा
जागर -	जागरण कुमाऊँ की दीर्घ गाथा
नैनौल -	नंदा देवी का जागरण गायन
विभीषिका -	अशांति, अराजकता
भोट प्रदेश -	भोटिया जनजाति का क्षेत्र जोहार, मुनस्यार
आख्यान -	प्राचीन काल का भाव या सूत्र

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

इकाई 6.3 के उत्तर

क- 1- लोकगाथा

2- गद्य-पद्यात्मक काव्य

3- कृषि गाथा से

ख-

1-सत्य

2. असत्य

3. सत्य

4. असत्य

6.4 के उत्तर

क- 1- अज्ञात

2- रचयिता का

3- प्रकृति वर्णन तथा स्थानीय तत्त्व

ख- 1- घुघुत

2- राजुली

3- बुलॉकी

4- बागेश्वर

6.5 के उत्तर

क- 1- मालूसाही गाथा

2- देवी देवताओं संबंधी गाथा

3 – परम्परागत गाथा

6.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1- उपाध्याय डा. उर्वादत्त कुमाऊँ की लोकगाथाओं का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन , पृ0 34 व 35

2. पूर्वोक्त, पृ0 67

3. पूर्वोक्त पृ0 63-64

4. पूर्वोक्त पृ0 391-394

5- पूर्वोक्त पृ0- 423-431

6. पाण्डे, त्रिलोचन, कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य पृ0 229

7. पूर्वोक्त पृ0 234

8. पूर्वोक्त, कुमाऊँ का लोक साहित्य पृ0 160-161

9- पोखरिया, देवसिंह, लोकसंस्कृति के विविध आयाम पृ0 57-58

6.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. कुमाऊँ की लोकगाथाओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ उर्वादत्त उपाध्याय, प्रकाश बुक डिपो बरेली

2. कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य, डा.त्रिलोचन पाण्डे,उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

3. लोकसंस्कृति के विविध आयाम, डॉ.देवसिंह पोखरिया, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो अल्मोड़ा

4. कुमाउनी भाषा और संस्कृति, डॉ केशबदत्त रूवाली

5. भारतीय लोकसंस्कृति का संदर्भ, मध्य हिमालय डॉ गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन दरियागंज दिल्ली।

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कुमाउनी लोकगाथओं के स्वरूप एवं इतिहास की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

2. लोकगाथाओं की विशेषताएं बताते हुए उनका वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

3. जागर गाथा क्या है, जागर गाथाओं में गाए जाने वाली लोकगाथाओं का वर्णन कीजिए।

इकाई 7 कुमाउनी लोककथाएं : इतिहास स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 कुमाउनी लोककथाएं : इतिहास एवं स्वरूप
7.3.1 कुमाउनी लोककथाओं का इतिहास
7.3.2 कुमाउनी लोककथाओं की विशेषताएं एवं महत्त्व
7.4 कुमाउनी लोकथाओं का परिचय
7.5 कुमाउनी लोककथाओं का वर्गीकरण
7.6 सारांश
7.7 पारिभाषिक शब्दावली
7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
7.10 सहायक ग्रंथ सूची
7.11 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

कुमाउनी लोककथाएं कुमाऊँ के जनमानस की साहित्यिक उपज हैं। मनोरंजन और ज्ञान के अभाव की पूर्ति करने के लिए इन लोककथाओं का सृजन किया गया होगा। इतिहास काल से प्रचलित लोककथाओं में सामाजिक एवं धार्मिक जीवन की परंपरागत अभिवृत्ति देखने को मिलती है। इकाई के पूर्वार्द्ध में आप लोककथाओं के प्रादुर्भाव एवं उनके ऐतिहासिक स्वरूप को समझ सकेंगे। लोककथा के निर्माण के पीछे लोकमनोविज्ञान का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यहां हम लोककथाओं की प्रवृत्तियों तथा उनके सामाजिक महत्त्व का अध्ययन भी करेंगे। इकाई के उत्तरार्द्ध में चुनी हुई लोककथाओं का परिचय तथा उनका वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया हैं । प्रस्तुत इकाई को समग्र कुमाउनी लोकसाहित्य की रीढ़ कहना समीचीन प्रतीत होता है। क्योंकि लोकगीत तथा लोकगाथाओं में भी तत्कालीन सामाजिक परिदृश्य तथा उनके कथामूलक आख्यान किसी न किसी रूप में समाहित रहे हैं।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप

- लोककथा द्वारा इतिहासपरक देशकाल एवं वातावरण को समझ सकेंगे।
- कुमाउनी समाज के अभिव्यक्ति कौशल का पता लगा पाएंगे ।
- कुमाउनी लोकथाओं द्वारा समाज के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं पर दृष्टि डाल सकेंगे।
- यह जान सकेंगे कि परंपरा की जीवंतता में लोककथाओं का कितना बड़ा योगदान है।
- कुमाऊँ के स्थानीय रीति रिवाजों तथा भौगोलिक परिस्थिति को समझ सकेंगे।

7.3 कुमाउनी लोककथाएं : इतिहास एवं स्वरूप

कुमाउनी लोककथाओं को समझने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम कथा के अर्थ को समझें । कुमाऊँ तथा गढ़वाल में कथा के लिए कथा, काथ, वार्ता तथा कानी शब्दों का प्रयोग होता रहा हैं । देवी देवताओं के पौराणिक आख्यान को वार्ता कहा गया है। कानी (कहानी) गढ़वाली भाषा में यथार्थ जीवन की घटनाओं का दस्तावेज माना जाता है, जबकि कथा को मनगढ़न्त काल्पनिक विधा के रूप में पारिभाषित किया गया है। डॉ गोविन्द चातक के अनुसार- कथा, कहानी और वार्ता सुनने सुनाने के दो रूप होते हैं। एक तो कथाएं की जाती हैं । जैसे सत्यनारायण भागवत और पुराणों की कथाएं। इनके पीछे धार्मिक प्रेरणा होती है और ये प्रायः अनुष्ठान के रूप में ही की जाती हैं इन कथाओं का प्रसंग से सीधा संबंध नहीं । क्योंकि वे पढ़कर सुनाई जाती है और श्रोताओं का उनके प्रति कथा का भाव नहीं रहता । वह उनके लिए एक धार्मिक कर्तव्य सा होता है। इसी प्रकार की वार्तायें भी केवल धार्मिक समारोहों के अवसर पर सुनाई जाती हैं और उनका आधार भी कोई पौराणिक आख्यान ही होता है। वास्तविक कथाएं वे होती है, जिन्हें बूढ़े और बच्चे विश्राम और कार्य के क्षणों में मनोरंजन के लिए सुनाया करते हैं।

कुमाउनी लोककथाओं में भी कहानी या कथा का कोई यथार्थ या वास्तविक भाव उतना नहीं दिखाई देता । कुछ पौराणिक लोककथाओं जैसे महाभारत, रामायण आदि की कथाओं में

वास्तविक जीवन के भाव बोध दृष्टिगत होते हैं। शेष कथाएं कल्पना या गल्प पर ही आधारित हैं।

कुमाउनी लोकसाहित्य के कुशल अध्येता डा. त्रिलोचन पाण्डे ने कुमाउनी लोककथाओं को दो भागों में बांटा है-लोकगाथाएं तथा दन्त कथाएं। हम अपने दृष्टिकोण से इन्हें अलग-अलग कोटि में रखेंगे। यद्यपि कुछ लोकगाथाओं तथा लोककथाओं की कथावस्तु लगभग एक समान हैं फिर भी इनका वास्तविक स्वरूप भिन्न है। दन्तकथाओं में हम तांत्रिकों, पुजारियों, भूतप्रेतो,देवों दानवों, पशु पक्षियों ,वनस्पतियों, वृक्षों नदी, नालों तथा साधु संतों आदि की कथाओं को सम्मिलित करते हैं। डॉ कृष्णानंद जोशी ने विषयवस्तु को विभाजन का आधार मानते हुए कुमाऊँ की लोककथाओं को अतिमानवीय, मानवीय संबंधों और लोक विश्वास के दायरे में रखा है। डॉ पुष्पलता भट्ट ने लोककथाओं को बारह वर्गो में वर्गीकृत किया, जो हमारे वर्गीकरण से लगभग मेल खाता है। परन्तु गीत कथाएं तथा तन्त्र मंत्र संबंधी कथाएं अलग वर्ग के अन्तर्गत आती हैं। इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ कह पाना संभव नहीं है।

कुमाउनी में आरंभ से चली आ रही लोककथाओं के निर्माता सर्वथा अज्ञात हैं। ये कथाएं पीढ़ी दर पीढ़ी बुजुर्गो को सुनकर अपनी अगली पीढ़ी को मौखिक रूप से हस्तांतरित करते रहते हैं। कुमाउंनी सभ्यता तथा संस्कृति के विकास क्रम में ही इन लोककथाओं का सृजन हुआ है। ये काल्पनिक और वास्तविक होने के साथ-साथ जीवंत हैं तथा सत्यानुभूति के धरातल पर पाठकों को दिशा निर्देश तथा उनका मनोरंजन करने में भी पूर्णतः समर्थ हैं।

7.3.1 कुमाउनी लोक कथाओं का इतिहास

कुमाउनी लोककथाओं का इतिहास काल क्रम निर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि ये कथाएं प्रारंभ से परंपरा के रूप में विकसित हुई हैं। पिछले अध्यायों में आपने पढ़ा होगा कि लोकसाहित्य के प्रादुर्भाव के संबंध में प्रायः यही कहा जाता रहा है कि इन विधाओं के रचनाकार अज्ञात एवं दुर्लभ हैं। लोककथा भी लोकगाथा, लोकगीत तथा कहावतों की तरह एक वाचिक परंपरा की विधा है जिसका विकास जनमानस की संवेदी उर्वरा भावभूमि पर हुआ है। कुमाउनी लिखित साहित्य के अध्ययन के उपरांत आप देखेंगे कि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से ये लोककथाएं और कहावतें लिखित रूप में सामने आई। 19वीं शताब्दी से लिखित साहित्य का प्रारंभ माना जाता है। इस सदी में काव्य रचनाओं के माध्यम से ही लिखित साहित्य परंपरा की शुरूआत हुई। जीवनचंद्र जोशी (1901) तथा चन्द्रलाल वर्मा चौधरी (1910-1966) को कुमाउनी कथा साहितय एवं कहावतों का प्रणेता माना जाता है। इससे पूर्व 19वीं शताब्दी में पौराणिक संस्कृत साहित्य का अनुवाद कार्य भी हमारे समक्ष आता है।

ज्हां तक कुमाउनी लोककथाओं का प्रश्न है ये रचयिताओं का परिचय बिना सतत प्रवहमान हैं, डॉ उर्वादत्त उपाध्याय ने सम्पूर्ण लोकसाहित्य के निर्माण के विषय में अपना मत

व्यक्त करते हुए लिखा है- 'लोक संस्कृति एवं लोकजीवन की परंपरा का साक्षात रूप से निर्वाह करने वाली है, यहां के लोकसाहित्य के प्रबंध काव्य जिन्हें गाथा कहा जाता है। सारा लोकसाहित्य परंपरागत रूप से श्रुति परंपरा द्वारा संचालित होता आया है तथा इसके रचयिता एकदम अज्ञात हैं। उन्होने आगे लिखा है कि श्री ओकले और श्री तारादत्त गैरोला के प्रयत्नों से कुमाऊँ की अनेक लोककथाएं आदि प्रकाश में आई।

डॉ कृष्णानंद जोशी के अनुसार-'लोकसाहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग लोककथाएं हैं। यह लोककथाएं अंचल विशेष के जन जीवन, सामाजिक रीति रिवाज परंपराओं और लोकविश्वासों पर यथेष्ट प्रकाश डालती हैं। इन कथाओं में कुछ अतिमानवीय शक्तियों-भूतप्रेत राक्षस, दैत्य, परियों से मनुष्य विशेष के संघर्ष पर आधारित हैं ऐसी कथाओं में बहुधा मानवीय शक्तियों की अतिमानवीय शक्तियों पर विजय दर्शायी गई है। विभिन्न लोकविश्वासों की सुन्दर अभिव्यक्ति इन कथाओं में मिलती है। दूसरे वर्ग में वे कथाएं सम्मिलित की जा सकती हैं जिनमें पंचतंत्र की कथाओं और ईसप की कहानियों की भांति पशु-पक्षियों के संसार को इस भांति वर्णित किया गया है कि बहुधा कहानी के पशु पात्र मानव स्वभाव की कोई दुर्बलता,वर्ग विशेष की चारित्रिक विशेषता या सामाजिक जीवन के किसी वैषम्य की ओर इंगित करते हैं। स्थानीय जनमानस की अभिव्यक्ति कौशल की ओर से कथाएं सीधा संकेत करती हैं। इन कथाओं का निर्माण वैदिक कालीन साहित्य एवं संस्कृति के आधार पर हुआ है। इतिहास का आधार महाभारत तथा रामायण काल की घटनाओं एवं उनमें शामिल चरित्रों को भी माना गया है। डॉ गोविन्द चातक ने लिखा है- 'गढ़वाल और कुमाऊँ में दो प्रकार के देवी देवता मिलते हैं। एक स्थानीय और दूसरे वे जिन्हें सामान्यतः सम्पूर्ण भारतवर्ष में माना जाता है। हिन्दू देवीदेवताओं का पौराणिक सनातन व्यक्तित्व है। अतः कुमाऊँ और गढ़वाल में भी उनके संबंध में उसी प्रकार की कथाएं प्रचलित हैं जैसी अन्यत्र हैं। किन्तु इसके अतिरिक्त भी उनके संबंध में ऐसी कथाएं स्थानीय रूप से चुनी गई है जिनके सूत्र अन्यत्र नहीं मिलते। उदाहरण के लिए श्रीकृष्ण की रसिकता से सम्बद्ध कुसुमा कोलिन सुजू की सुनारी, गंगू रमौला, सिदुवा ब्रहमकुँवर चन्द्रावली रूकमणी आदि के प्रसंग स्थानीय और मौलिक हैं इसी प्रकार पांडुवों की कथाएं जिन्हें पांडवार्त (पांडव वार्ता) कहा जाता है कुछ महाभारत के अनुकूल चलती है। किन्तु कई उससे भिन्न रूप में भी मिलती है। इसी प्रकार यहां की लोककथाओं में शिव पार्वती अनेक बार पालों के रूप में आते हैं इसके अतिरिक्त उनसे संबंधित कई कथाएं स्वतंत्र रूप से भी मिलती हैं। शिव और शक्ति का क्षेत्र होने के नाते जागेश्वर, बागेश्वर, पाताल भुवनेश्वर, सोमेश्वर नन्दादेवी, त्रिशूल गोपेश्वर, तुंगनाथ कालीमठ, कमलेश्वर सुरकंडा, चंद्रवदनी, रूद्रप्रयाग, उत्तरकाशी आदि कई स्थान उनकी श्रृतियों से संबंधित हैं। राम कथा को भी स्थानीय रंगों से अनुरंजित किया गया है।

स्थानीय देवी देवताओं गणनाथ, मलयनाथ, भूमिया हरू,सैम, भैरव, कलुवा, सिडुवा बिदुवा, ग्वल्ल, परी आंचरी गड़देवी सहित अनेकानेक क्षेत्रीय देवी देवताओं के जीवन पर आधारित अनेक लोककथाएं कुमाऊँ क्षेत्र में प्रचलित हैं। प्रो. देवसिंह पोखरिया ने लोककथाओं

को लोकभाषा या बोली में परंपरा से चली आ रही वाचिक अभिवयक्ति के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने कुमाउनी लोककथाओं के इतिहास को बताते हुए लिखा है - भारतीय लोककथाओं की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। यदि भारत की सारी लोककथाओं को संगृहीत किया जाए, तो इनकी संख्या अनंत होगी। कथा साहित्य की दृष्टि से यह विश्व का अद्भुत ग्रन्थ होगा। भारत को विश्व कथा साहित्य का मूल स्रोत होने का गौरव प्राप्त है, वैदिक संहिताएं ब्राहमण ग्रंथ उपनिषद्, पुराण ग्रंथों की कथाएं , वृहत्कथा, कथासरित्सागर, पंचतंत्र, हितोपदेश, वैताल पंचविंशति का सिंहासन द्वात्रिशिका तथा जातक कथाएं भारतीय कथा साहित्य के अमर ग्रंथ हैं जो लोककथाओं की भूमि पर ही पुष्पित पल्लवित और सुरभित हैं।' पोखरिया के अभिमत के आलोक में हम कह सकते हैं कि प्रारंभ से अविराम गति से चली आ रही लोककथाओं ने वैदिक साहित्य, लौकिक साहित्य, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंशकालीन सभ्यता एवं संस्कृति का अनुशीलन करते हुए एक परंपरा विकसित की है। इस पंरपरा का मूल लक्ष्य लौकिक जीवन को उस आनंद से अभिभूत करना था, जो मानवीय सोच के बिल्कुल करीब होती है। युगीन परिदृश्य तथा नैतिकतापूर्ण आख्यानों को लोककथाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया।

यहां हम कह सकते हैं कि लोककथा एक वाचिक परंपरा की अभिव्यक्ति है, जिसे इतिहास काल से ही स्वच्छंद ढंग से आत्मसात किया गया। कुमाउनी लोक कथाओं में पौराणिक आख्यान, समाज का बिम्ब तथा नियति की विशेषता देखी जा सकती है। प्रकृति को आधार मानकर लिखी गई लोककथाओं में मानव मनोविज्ञान के तत्व साफ झलकते हैं। इन कथाओं की उत्पत्ति के संबंध में मनुष्य की अन्तर्विवेकी तथा लोकरंजन की मानस वृत्ति छिपी है। अनुभूति की मनोरंजक अभिव्यक्ति संपूर्ण समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हुई। यही इन लोककथाओं का ऐतिहासिक स्वरूप है।

7.3.2 कुमाउनी लोककथाओं की विशेषताएं तथा महत्त्व :-

कुमाउनी लोककथाएं कुमाउनी साहित्य की अनूठी धरोहर है। लोकसाहित्य में पायी जाने वाली विशेषताएं लोककथा की विशेषताओं के समान हैं। लोक जीवन की जीवन शैली तथा क्रियाकलापों को भी लोककथाओं में स्थान मिला है। ये लोक कथाएं सामाजिक मूल्यों की स्थापना करने में भी सहायक सिद्ध हुई है। नीतिगत निर्णय तथा विश्व मंगल की कामना इन कुमाउनी लोककथाओं में सर्वत्र पायी जाती है। कुमाउनी लोकसाहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा होने के कारण वर्तमान में भी इनके प्रति लोगों की रूचि यथावत है। कुमाउनी लोककथाओं की विशेषताओं को यहां कुछ शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जाता है-

1. प्राचीन आख्यानों से परिपूर्ण- कुमाउनी लोककथाएं प्राचीन काल की परंपरा का प्रकाशन करती है । वैदिक युग सहित रामायण तथा माहाभारतकालीन घटनाओं का उल्लेख इन कथाओं में हुआ है। जिन आप्त चरित्रों को हम जीवन में उपादेय समझते हैं। उन चरित्रों का उल्लेख कई लोककथाओं में हुआ है । इन लोककथाओं में प्राचीन काल की लोकगाथाओं के आख्यान भी

कहीं कहीं दिखाई देते हैं। मूलतः लोककथा तथा लोकगाथा कथा आख्यान की दृष्टि से एक ही हैं । अन्तर सिर्फ इतना है कि लोकगाथाओं का कथानक बहुत विस्तृत होता है, जबकि कहानी या लोककथा का कलेवर उत्कर्ष के सापेक्ष कुछ बड़ा होता है। राम, कृष्ण , अर्जुन, आदि के द्वारा प्रजाहित किए गए सत्कार्यों को लोककथाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। वृहत्कथा, मृच्छकटिकम, कथासरित्सागर आदि में वर्णित कथा लोककथाओं के समान विशेषताएँ प्रदर्शित करती हैं।

2. लोकमंगल की कामना - लोककथाएँ लोकमानस की सच्ची बानगी है। लोकमानस से उद्भूत इन कथाओं में जन कल्याण तथा लोककल्याण की भावना परिलक्षित होती है। इसके पीछे एक यह तर्क भी दिया जाता है कि प्राचीन काल की कथाओं में पौराणिक उदात्त चरित्रों का उल्लेख होने के कारण इनमें लोक के प्रति सद्भाव एवं मगंल कामना का वैशिष्ट्य पाया जाता है। मौखिक परंपरा से विकसित तथा लोकरजंकता का गुण विद्यमान है। क्योंकि साहित्य का उद्देश्य केवल थोथा या सुर्ख मनोरजंन ही नहीं है, बल्कि इस विशेषता को दर्शाते हुए जनकल्याण की भावना भी लोकसाहित्य में होनी चाहिए।

3- **लोक जीवन की झाँकी -** कुमाऊँ क्षेत्र को रंगीला कहा जाता है, तो गढ़वाल को छबीला । यहाँ की खूबसूरत वादियाँ सहृदय को बरबस अपनी ओर आकर्षित करती हैं। कुमाऊँ के सीमान्त जनपदों की आदिवासी जनजातियों की अपनी अलग पहचान है। इनके रीति रिवाज तथा प्रथाएँ सभ्य समाज से हटकर हैं। आप समझ पायेगें कि लोकजीवन की मौखिक परंपरा में इन आदिमजातीय परिवारों की संस्कृति का बहुत बड़ा योगदान रहा है। कुमाउनी लोकगाथाओं में यहां की भिटौली, घुघुतिया घी त्यार, फूलदेई, बिरूड़िया आदि लोक परंपराओं का समावेश हुआ है। नातेदारी, रक्त संबंध तथा अन्य सामाजिक संस्थागत आदर्श भी लोककथाओं के विषय बने हैं। यहां के लोगों का रहन-सहन तथा ससुराल मायके जाने वाली प्रवृत्तियों का उल्लेख भी लोककथाओं में स्पष्ट झलकता है।

(4) लोक सत्यानुभूति का समावेश- कुमाउनी लोककथाएं आख्यान मूलक होने के साथ-साथ लोक सत्य उद्घाटन में भी अग्रणी हैं। लोकमानस की पवित्र मेधा से उद्भूत इन कथाओं का उत्कर्ष सत्य पर आधारित होता है। काफल पाको मैंनि चाखो (काफल पके किन्तु मैंने नहीं चखे) चल तुमड़ी बाटो बाट मैं के जाणं बुड़ियकि बात (तुमड़ी तुम अपने रास्ते चलो मैं बुढ़िया के बारे में कुछ नहीं जानती) जैसी लोककथाएं लोक चातुर्य तथा लोक सत्य का उद्घाटन करती हैं।

यहां हम समझ सकते हैं कि व्यक्ति की सोच एक कल्याणकारी जगत का निर्माण करने पर आमादा है । यहां की कथाएं व्यष्टि से समष्टि तक का सत्यापन करने में सक्षम हैं।

(5) पशु पक्षियों तथा प्राकृति उपादानों की अवस्थिति:- कुमाऊँ की लोककथाओं में यहां की प्रकृति तथा पशु पक्षियों को एक ऐसे आलम्बन के रूप में ग्रहण किया गया है, जिससे लगता

है कि ये प्राकृतिक उपादान तथा पशु पक्षी मानव जगत से सीधा संवाद करते हैं। कुमाऊँ के स्थानीय पक्षी न्यौली, घुघुत, का उल्लेख कई कथाओं में हुआ है। इसी प्रकार यहां की वनस्पति, फल फूल, सिसौंण (बिच्छू घास) काफल (एक रसीला फल) तुमड़ा (गोल लौकी) भी कई कथाओं में वर्णित है। यहां की स्थानीय नदियों काली, गोरी, सरयू, रामगंगा सहित छोटे-छोटे गधेरों पठारों तथा जंगलों का वर्णन भी अनेक कथाओं में मिलता है। लोकसाहित्य के मूर्धन्य विद्वान प्रोफेसर देव सिंह पोखरिया के शब्दों में -'कुमाउनी लोककथाओं में पुर पुतई पुरै, पुर, तीन, वाट कि फिफिरी, अघिलै लाकड़ि जलि पछिलै ऊँ छि, धोति निचोड़ि मोत्यूं मिलि, सुनुकि बतख, भूतक नाश, दिन दिदी जाग जाग, घुघुति, एक राजाक द्वि सींग आदि कथाएं बहुचर्तित तथा लोकप्रिय लोककथाएं हैं।'

(6) उत्सुकता तथा जिज्ञासा का भाव:- कुमाउनी लोककथाओं में अधिसंख्य कथाएं एक छि राज (एक राजा था) एक छि बुड़ी (एक बुढ़िया थी) से प्रारंभ होती है जैसे ही एक राजा था' कहा जाता है कि सुनने वाले की एकाग्रता तथा औत्सुक्य वहीं से शुरू हो जाता है । ये कथाएं दादी नानी के मुख से अपने छोटे-छोटे पोते-नातियों को अक्सर सुनाई जाती हैं। इन कथाओं का कथानक संक्षिप्त एवं सारगर्भित होता है। वर्ण्य विषय में अन्ततः चारमोत्कर्ष पर कथा का भाव लक्षित होता है। शुरू से लेकर अंत तक कथा कहने वाले की अपेक्षा सुनने वाले की तत्परता देखने लायक होती है। श्रोता के भीतर एक जिज्ञासा का भाव कथा क्रम के अनुसार बढ़ता जाता है । जब तक कथा का समाहार नहीं हो जाता, उत्सुकता बनी रहती है।

अतः हम कह सकते है कि कुमाउनी लोककथाएं अपने अस्तित्व में पूर्ण हैं। इनमें सुनने वाले की तत्परता इस बात का प्रमाण हैं कि कहीं न कहीं कथाभाव में मूल्यों की स्थापना तथा रोमांचित करने वाली विशेषता विद्यमान है। मौखिक और लिखित दोनों रूपों में प्राप्त इन कथाओं के आधार माननीय संवेदनाएं हैं। मानव द्वारा लोकरंजकता तथा स्वयं के बुद्धि चातुर्य को स्थापित करने में भी लोककथाओं का अवदान प्रशंसनीय एवं संग्रहणीय हैं । इन कथाओं में वैश्विक कल्याण तथा प्रेम का संदेश देने वाली प्रवृत्तियों का कुशल अनुशीलन हुआ है।

कुमाउनी लोक कथाओं का महत्व:- आपने साहित्य को समाज का दर्पण के रूप में सदा ही स्वीकार किया है। किसी भी साहित्य की प्रवृत्ति समाजशील होती है, इन लोककथाओं का सबसे बड़ा महत्त्व मानवता की स्थापना विश्व एवं राष्ट्र प्रेम है। इन लोककथाओं को कुमाउनी लिखित साहित्य की परंपरा में मील का पत्थर माना जाता है। इनका समाज के जनमानस के साथ सीधा संपर्क होता है। जिससे लोकानुभूति लोकाभिव्यक्ति में स्वतः परिणत हो जाती हैं । इन लोककथाओं में निहित कुमाउनी संस्कृति के तत्वों द्वारा आम लोगों को यहां की सांस्कृतिक एवं साहित्यिक चेतना के बारे में पता चल जाता है। मानवीय संवदेना को आदिकालीन परंपरा ने किस प्रकार ग्राह्य बनाया। इसे भी एक बड़े महत्त्व के रूप में देखा जाता है। समाज में साहित्य के अध्येताओं के लिए एक आंचलिक विधा के रूप में कथाओं का परिचय आसानी से प्राप्त कर

लिया जाता है। कुमाउनी संस्कृति के अलावा रचयिता के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को स्मारक बनाने में लोककथाओं के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता।

कुमाउनी लोककथाओं में यहां के ग्रामीण जीवन की सुन्दर झांकी स्पष्ट दिखाई देती है। इन कथाओं में सद्भाव तथा मूल्यों की स्थापना करने की क्षमता है। कई लोककथाएं भावात्मक होने के कारण यहां की बहू बेटियों के मर्मस्पर्शी एवं भावुक स्वभाव का परिचय देती हैं। इनमें वैचारिक प्रखरता होती है तथा किसी सामाजिक सांस्कृतिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ये लोककथाएं बहुत महत्त्वपूर्ण समझी जाती है। लोकमंगल की कामना से लेकर विश्व कल्याण की अवधारणा इन कथाओं के मूल में निहित होता है। यहां पर हम समझ सकते हैं कि लोककथाएं समाज के मनोरंजन में साहित्यिक अवदान के लिए हर युग में सर्वग्राह्य सर्व स्वीकार्य होती है।

बोध प्रश्न

इकाई 7.3 के प्रश्न

क- उचित विकल्प चुनिए-

I. 'चल तुमड़ी बांटों बाट, मैं के जाणू बुड़ियकि बात' है-लोककथा
II. लोकगीत
III. लोकगाथा

2- लोककथा की मूल परंपरा क्या है?

I. शाब्दिक
II. लिखित
III. वाचिक
IV. आर्थिक

3- लोककथा का कथानक होता है-

I. संक्षिप्त एवं सुगठित
II. विस्तीर्ण
III. हास्यास्पद
IV. सूक्तिपरक

ख- निम्नलिखित लघुउत्तरीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए-

1- लोककथा की परिभाषा दीजिए।

2- लोककथा की पांच मुख्य विशेषताएं बताइए।

3- कुमाउनी लोककथाओं के संक्षिप्त इतिहास पर प्रकाश डालिए।

4- कुमाउनी लोककथाएं यहां के समाज के लिए किस प्रकार उपयोगी हैं?

7.4 कुमाउनी लोककथाओं का परिचय

कुमाऊँ में अनेक लोककथाएं प्रचलित हैं। कुछ कुमाउनी कहावतों के रूप में प्रचलित लोककथाएं भी कथा आख्यान से परिपूर्ण हैं। कुमाऊँ क्षेत्र में ही इन कथाओं का जन्म हुआ था। ये इतिहास के सतत प्रवाह से समाज में संचरित होती आई हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण लोककथाओं का परिचय हिन्दी में यहां प्रस्तुत किया जाता है-

(1) पिनगटियक मरण (पिनगट का मरण)

किसी गांव में पिनगट नाम का एक व्यक्ति रहता था। उसके परिवार में दो ही सदस्य थे पिनगट और उसकी पत्नी। एक दिन जब उसकी पत्नी रोटी पका रही थी तब वह बाहर से कान लगाकर सुनने लगा। बाद में अंदर आकर उसने कहा कि आठ बार पट-पट हुई सोलह बार तवे में छप की आवाज हुई ,कुल आठ रोटियां होनी चाहिए। चार यहां पर हैं चार कहां गए। उसकी पत्नी ने चार रोटियां छिपाई थी, वह तुरन्त बोली- 'स्वामी! आप तो अन्तरयामी हैं सब जानते हैं।' ऐसा कहते हुए उसकी पत्नी ने चार छिपाई रोटियां सामने रख दी। दूसरे दिन उसकी पत्नी ने सारे गांव में खबर फैला दी कि उसके पति पुछ्यार (पूछ करने वाले)हैं। फिर क्या था। किसी स्त्री का मंगलसूत्र खो गया था। वह पिनगट के पास आई। पिनगट तो कुछ नहीं जानता था, फिर उसने गांव की एक सभा की। सभा में सभी गांववासी आए। एक अन्य ग्रामवासी का नाम भी पिनगट था। पिनगट ने सभा में सबकी तरफ देखा फिर असहाय होकर उसने कहा- 'आ गया रे अब पिनगटिया का मरण' दूसरा पिनगट जिसने मंगलसूत्र चुराया था। सामने आकर हाथ जोड़कर कहने लगा। ये लो मंगलसूत्र पर मेरी जान बचा लो। ऐसा कहते ही पिनगटिए की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उसने मन ही मन भगवान को धन्यवाद दिया। इस तरह पिनगट की यश कीर्ति चारों ओर फैल गई।

(2) के करूं पुतु पुरे पुरे (क्या करूं पुत्र काफल पूरे के पूरे थे)

यह लोककथा कुमाऊँ में सर्वत्र प्रचलित है। कहा जाता है कि प्राचीन समय में एक फाख्ते (घुघुत) ने जमीन के गना काफल सुखाने धूप में डाल। उसने अपने पुत्र को इसकी रक्षा करने को

कहा। घुघुत कहीं दूर चला गया । शाम को जब घुघुत वापस लौटा तो उसने देखा कि काफल बहुत कम हैं। उसका दिमाग ठनका। उसने मन ही मन सोचा जरूर मेरे बेटे ने धूप में सुखाने डाले काफल खा लिए हैं। उसे क्रोध आया और उसने इस गलती के लिए अपने बेटे को मार डाला। घुघुत रो रहा था। पास से गुजरते एक अन्य घुघुत को उसने बात बताई उसने कहा कि तुम मूर्ख हो। काफल धूप में सूखने के बाद कम हो गए होंगे तुमने अनर्थ किया जो अपने बेटे को मार डाला। ऐसा सुनकर घुघुत सदमें से बेहोश हो गया और पुत्र वियोग में छटपटाते हुए उसने अपने प्राण त्याग । कहा जाता है कि आज भी वह घुघुत के करू पुतू पुरे पुरे कहकर अपना पश्चाताप प्रकट करता है।

(मौखिक परंपरा के अनुसार संकलित)

(3) रीश रव्वै आपण घर बुद्धि ख्वै पराय घर

(क्रोध अपना घर नष्ट करता है बुद्धि पराए घर को नष्ट करती है)

मनुष्य की बौद्धिकता को प्रदर्शित करने वाली इस कथा में कौवे नामक पक्षी को आधार बनाया गया है। इस कथा के अनुसार- एक कौवे के दो विवाह हुए। वह एक पत्नी को बहुत प्यार करता था तथा दूसरे से नफरत करता था । एक समय कौवा सात समुन्दर पार गया तथा दोनों पत्नियों को अपने साथ ले गया। उड़ते समय उसने अपनी लाड़ली पत्नी को मुंह में पकड़ लिया । दूसरी को उसने अपनी पीठ पर बैठा लिया। सौतियां डाह से जली भुनी पीठ पर बैठी कुलाड़ली पत्नी ने गुस्से से कहा- एक राजा की दो शादियां, एक राजा की दो शादियां' कौवे को सहन नहीं हुआ वह 'रॉड का क्या तू रॉड का क्या?' ऐसा कहते कहते बोलने से उसका मुंह खुला तथा लाड़ली औरत समुद्र में जा गिरी। तब कहा जाता है कि क्रोध अपने घर को नष्ट करता है, जबकि बुद्धि पराए घर को तबाह कर देती है। (संकलन डॉ.देव सिंह पोखरिया)

(4) भगवान कि माय (ईश्वर की माया)

एक बार एक राजा अपनी पत्नी तथा दो बच्चों सहित देश निकाला होने के बाद देश छोड़कर जाने लगा। रास्ते में नदी पार करते समय राजा ने अपनी पत्नी तथा एक लड़के को नदी तट पर छोड़ दिया। एक लड़के को कंधे पर बैठाकर राजा नदी पार कर रहा था। किनारे वाले बेटे पर एक बाघ झपटा तो राजा ने अचानक पीछे देखा। हड़बड़ी में कंघे वाला बालक नदी में गिर गया और बह गया । राजा बहुत घबराया था। उसने नदी के किनारे पर आकर देखा ।उसकी पत्नी बच्चा गायब थे। राजा ने सोचा कि बदकिस्मती आदमी का साथ कभी नहीं छोड़ती। ऐसा सोचते हुए वह नदी तट पर सो गया। बह गए पुत्र को एक मछुवारे ने बचा लिया । बाघ का आक्रमण हुए बच्चे को एक शिकारी ने बचा लिया तथा शिकारी ने उसकी पत्नी तथा बच्चे को पाल लिया। सोए हुए राजा को दूसरे देश वालों ने राजगद्दी पर बैठा दिया क्योंकि उसका माथा चमकदार था। राजा को तो उसका सम्मान मिल गया किन्तु वह अपनी पत्नी तथा बच्चों के बिछुड़ने के कारण

परेशान था। संयोग की बात देखिए , जो बालक बहा था, उसे किसी मछुवारे ने पाल पोसकर बड़ा किया तथा वह राजा के महल में नौकरी पर लग गया। दूसरा लड़का जिसे बाघ उठाकर ले गया था एक शिकारी द्वारा बचा लिया गया था। उसे भी राजा के महल में गार्ड की नौकरी मिल गई। राजा की पत्नी भी भटकते भटकते राजमहल में नौकरानी के रूप में कार्य करने लगी। एक दिन राजा ने सारे राजमहल के कर्मचारियों के सामने अपने विगत अतीत की कथा सुनाई। तो राजा की पत्नी जो नौकरानी का कार्य करती थी ,तुरन्त सब कुछ भांप गई ,फिर उसने अपने पुत्रों तथा राजा को सारी कथा सुनाई। सब अवाक थे। ईश्वर के विधान को वरदान समझकर राजा का परिवार राजमहल में आराम से रहने लगा। (साभार श्रीमती सरस्वती दुबे)

इसके अतिरिक्त भी कई प्रकार की लोककथाएँ कुमाऊँ में प्रचलित हैं। कुछ कहावतों के रूप में कथा के भाव को ग्रहण किए हैं। एक राजाक द्वि सींग (एक राजा के दो सींग) धोति निचोड़ि मोत्यूं मिल (धोति निचोड़ी तो मोती मिल गए) इनरू मुया काथ (इनरवे मुया की कथा) राज के धन मि धन (राज के पास धन कहाँ मेरे पास धन है।) एक कावक नौ काव (एक कौवे के नौ कौवे) काफल पाको मैं नि चाखो (काफल पके पर मैंने नहीं चखे) तथा जुँ हो जुँ हो (मैं जाऊ, मैं जाऊ) कुमाऊँ में प्रचलित प्रमुख लोककथाएँ हैं। इन लोककथाओं में व्यक्ति के निजी जीवन की व्यथा तथा सामाजिक सद्भाव बराबर रूप से विद्यामान है। आप देख सकते हैं कि लोक की भावुकतामयी परिणति ही यहाँ की लोककथाओं में स्पष्ट रूप से विद्यमान है।

बोध प्रश्न

7. 4 के प्रश्न

क - सही उत्तर को चुनकर लिखिए

1- कुमाउनी में रीश का हिन्दी अर्थ क्या है ?

I. प्रसन्नता
II. क्रोध
III. दुख
IV. वेदना

2 - ‘ के करूँ पुतु पुरे पुरे ’ में पुतु का अर्थ है -

I. भानजा
II. पुत्री
III. बुआ
IV. पुत्र

3 - ' पिनगटिया का मरण ' नामक लोककथा का भाव है-

I. बुद्धि चातुर्य एवं व्यंग्यपरक
II. दहेज प्रथा का विरोध
III. परमात्मा से मिलन
IV. नदी पठारों के रूप

ख - निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दीजिए

1- लोककथाओं में पशु पक्षियों का वर्णन किस प्रकार हुआ है ?

2 - भगवान की माया नामक लोककथा का सारांश लिखिए।

3 - लोककथाओं में वर्णित स्थानीय तत्व को समझाइए।

7.5 कुमाउनी लोककथाओं का वर्गीकरण

कुमाऊँ में प्रचलित लोककथाओं के आधारभूत तत्व यहाँ के समाज संस्कृति तथा प्राकृतिक संसाधनों द्वारा निर्मित हैं। आप समझ सकते हैं कि इन प्राकृतिक तथा अधिप्राकृतिक क्रिया व्यापारों द्वारा ही यहाँ के जनमानस ने लोककथाओं को अपने अपने ढ़ग से गढ़ा है। कतिपय विद्वानों ने लोककथाओं के वर्गीकरण का आधार विषयगत भाव को माना है। क्योंकि यहाँ प्रचलित लोककथाएँ अलग अलग विषयों से संबंधित होते हुए समाज के जन का मानसरंजन करने में सक्षम हैं। कुमाऊँ की लोककथाओं को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है-

1- पशुपक्षी, कीड़े मकोड़े तथा अन्य जीवों पर आधारित कथाएँ।

2 - अलौकिक ईश्वरीय सत्ता से संबंधी कथाएँ।

3- धर्म अनुष्ठान एवं उपवास विषयक कथाएँ।

4- दैत्य, राक्षस, प्रेत, भूत आदि संबंधी कथाएँ।

5- राष्ट्रीय चेतना तथा बौद्धिक चेतनामूलक कथाएँ।

6 - नीति परक एवं उपदेशपूर्ण कथाएँ।

7 - मनोरंजन एवं व्यंग्यपरक कथाएँ।

8 - प्राकृतिक जीवन एवं व्यंग्यपरक कथाएँ।

9- बाल जगत की कथाएँ।

बोध प्रश्न

7.5 के बोध प्रश्न

क - निम्नलिखित में असत्य कथन छाँटिए-

1- लोककथाओं में प्रकृति के तत्वों का अभाव है।

2 - लोककथा परंपरा द्वारा विकसित हैं।

3 - उपदेशात्मकता लोककथा की विशेषता नहीं है

4 - लोककथा में बाल कथा समाविष्ट है।

5- न्योली एक लोककथा है।

ख- लघु उत्तरीय प्रश्न

1 - लोककथा का संक्षिप्त वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

2-- कुमाउनी लोककथाओं में वर्ण्य विषय की विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

7.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

कुमाउनी लोककथा के इतिहास एवं स्वरूप को समझ चुके होगे।

कुमाउनी लोककथाओं की विशेषताएँ एवं महत्त्व को उनके विषयगत आधार पर जान गए होंगे।

इतिहास काल से परंपरित लोककथाओं का परिचय प्राप्त कर चुके होंगे।

लोककथाओं को उनके वर्गीकरण के आधार पर समझ गए होंगे।

आप यह भी भलीभांति समझ गए होंगे कि रचयिताओं के अज्ञात होने पर भी 'लोककथाएँ जन जन की वाचिक परंपरा में अद्यतम जीवंत है।

7.7 पारिभाषिक शब्दावली

मनगढ़न्त	-	मन से स्वतंत्र रूप से निर्मित
गल्प	-	काल्पिनिक कथा
दन्तकथाएँ	-	मौखिक रूप से प्रचलित कथाएँ
श्रुति परंपरा	-	सुनने सुनाने की परंपरा
लोकरंजन	-	लोक का मनोरंजन
उपादान	-	घटक या तत्व
अवदान	-	योगदान

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

इकाई 7.3 के उत्तर

क - 1- लोककथा

2- वाचिक

3- संक्षिप्त एवं सुगठित

7.4 के उत्तर

क - 1- क्रोध

2 - पुत्र,

3 - बुद्धि चातुर्य एवं व्यंग्यपरक

7.5 के उत्तर

क - 1, 3, 5 असत्य कथन हैं।

7.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- पाण्डे डॉ. त्रिलोचन , कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य , पृ- 148 - 170

2- हिमालयन फोकलोर - भूमिका , पृ- 181

3- चातक ,गोविन्द,भारतीय लोकसंस्कृति का संदर्भ मध्य हिमालय , पृ -340

4- पाण्डे त्रिलोचन , कुमाऊँ का लोकसाहित्य ,पृ -199

5- जोशी, कृष्णानंद,कुमाऊँ का लोक साहित्य , पृ -35

6- भट्ट, पुष्पलता, कुमाउनी लोककथाओं में जनजीवन ,पृ - 86

7- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, भाग 16,पृ - 629

8- पोखरिया ,देवसिंह एवं तिवारी डी0 डी0 , कुमाउनी लोकसाहित्य , पृ - 80

9 - पूर्वोक्त, पृ -26 -27

10- पोखरिया , डी0एस0 , लोकसंस्कृति के विविध आयाम: मध्य हिमालय के संदर्भ में,
पृ -69-71

11- बटरोही, कुमाउनी संस्कृति ,पृ - 35-37

7.10 सहायक ग्रंथ सूची

1- धरती फूल बुरांश की, डॉ. नारायण दत्त पालीवाल

2- कुमाऊँ का लोक साहित्य , डॉ. त्रिलोचन पाण्डे।

3- कुमाउनी भाषा का उद्भव एवं विकास,शेरसिंह बिष्ट , अंकित प्रकाशन हल्द्वानी

4- कुमाउनी लोकसाहित्य, डॉ.देवसिंह पोखरिया, डॉ.डी.डी.तिवारी,राजहंस प्रेस

7.11 निबंधात्मक प्रश्न

1- कुमाउनी लोककथाओं के इतिहास एवं स्वरूप पर एक लेख लिखिए।

2- कुमाउनी लोककथाओं का परिचय देते हुए विषयगत आधार पर उनका वर्गीकरण कीजिए।

इकाई 8 कुमाउनी लोकसाहित्य : अन्य प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 कुमाउनी लोकसाहित्य की अन्य प्रवृत्तियाँ
    8.3.1 कुमाउनी मुहावरे एवं कहावतें
    8.3.2 कुमाउनी पहेलियाँ
    8.3.3 अन्य रचनाएँ
8.4 कुमाउनी प्रकीर्ण विधाओं की विशेषताएँ तथा महत्त्व
8.5 सारांश
8.6 पारिभाषिक शब्दावली
8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
8.9 सहायक ग्रंथ सूची
8.10 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

पुराकाल से मानवीय अभिव्यक्ति के दो रूप हमें प्राप्त होते रहे हैं । एक वाचिक या मौखिक परंपरा के रूप में प्रचलित है तथा दूसरी विधा लिखित अथवा परिनिष्ठित साहित्य के रूप में जानी जाती है। हमने पूर्ववर्ती इकाइयों में इन दोनों रूपों का अध्ययन किया है। कुमाउनी लोकसाहित्य की प्रकीर्ण विधाओं का अध्ययन इस इकाई के अंतर्गत किया जाएगा। कुमाऊँ के समाज में मुहावरे ,कहावते तथा पहेलियाँ आदि काल से मौखिक रूप में प्रचलित रही हैं । इनके निर्माताओं के बारे में अद्यतम कुछ नहीं कहा जा सकता । युगों से संचित ज्ञानराशि के रूप में ये प्रकीर्ण कुमाउनी विधाएँ लोकजीवन की रोचक धरोहर के रूप में विख्यात हैं।

प्रस्तुत इकाई के प्रारंभ में कुमाउनी लोकसाहित्य की अन्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए उनके स्वरूप को अभिव्यक्त किया गया है। कुमाऊँ में प्रचलित लोक कहावतों ,मुहावरों,पहेलियों आदि को पारिभाषित करते हुए उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। इकाई के उत्तरार्ध में कुमाउनी प्रकीर्ण विधाओं की विशेषताओं तथा महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। कुल मिलाकर प्रस्तुत इकाई लोकसाहित्य की विविध विधाओं का समाहार करती हुई अपने सामाजिक महत्त्व को प्रदर्शित करती है।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

कुमाउनी मुहावरों तथा कहावतों के आशय को स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे

कुमाउनी कहावतों एवं मुहावरों में निहित लोक जीवन दर्शन का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे

कुमाउनी पहेलियों तथा यहाँ के लोगों की बुद्धि चातुर्य पर प्रकाश डाल सकेंगे

प्रकीर्ण विधाओं की विशेषताओं तथा महत्त्व को समझ सकेंगे।

8.3 कुमाउनी लोकसाहित्य की अन्य प्रवृत्तियाँ

कुमाऊँ में लोकगीत , लोककथा तथा लोकगाथा के अतिरिक्त अन्य लोक विधाएँ भी प्रचलित हैं। इनमें मुहावरे, कहावतें तथा पहेलियाँ प्रमुख हैं। ये सभी विधाएँ इतिहास काल के दीर्घ प्रवाह में अपना स्थान निर्धारित करती आई हैं। मुहावरे तथा कहावतों एवं पहेलियों की रचना किस व्यक्ति द्वारा की गई ? किन परिस्थितियों में की गई,? इस सम्बन्ध में आज तक ठीक-ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य है कि ये विविध विधाएं तत्कालीन परिस्थितियों से लेकर आज तक हमारे समाज में पूरी तरह से जीवंत हैं। इन विधाओं को सूत्रकथन के रूप में जाना जाता है। लोकमानस की अभिव्यक्ति प्रायः मौखिक परंपरा द्वारा संचालित रही है। लोकजीवन से सम्बद्ध कई घटनाएं तथा विचार प्रायः मौखिक रूप में ही अभिव्यक्त होते हैं। कुमाउनी मुहावरें तथा कहावतों को सूत्रकथन के रूप में समाज में बहुत प्रसिद्धि मिली है। मानव की सभ्यता व संस्कृति के अनेक तत्वों पर आधारित इन प्रकीर्ण विधाओं में संक्षिप्तता सारगर्भितता तथा चुटीलापन है। इनकी मूल विशेषता इनकी लोकप्रियता है। इसी कारण ये कहावतें मुहावरें आदि जनमानस की जिह्वा पर जीवित रहते हैं। कहावतों को विश्व नीति साहित्य का एक प्रमुख अंग माना जाता है। संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों में कहावतों तथा मुहावरों के व्यापक प्रयोग हुए हैं।

भारतवर्ष ही नहीं, अपितु संसार के कई अन्य देशों में भी इन प्रकीर्ण विधाओं का प्रचलन अपनी अपनी भाषाओं में है। हमारे देश में मुहावरे तथा कहातवें की परंपरा वैदिक काल से चली आ रही है। कुमाउनी लोकसाहित्य के अन्तर्गत आने वाली लोक कथाएं तथा लोकगाथाएं इन कहावतों तथा पहेलियों से गूढ़ संबध रखती है। इन सूत्रात्मक व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराने वाली विधाओं द्वारा लोकानुभूति की अभिव्यक्ति सहज रूप में जाया करती है। कुमाऊँ में इन कहावतों का प्रयोग लाक्षणिक अर्थ के प्रकटीकरण के लिए किया जाता है। पहेलियां भी कुमाउनी जनमानस की लोकरंजक मनोविज्ञान से संबंधित हैं। इनमें बुद्धितत्व को मापने की अद्भुत कला है। लोकमानस की तमाम जिज्ञासाओं में निहित वातावरण तथा मनोविज्ञान का पुट इन पहेलियों

का निथार है। मनुष्य की लाक्षणिक त्वरित बुद्धि के आदान प्रदान तथा जिज्ञासा के समाधान हेतु ये विधा लम्बे समय से प्रचलित रही हैं।

कहा जा सकता है कि जीवन मूल्यों के धरातल पर बुद्धि की परख करने में तमाम प्रकीर्ण विधाएं यहां के लोकसाहित्य को समृद्ध किए हुए है। इनके समाज में निरंतर प्रचलित रहने से लोकसाहित्य की पंरपरा अक्षुण्ण रही है।

8.3.1 कुमाउनी मुहावरे एवं कहावतें

कुमाउनी समाज में आरंभिक काल से मुहावरों तथा लोकोक्तियों की अनूठी परंपरा रही है। वाचिक (मौखिक) परंपरा के रूप में मुहावरे तथा कहावतें अपने लाक्षणिक अर्थ तथा व्यंग्यार्थ की अनुभूति के लिए प्रसिद्ध है। यदि लोकसाहित्य के विवेचन को ध्यान से देखा जाए तो मुहावरे तथा कहावतें किसी भी लोक समाज दर्शन से जुड़ी होती हैं। इनमें संक्षिप्त रूप से गहन भावार्थ छिपा रहता है। व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराने वाली इन विधाओं के निर्माताओं के विषय में सटीक तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता है। इतना अवश्य है कि ये लोक के गूढ़ आख्यान तथा उक्ति चातुर्य के प्रदर्शन में सिद्धहस्त हैं। यहां हम कुमाउनी मुहावरे तथा कहावतों के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कुछ व्यावहारिक मुहावरें तथा कहावतों का अर्थ स्पष्ट करेंगें।

कुमाउनी मुहावरेः- मुहावरा शब्द की व्युत्पत्ति अरबी भाषा से मानी जाती हैं । अरबी भाषा में मुहावरे का अर्थ आपसी बातचीत, वार्ता या अभ्यास होता है। अंग्रेजी में मुहावरे को ईडियम कहा जाता है। देव सिंह पोखरिया के शब्दों में- इस दृष्टि से किसी भाषा के लिखित या मौखिक रूप में प्रचलित वे सभी वाक्यांश मुहावरों के अन्तर्गत आते हैं। जिनके द्वारा किसी साधारण अर्थ का बोध विलक्षण और प्रभावशाली ढंग से लक्षणा और व्यंजना के द्वारा प्रकट होता है।

मुहावरों का प्रयोग दीर्घकाल से समाज में होता रहा है। यह केवल हिन्दी या कुमाउनी या हिन्दी में ही नहीं ,अपितु विश्व के सभी साहित्यों में अपने ढंग से व्यवहृत है। मुहावरा एक छोटा वाक्यांश होता है। मुहावरे तथा कहावत में मूल अंतर यह है कि कहावत एक पूर्ण कथन या वाक्य होता है। तथा मुहावरा वाक्यांश। कहावत में कथात्मकता होती है। आप जान गए होंगे कि कथा के भाव को आत्मसात करने वाली विधा लोककथा कही जाती है। कहावत कथा के आख्यान को समेटे रखता है ,जबकि मुहावरा लाक्षणिक अर्थ का बोध कराकर समाज में अर्थ प्रतीति को बढ़ाता है।

कुमाऊँ क्षेत्र में प्रचलित मुहावरों की संख्या लगभग चार हजार से अधिक होगी। ये संख्या यहां के ग्रामीणों की बोलचाल की भाषा में अधिक प्रभावी है। आपसी वार्तालाप के लिए कुमाउनी में विशिष्ट मुहावरे का प्रचलन है। जैसे- 'क्वीड़ करण' का अर्थ होता है महिलाओं की गपशप ,किन्तु सामान्य गपशप के लिए 'फसक मारण' मुहावरा प्रचलन में है।

कुमाउनी मुहावरे विविध विषयों पर आधारित हैं। संक्षेप में मुहावरों का वर्गीकरण यहां प्रस्तुत किया जाता है-

(1) सामाजिक जीवन पर आधारित मुहावरे

(2) व्यक्तिगत शैली पर आधारित मुहावरे

(3) व्यवसाय संबंधी मुहावरे

(4) जाति विषयक मुहावरे

(5) प्राकृतिक उपादानों पर आधारित मुहावरे

(6) भाग्य तथा जीवनदर्शन संबंधी मुहावरे

(7) तंत्र-मंत्रतथा लोक विश्वास संबंधी मुहावरे

उपर्युक्त के आधार पर हम देखते हैं कि मनुष्य के शरीर के अंगों पर भी अधिकांश मुहावरों का प्रचलन समाज में होता आया है।

कुछ कुमाउनी मुहावरों को उनके हिन्दी अर्थ के साथ यहां प्रस्तुत किया जाता है-

(1) ख्वर कन्यूण - सिर खुजलाना

(2) बाग मारि बगम्बर में भैटण - बाघ मारकर बाघ की खाल पर बैठना।

(3) कन्यै कन्यै कोढ़ करण - खुजला खुजला कर कोढ़ करना

(4) स्यैणि मैंसोंक दिशाण अलग करण - पति पत्नी का बिस्तर अलग करना।

(5) आंख मारण - आंख मारना (इशारा करना)

(6) लकीरक फकीर हुण - लकीर का फकीर होना ।

(7) गाड़ बगूण - नदी में बहा देना।

(8) घुन टुटण - घुटने टूटना

(9) घुन च्यूनि एक लगूण - घुटना तथा मुंह साथ चिपकाना

(10) गल्दारी करण - बिचौलिया पन करना

(8 गोरख्योल हुण - गोरखों की भांति होना

(12) बिख झाणण - विष झाड़ना

(13) कांसक टुपर हुण - कांस की डलिया जैसा होना

(14) पातल मुख पोछण - पत्ते से मुंह पोंछना।

(15) जागर लगूण - जागर लगाना।

कुमाउनी कहावतें -

कहावत का अर्थ- कहावत शब्द की उत्पत्ति 'कह' धातु से हुई है। इसमें 'वत' प्रत्यय लगा है। अंग्रेजी में कहावत को च्तवअमतइ (प्रो-वर्ब) कहा जाता है। संस्कृत साहित्य में कहात के लिए 'आभाणक' शब्द का प्रयोग हुआ है। हिन्दी भाषा विज्ञान के ज्ञाता डॉ. के.डी.रूवाली के अनुसार 'कहावत का संबंध 'कहना' क्रिया से है। हर प्रकार का कथन कहावत की कोटि में नहीं आता। विशेष कथन को ही कहावत कहा जा सकता है। डॉ. सत्येन्द्र का अभिमत है कि कहावत लोकक्षेत्र की अपूर्व वस्तु है।

डॉ. त्रिलोचन पाण्डे ने कहावतों के संबंध में लिखा है, 'कहावतों ने इतिहास के दीर्घकालीन प्रवाह में भी अपना स्वभाव नहीं बदला है। कहावतों में राष्ट्रीय जाति धर्म आदि के समाजबद्ध तत्व पाए जाते हैं। सामाजिक जीवन की विशिष्ट परिस्थितियाँ ही कहावतों को जन्म देती हैं। जब व्यक्ति किसी परिस्थितियों या दृश्य को देखता है तो उसके मन में सहज ही कुछ विचार उत्पन्न होते हैं। ये विचार धीरे-धीरे स्थायी भाव के रूप में किसी सत्य की व्यंजना करने वाली उक्तियों के रूप में विकसित हो जाती हैं।' कहावतों के लिए लोकोक्ति शब्द भी प्रचलित है। उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र का अधिकांश भूभाग पर्वतीय है। यहां की भौगोलिक परिस्थितियां बड़ी विषम हैं। कुमाउनी समाज में कहावतों का प्रचलन आरंभिक काल से हो रहा है। इन कहावतो के रचयिता सर्वथा अज्ञात हैं फिर भी जनजन के मुख से इन कहावतों का प्रयोग होता रहा है । किस देश काल परिस्थिति में कौन सी कहावत प्रयुक्त होगी, यह स्वचालित रूप में जनमानस की बुद्धि के अनुरूप प्रवाहित होती रहती है। इन कहावतों में लोक विशेष की प्रक्रिया, इतिहास तथा स्थान विशेष की कथात्मकता निहित होती है।

कुमाउनी कहावतों में हिन्दी तथा अन्य हिन्दीतर भाषाओं की कहावतों के पर्याप्त लक्षण पाए जाते हैं। कहावतों को विश्वनीति साहित्य का अभिन्न अंग माना जाता है। क्योंकि वैश्विक स्तर पर इनमें लोकसत्य के उद्घाटन की विशेष क्षमता होती है, कुमाउनी लोकजीवन के अनुरूप हम देखते है कि लोक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों एवं मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार ने कहावतों को जन्म दिया है। इन लोक कहावतों में आदिम जातीय परिवारों में बोली जाने वाली लोकोक्तियों का मिश्रण है। स्थानीयता तथा सूत्रबद्धता कुमाउनी कहावतों का मूल लक्षण है।

पं.गंगादत्त उप्रेती ने कुमाउनी कहावतों का अंग्रेजी तथा हिन्दी भाषा में अर्थ स्पष्ट किया है। विषय की दृष्टि से कुमाउनी कहावतों के वर्गीकरण को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है-

(1) सामाजिक कहावतें

(2) ऐतिहासिक कहावतें

(3) धार्मिक कहावतें

(4) नीति तथा उपदेशात्मक कहावतें

(5) राजनीति संबंधी कहावतें

(6) स्थान विशेष से संबंधित कहावतें

(7) जाति विषयक कहावतें

(8) हास्य व्यंग्यपूर्ण कहावतें

(9) कृषि-वर्षा संबंधी कहावतें

(10) प्रकीर्ण कहावतें

विविध विषयाधारित कहावतों में कुमाउनी समाज की संस्कृति तथा भाषा के मूल लक्षणों एवं विशेषताओं का पता आसानी से लगाया जा सकता है।

यहां आप कुछ कुमाउनी कहावतों तथा उनके हिन्दी अर्थ को समझ सकेंगे-

(1) मुसकि ऐ रै गाउ गाउ बिराउक है री खेल - चूहे की मुसीबत आई है, बिल्ली के लिए खेल जैसा हो रहा है।

(2) जो गौं जाण नै, वीक बाट के पुछण - जिस गांव में जाना नहीं, उसका पता पूछने (रास्ता मालूम करने) से क्या लाभ।

(3) भैंसक सींग भैंस कैं भारि नि हुन - भैंस का सींग भैंस को भारी नहीं लगता अर्थात अपनी संतान को कोई भी व्यक्ति बोझ नहीं समझता।

(4) आपण सुन ख्वट परखणि कै दोष दी - अपना सोना खोटा परखने वाले को दोष।

(5) लुवक उजणण आय फाव बड़ाय, मैंसक उजड़ण आय ग्वाव बड़ाय - लोहे का उजड़ना आया तो फाल बनाया आदमी का उजड़ना आया तो उसे ग्वाला बनाया।

(6) दुसरक ख्वर पै ख्वर घोसणल आपण ख्वर चुपड़ नि हुन - दूसरे के सिर पर अपना सिर घिसने से सिर चुपड़ा नहीं हो जाता।

(7) ढको द्वार, हिटो हरिद्वार - द्वार ढको ,चलो हरिद्वार

(8) द्याप्त देखण जागस्यर म्यल देखण बागस्यर - देवता देखने हो तो जागेश्वर जाइए, मेला देखना हो तो बागेश्वर जाइए।

(9) जैक नौव नै वीक फौव - जिसकी नली (कली) नहीं उसका फल

(10) मन करूं गाणी माणी करम करूँ निखाणी- मन तो कितने ही सपने बुनता है ,पर कर्म उसे बिगाड़ देता है।

(11) जॉ कुकड़ नि हुन वॉ के रात नि ब्यानी- जहां मुर्गा नहीं बोलता हो, क्या वहां रात्रि व्यतीत नहीं होती।

(12) बागक अनारि बिराउ- बाघ के रूप में बिल्ली

(13) नानतिनाक जाड़ ढुग. में- बच्चों का जाड़ा पत्थर में

(14) कॉ राजैकि राणि कॉ भगोतियकि काणि- कहां राजा की रानी कहां भगौतिए की कानी स्त्री।

(15) पूरबिक बादोवक न द्यो न पाणि- पूरब के बादल से न वर्षा न पानी।

8.3.2 कुमाउनी पहेलियॉ

प्रकीर्ण विधाओं के अन्तर्गत कुमाउनी पहेलिया ने भी लोकसाहित्य में अपना एक अलग स्थान बनाया है। कुमाउनी में मुहावरे तथा कहावतों की भांति पहेलियों का प्रचलन भी काफी लम्बे समय से होता रहा हैं। अधिकांश पहेलियां घरेलू कामकाज की वस्तुओं तथा भोजन में काम आने वाली पदार्थों पर आधारित हैं। मानव तथा नियति सम्मत तत्वों पर भी अनेक पहेलियों का निर्माण हुआ है। कुछ कुमाउनी पहेलियां (कुमाऊँ में जिन्हें आ्ण कहते है) यहां प्रस्तुत हैं-

(1) थाई में डबल गिण नि सक चपकन सिकड़ टोड नि सक - थाली में पैसें गिन न सके मुलायम छड़ तोड़ न सके।

उत्तर- आकाश के तारे व सांप

(2) सफेद घ्वड़ पाणि पिहूँ जाणौ लाल घ्वड़ पाणि पि बेर ऊणौ - सफेद घोड़ा पानी पीने जा रहा है लाल घोड़ा पानी पीकर आ रहा है- उत्तर - पूड़ी तलने से पूर्व तथा पश्चात

(3) ठेकि मैं ठेकि बीचम भै गो पिरमू नेगि-बर्तन पर बर्तन बीच में बैठा पिरमू नेगी - उत्तर - गन्ना

(4) लाल लाल बटु भितर पितावक डबल - लाल लाल बुटआ भीतर पीतल के सिक्के उत्तर (लाल मिर्च)

(5) भल मैंसकि चेली छै कलेजा मजि बाव - अच्छे आदमी की लड़की बताते हहैं कलेजे में है बाल –उत्तर- आम

(6) काइ नथुली सुकीली बिन्दी -काली नथ सफेद बिन्दी - उत्तर- तवा और रोटी

(7) तु हिट मी ऊनूं - तू चल मैं आता हूँ

उत्तर सुई तागा

(9) मोटि मोटि कपड़ा हजार - मोटा मोटा कपड़े हजार उत्तर प्याज

8.3.3 अन्य रचनाएं

कुमाउनी लोकसाहित्य की प्रवृत्तियों में स्फुट रचनाओं का भी बड़ा महत्त्व है। लोकजीवन में वर्षो से चली आ रही मौखिक परंपरा में इन रचनाओं को जनमानस ने अपनी जिह्वा पर जीवंत किया है। इन रचनाओं में बालपन की हंसी ठिठोली, गीत तथा बालखेल गीत निहित हैं। बच्चों द्वारा झुंड बनाकर खेले जाने वाले खेलों में कुमाउंनी गीतों को स्थान मिला है। ये गीत बच्चों द्वारा ही खेल में गाए जाते हैं तथा पीढ़ी दर पीढ़ी बच्चों को ये गीत हस्तांतरित होते रहते हैं।

कुमाऊँ में तंत्र-मंत्र का प्रचलन बहुत अधिक हैं। यहां निवास करने वाली आदिवासी जनजातियों में तंत्र-मंत्र का चलन बहुत पुराना है। सभ्य समाज के लोग भी झाड़ फूंक तथा तंत्र-मंत्र में बहुत आस्था रखते हैं। मनुष्य तथा जानवरों को होने वाली व्याधियों के निवारण के लिए झाड़-फूंक तथा मंत्रों का सहारा लिया जाता है। पीलिया रोग होने पर उसे झाड़ने की परंपरा है। गाय भैंसों को घास से विष लगने पर उन्हें झाड़ फूंक कर इलाज करने की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही हैं। इसके अतिरिक्त हास परिहास के लिए या वातावरण को मनोरंजक बनाने के लिए तुकबन्दी करने की परंपरा स्पष्ट दिखाई देती है। ये तुकबन्दियां पारिवारिक सामाजिक नातेदारी की स्थिति का निरूपण बड़े ही हास्य व्यंग्यपूर्ण ढंग से करती है। लोकनाट्य के अन्तर्गत स्वांग करना, प्रहसन करना, रामलीला पांडवलीला, राजा हरिश्चन्द्र का नाटक, रामी बौराणी की कथा पर आधारित नाट्य आदि सम्मिलित हैं। यह लोकमानस की भावभूमि पर स्थानीय परंपरा का उल्लेख करती हैं।

बोध प्रश्न

8.3 क- सही विकल्प का चयन कीजिए

1- छाति खोलण (छाती खोलना) है-

I. मुहावरा
II. कहावत
III. लोकनाट्य
IV. तुकबन्दी

2- खसियकि रीश, भैंसकि तीस (क्षत्रिय का क्रोध , भैंस की प्यास) क्या है-

I. लोकगीत
II. लोककथा
III. कहावत
IV. मुहावरा

3. पांडव लीला किस विधा के अन्तर्गत आती है?

I. लोकनृत्य
II. लोकनाट्य
III. मुहावरा
IV. कहावत

4. कुमाउनी लोकसाहित्य की कहावत विधा में पाया जाता है-

I. गीतितत्व
II. नाटक के तत्व
III. कथा तत्व
IV. मुहावरा

(ख) निम्नलिखित लघुउत्तरीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए-

(1) कहावत तथा मुहावरे में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

(2) कुमाउनी पहेलियों के चार उदाहरण देते हुए उनका हिन्दी अर्थ तथा उत्तर लिखिए।

8.4 कुमाउनी प्रकीर्ण विधाओं की विशेषताएँ तथा महत्त्व

कुमाउनी प्रकीर्ण विधाएँ लोकमानस के उर्वर भावभूमि के प्रदर्श हैं। आप समझ गए होंगे कि वाचिक परंपरा से ये विधाएं विकसित होकर परिनिष्ठित साहित्य में भी धीरे-धीरे अवतरित होती रही हैं। इन स्फुट विधाओं में कुमाऊँ का लोक साहित्य एवं संस्कृति का निरूपण करने में भी अग्रणी रही हैं। इनकी विशेषताओं एवं महत्त्व को संक्षेप में यहां प्रस्तुत किया जाता है-

कुमाउनी प्रकीर्ण विधाओं की विशेषताएं

(1) कुमाउनी मुहावरे तथा कहावतों में लाक्षणिक अर्थ की प्रधानता होती है। ये प्रकीर्ण विधाएं अपने साधारण अर्थ को छोड़कर किसी विशेष अर्थ की प्रतीति कराते हैं।

(2) कुमाउनी प्रहेलिकाओं, तुकबंदी ,मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ व्यगं्यार्थ का बोध कराती हैं। व्यगं्य के माध्यम से समाज की दशा व दिशा का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता हैं।

(3) वाक् चातुर्य कहावतों तथा तुकबन्दी का प्रमुख लक्षण है। कथन की गंभीरता के लिए मुहावरे एवं कहावते युग युगों से प्रसिद्ध हैं।

(4) कुमाउनी मुहावरे , कहावतों, पहेलियों तथा तुकबन्दी एवं बालगीतों में संक्षिप्तता पायी जाती है। साधापणतया कहावते एवं मुहावरों को सूक्ति या सूक्तिपरक संक्षिप्त कथन के रूप में देखा जाता हैं।

(5) कुमाउनी प्रकीर्ण विधाओं में सजीवता पायी जाती है। लोकसत्यानुभूति इन प्रकीर्ण विधाओं की प्रमुख पहचान है।

(6) कुमाउनी कहावतों सहित अन्य प्रकीर्ण स्फुट विधाओं के रचयिता सर्वथा अज्ञात हैं। ये स्फुट विधाएँ गद्य एवं पद्य साहित्य के रूप में संचरित रहे है।

महत्त्व - कुमाउनी साहित्य के विविध रूपों में परिनिष्ठित साहित्य द्वारा यहाँ के लोक सम्मत आख्यान तो समय समय पर प्रकट होते रहते हैं, किन्तु एक मौखिक परंपरा के रूप में वर्षों से चली आ रही कहावत,मुहावरा ,पहेलियाँ लोकनाट्य आदि विधाओं का कुमाउनी लोकसाहित्य के क्षेत्र में अलग महत्त्व है। वर्तमान में कुमाऊँ क्षेत्र के बुजुर्ग स्त्री पुरूषों के मुख से इन प्रचीन कहावतों लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रचलन होता रहा है। इससे पता चलता है कि वर्तमान में भी साहित्य की मौलिक विधा तथा उसके यथार्थ को कुमाऊँ के जन बहुत महत्त्व प्रदान करते हैं। प्रतिवर्ष नवरात्र में आयोजित होने वाली रामलीलाओं में लोकनाट्य परंपरा का कुशल निर्वहन होता रहा है। इन लोकनाट्य में कृष्ण लीला , पांडव लीला, सत्य हरीशचन्द्र नाटक ,रामी बौराणी सहित कई लोक सम्मत गाथाओं को मंचित कर प्राचीन गरिमामय चरित्रों का प्रस्तुतीकरण किया जाता हैं। जहाँ तक मुहावरे तथा कहावतों का प्रश्न है इनमें अपने लाक्षणिक अर्थ के साथ गागर में सागर भरने की प्रवृति मिलती है। साधारण शब्द देकर विषय गाम्भीर्य का परिचय हमें इनके द्वारा आसानी से प्राप्त होता है। व्यगं्यार्थ मूलक स्फुट विधाओं के द्वारा यहाँ की लोक मनोवैज्ञानिक शैली का पता लगाया जा सकता है। आदिम समाज शिक्षित नहीं होते हुए भी कितना विवकेशील था। उसने अपनी प्रतिभा की सहजात वृत्ति से कितनी ही लोक विधाओं को विकसित किया । इन सभी बातों पर सम्यक रूप से विचार करने के उपरांत कहा जा सकता है कि संसार की चाहे कोई भी विधा या संस्कृति क्यों न रही हो, उसका समाज के लिए मानस

निर्माण का महत्त्व सदा रहा है। ये स्फुट गद्य विधाएँ भी हमारे कुमाउनी समाज को नैतिकता , मानवता, तथा सद्भाव का पाठ पढ़ाने में समर्थ हैं। एक सामाजिक लोक दर्पण के रूप में इन रचनाओं का महत्त्व सदा बना रहेगा।

बोध प्रश्न

8.4 के बोघ प्रश्न

लघुउत्तरीय प्रश्न

(1) कुमाऊँ के प्रचलित किन्ही चार स्फुट विधाओं के नाम लिखिए।

(2) कुमाउनी प्रकीर्ण (स्फुट) विधाओं की चार विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

(3) कुमाउनी कहावतों एवं मुहावरों का सामाजिक महत्त्व समझाइए।

8.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप -

(1) कुमाउनी लोकसाहित्य की अन्य प्रवृत्तियों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।

(2) कुमाउनी मुहावरे तथा कहावतों के आशय को समझ चुके होंगे।

(3) कुमाऊँ में प्रचलित पहेलियाँ तथा उनके उत्तरों को जान गए होंगे।

(4) कुमाउनी स्फुट गद्य विधाओं की विशेषताओं तथा महत्त्व को समझ गए होंगे।

8.6 शब्दावली

लोकोक्ति	-	लोक प्रचलित बात या कथन
प्रकीर्ण	-	विविध
स्फुट	-	विविध ,अन्य
लोकनाट्य	-	लोक नाटक
तुकबन्दी	-	स्वतः पदों के मिलान की प्रवृत्ति
व्यगं्यार्थ	-	व्यगं्य का अर्थ

सहज - स्वाभाविक

गूढ़ आख्यान - गहन भाव या रहस्यमय विचारधारा

प्रतीति - बोध

8. 7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.3 के उत्तर

क - (1) मुहावरा

(2) कहावत

(3) लोकनाट्य

(4) कथातत्व

8.4 के उत्तर

(1) मुहावरा

(2) कहावत

(3) तुकबन्दी

(4) पहेलियाँ

8.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

(1) पाण्डे,त्रिलोचन, कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य , पृ -328-343

(2) पोखरिया ,डी.एस. , लोकसंस्कृति के विविध आयाम, पृ - 76- 78

(3) दुबे, हेमचन्द्र,कुमाउनी कहावतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन (अप्रकाशित शोध प्रबंध) पृ- 36 -48

8.9 सहायक ग्रंथ सूची

(1) जनपदीय भाषा साहित्य ,डॉ. शेरसिंह विष्ट तथा डॉ. सुरेन्द्र जोशी, अंकित प्रकाशन हल्द्वानी

(2) कुमाउनी भाषा और साहित्य का उद्भव एवं विकास ,प्रो. शेर सिंह बिष्ट ,अंकित प्रकाशन हल्द्वानी (नैनीताल) 2006

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

(1) कुमाउनी लोकसाहित्य के क्षेत्र में कहावतों तथा मुहावरों के योगदान की विस्तृत चर्चा कीजिए।

(2) कुमाउनी स्फुट रचनाओं पर एक सारगर्भित लेख लिखिए।

इकाई 9 गढ़वाली लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 गढ़वाली लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप
9.3.1 गढ़वाली और गढ़वाली लोक मानस
9.3.2 गढ़वाली लोक साहित्य के संरक्षक
9.3.3 गढ़वाली लोक साहित्य का क्रमिक विकास
9.3.4 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्गीकरण
9.3.5 गढ़वाली लोक साहित्य की भाषा
9.3.6 गढ़वाली का काव्यात्मक (गेय) लोक साहित्य
9.3.7 गढ़वाली का नाट्य साहित्य
9.4 लोकवार्ता के रूप में प्राप्त साहित्य
9.5 सारांश
9.6 अभ्यास प्रश्न
9.7 पारिभाषिक शब्दावली
9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
9.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

लोक का अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है उसके प्रभामंडल की परिसीमा में उसकी संस्कृति, कलाएं , विश्वास, भाषा और इतिहास-धर्म सब कुछ आ जाता है। इन्हें लोक से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। डा. गोविन्द चातक के अनुसार, 'लोक मानस की उद्भावना में इसके साथ ही सामूहिक जीवन-पद्धति का बड़ा हाथ होता है।' उसमें यथार्थ और कल्पना में भेद करने की प्रवृत्ति पर बल नहीं होता, इसलिए जड़-चेतन की समान अवधारणा पर उसका विश्वास बना रहता है। लोक साहित्य में यही लोक मानस बोलता है। मोहनलाल बाबुलकर 'गढ़वाली

लोक साहित्य की प्रस्तावना' पुस्तक की भूमिका में इस बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि, "साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हँसती है और खेलती है। इन सबको लोक साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। वे लोक साहित्य की प्राचीनता के विषय में उल्लेख करते हैं कि, 'ऋग्वेद में अनेक लोक कथाएं उपलब्ध हैं। शतपथ ब्राहमण और एतरेय ब्राहमण में ऐसी ही गाथाएं प्राप्त होती हैं। भारतीय नाट्य शास्त्र ने भी लोक प्रचलित नाटकों को अपना विवेच्य विषय बनाया है। गुणाढ्य की वृहत्कथा , सोम देव के 'कथासरित सागर' में लोक मानस ही वर्णित है। मध्य युगीन निजंधरी कथाओं में भी मूलरूप से लोक कथाएं ही हैं'। लोकगीतों, लोकनाट्यों, लोककथाओं,लोक गाथाओं यहाँ तक कि लोक भाषाओं में भी लोक,रसा-बसा रहता है। लोक का प्रदेय ही लोक साहित्य है। यही करण है कि लोक को और उसके साहित्य को अलग करके नहीं देखा जा सकता है। निष्कर्षतः लोक का साहित्य ही लोक साहित्य है।

लोक को जानने - पहचानने के लिए साहित्य के इतिहास को जानना भी जरूरी है! क्योंकि लोक जैसे -जैसे आगे बढ़ता है, उसकी संस्कृति विकसित होती चली जाती है और उसका इतिहास भी संस्कृति का अनुगमन करता हुआ आगे बढ़ता रहता है। इस तरह से भाषा का संस्कृति का और लोक व्यवहार का रूप सदैव बदलता रहता है वे निरंतर परिष्कार पाते रहते हैं ।लोक के इन घटकों के साथ-साथ लोक साहित्य भी अनुपद चलता रहता है। और उसके साथ-साथ साहित्य का इतिहास भी सृजित होता रहता है। अतएव 'लोक' को जानने के लिए उसकी परंपराएं, रीतिरिवाज, जातीय विश्वास मिथक, आदि को जानना जरूरी होता है। बिना इन्हें जानें आप लोक को नहीं समझ पाएंगें। लोक को समझनें में लोक साहित्य पथ प्रदर्शक का कार्य करता है। अतः लोक साहित्य के स्वरूप को जानना भी हमारे लिए परम आवश्यक हो जाता है। लोक साहित्य के स्वरूप के अन्तर्गत, लोक साहित्य की भाषा, उसकी प्रकृति, सभी गद्य-पद्य नाटक आदि विधाएं ,उसकी सृजन प्रक्रिया भेद-उपभेद, और सौन्दर्य तत्वों का गम्भीर अध्ययन आवश्यक होता है। अतएव लोक साहित्य के स्वरूप के साथ-साथ उसके क्रमिक वृद्धिंगत इतिहास पर भी आपकी दृष्टि रहनी चाहिए।

9.2 उद्देश्य

'गढ़वाली लोक साहित्य' अन्य भारतीय प्रदेशों के लोक साहित्य की तरह रोचक और लोक मानस का प्रतिनिधित्व करता है। अतएवं 'गढ़वाली लोक मानस' के लोक साहित्य के क्रमिक इतिहास को समझना ही इस इकाई लेखन का मुख्य उद्देश्य है। इस का अध्ययन करने से आप गढ़वाली लोक मानस के स्वभाव उनकी प्रवृत्तियों, उनके लोक साहित्य में लोक विश्वासों, मिथकों तथा उनके लोक साहित्य की बनावट व बुनावट के बारे में जान सकेंगें तथा साथ ही आप गढ़वाली लोक साहित्य के उद्भव एवं विकास के क्रमबद्ध इतिहास को भी जान सकेंगे.

9.3 गढ़वाली लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप

9.3.1 गढ़वाल और गढ़वाली लोक मानस

हरिकृष्ण रतूड़ी के अनुसार, ‘‘बावन गढ़ों के कारण इस प्रदेश का नाम गढ़वाल पड़ा है। लगभग 1500 ई. में राजा अजयपाल ने इन बावन गढ़ों को जीतकर सबकों अपने राज्य में मिला दिया । तब से इस पूरे पर्वतीय प्रदेश को जिसमें वे बावनगढ़ थे गढ़वाल कहा जाने लगा ।, एच0जी बाल्टन ने अपनी पुस्तक ’ब्रिटिस गढ़वाल गजेटियर’ में बहुत सारे गढ़ों वाला अंचल (गढ़वाल) प्रकारान्तर से कहा है । पातीराम ने अपनी किताब ’गढ़वाल एन्सेन्ट एंड मार्डन’ में ’गढ़पाल से गढ़वाल’ नाम पड़ा स्वीकार किया है । डा. हरिदत्त भट्ट शैलेश’ ने अपनी पुस्तक गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य में लिखा है, ‘मेरी मान्यता है कि गढ़वाल शब्द गडवाल से निकला है । ’गड् और वाड’ ये दोनों शब्द वैदिक संस्कृत के हैं । और इनका गढ़वाली भाषा में प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है’ ।

‘गाड़’ बड़ी नदी और ‘गड़’ छोटी नदियों जैसे -दुण्गड, लोधगड आदि। यहाँ अनेक गड़ छोटी नदियाँ हैं । इसलिए गड़वाल छोटी-छोटी असंख्य नदियों का प्रदेश गढ़वाल हुआ । वाल-वाला । वाल शब्द गढ़वाली में बहुत प्रयुक्त होता है । जैसे -सेमवाल, डंगवाल आदि ।

कविवर भूषण ने भी अपनी एक कविता में इस भूभाग के लिए ’गडवाल’ शब्द का प्रयोग निम्न पद्य में किया है-

‘‘सुयस ते भलो मुख भूषण भनैगी वाटि

गडवाल राज्य पर राज जो बखानगो ।’’

यहां के मूल निवासी कौन थे, यह कहना कठिन है । प्रागैतिहासिक काल में यहां कक्ष-किन्नर, गन्धर्व, नाग, किरात, कोल, तंगण,कुलिन्द, खस आदि जातियाँ निवास करती थी । इस के मध्य भाग में कोल, भील और राजस्थान, गुजरात,महाराष्ट्र और बंगाल से यहां बसी हुई जातियॉ निवास करती है। जिन्हें अब गढ़वाली कहते हैं । वर्तमान में उत्तर भारत के अनेक नगरों में रहने वाले लोग यहाँ बसने के लिए ललायित रहने लगे हैं । यह यहाँ की संस्कृति ,प्राकृतिक छटा और शान्त वातावरण का प्रभाव माना जा सकता है । गढ़वाली लोक मानस, भोला-भाला, आस्तिक,प्रकृति प्रेमी, शान्त और परम्परावादी है । वह लोक अनुश्रुतियों, रूढ़ियों,देवीदेवताओं की पूजन की विविध परम्पराओं और वीर योद्धाओं, प्रेमियों, धार्मिकों के चरित्र से प्रभावित रहता है । अनेक वाह्य समागतों के गढ़वाल में बस जाने पर अब गढ़वाली जनमानस उनकी संस्कृति को भी अपनाने लग गया है । विवाह के अवसरों पर ‘पंजाबी भाँगडा’ गुजराती ‘गरबा’ राजस्थानी नृत्यगान भी लाकप्रिय होते जा रहे हैं । बाहर से आए वाद्य वादक, बैंड की धुन में गढ़वाली गीतों को ऐसे गाते और बजाते हैं जैसे वे वर्षो से यहीं बसे हों । गढ़वाली जनमानस ने

अपनी परम्पराओं के साथ, देव पूजन आदि में और त्योहारों की रीति नीतियों में भी भारी परिवर्तन करके अपने मिलनशील स्वभाव और घुलनशील संस्कृति का परिचय दे दिया है। गढ़वाली लोक मानस की भाषा का नाम भी इस प्रदेश के नाम के अनुसार 'गढ़वाली' ही है। गढ़वाल की भाषा गढ़वाली। गढ़वाली में वैदिक संस्कृत, और शौरसेनी प्राकृत के शब्द अधिक संख्या में मिलते हैं। द्रविड़ भाषा के शब्द और उर्दू, अंग्रेजी, हिन्दी तथा राजस्थानी, गुजराती,महाराष्ट्री भाषाओं के अनेक शब्दों को गढ़वाली जनमानस ने अपनी भाषा में स्थान दिया है। अब वे इस भाषा में ऐसे घुल-मिल गए हैं कि उनका स्वतंत्र अस्तित्व सरलता से पता नहीं लगता है। भाषा के साथ यहाँ का साहित्य भी बंगाली, राजस्थानी,और गुजराती साहित्य से आंशिक प्रभावित जान पड़ता है।

यहाँ की वीरगाथाएं, लोककथांएं और पवाड़ों का स्वर सरगम बहुत कुछ राजस्थानी से प्रभावित लगता है। वीरता, प्रेम, प्रतिज्ञा पालन, धर्म रक्षा, दैवीशक्तियों पर विश्वास, जादू-टोना, नृत्यगान में अभिरूचि आदि इसके प्रमाण हैं। प्रकृतिप्रेमी गढ़वाली लोक मानस की गंगा जी और चारोंधामों (बद्रीनाथ, केदार नाथ, गंगोत्री और यमनोत्री) में अगाध श्रद्धा है। देश की सीमा पर आज भी यहाँ के वीर सैनिक तैनात हैं जो कि देशभक्ति, और कर्तव्यपरायणता के प्रतीक बनकर गढ़वाली लोक मानस की एक दिव्य छवि, देश और विश्व के आगे रखते हैं। तथापि शराबखोरी,अकर्मण्यता आदि दुर्गुणों से भी यहां का लोकमानस मुक्त नहीं माना जा सकता है.

9.3.2 गढ़वाली लोक साहित्य के संरक्षक

गढ़वाली का लोक साहित्य गद्यात्मक और पद्यात्मक दो रूपों में प्राप्त होता है। बहुत-सा अलिखित साहित्य श्रुति परम्परा से बाजगियों, व पंडिंतों द्वारा रटा-रटाया होने से सुरक्षित है। यहाँ के लोक ने वीरों की गाथाओं को परम्परा से गा-गाकर सुरक्षित रखा, नानी ओर दादियों ने लोक कथओं,बालगीतों (लोरियों) और ऐणा-मेणा (पहेली और लोकोक्तियों) को बच्चों को सुना-सुनाकर जीवित रखा है। साथ ही जागरियों, और पवाडा गायकों ने देव गाथाओं तथा श्रंगार वीरता से भरे, गीतों तथा वार्ताओं व कथासूत्रों को सुरक्षित रखकर अपने कर्तव्य का पालन किया है। गढ़वाली के लिखित साहित्य को खोजने का काम अंग्रेज विद्वानों तथा अधिकारियों ने सर्व प्रथम किया, मध्य पहाड़ी और गढ़वाली बोली लोक साहित्य के संकलन में एटकिन्सन के साथ उनके गढ़वाली विद्वानों का अवदान सराहनीय रहा है। जिनमें स्व. तारादत्त गैरोला' पादरी मिस्टर ओकले, भजन सिंह, सिंह, डा. गोविन्द चातक आदि का नाम अग्रगण्य कहा जा सकता है। डा. गोविन्द चातक ने जहॉ लोक गीत- और लोक कथाओं तथा लोक गाथाओं का संकलन किया, वहीं मोहनलाल बाबुलकर ने गढ़वाली लोक साहित्य का विवेचन करके उसके स्वरूप तथा विकास को दर्शाया है। इन्होंने ही पहली बार लोक साहित्य का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया। चातक जी ने गढ़वाली लोक साहित्य को एक साथ अनेक पुस्तकों में हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत किया है। डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' ने गढ़वाली के भाषा तत्व पर अनुसंधानपरक ग्रंथ लिखे (गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य) उनकी उल्लेखनीय पुस्तक है। सुप्रसिद्ध

लेखक भजन सिंह,सिंह, जनार्दन काला, अबोध बंधु। बहुगुणा, डा. महावीर प्रसार लखेड़ा, कन्हैयालाल डंडरियाल, डा. प्रयाग दत्त जोशी, डा. जगदम्बाप्रसाद कोटनाला ने गढ़वाली लोक साहित्य के लेखन एवं संवर्धन में उल्लेखनीय कार्य किया है।

9.3.3 गढ़वाली लोक साहित्य का क्रमिक विकास

मोहनलाल बाबुलकर ने अपनी पुस्तक 'गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना' में गढ़वाली लोक भाषा के लिखित विकास के पाँच चरण माने हैं ।(1) आरम्भिक युग (2) गढ़वाली युग (3) सिंह युग (4)पांथरी युग (5)आधुनिक युग। वे लिखते हैं, कि गढ़वाली भाषा में लिखित परंपरा सन् 1800 से प्रारम्भ हुई प्रतीत होती है। इस संदर्भ में भी विद्वानों के अनेक मत हैं। कई विद्वान गढ़वाली भाषा की लिखित परम्परा सन् 1850, तो कोई 1852, तथा कोई 1900 ई. को आधुनिक युग,अथवा आरम्भिक युग मानते हैं। प्रारम्भ की रचनाएं हरिकृष्ण दौर्गादत्ति, हर्षपुरी लीलानन्द कोटनाला की हैं। सन् 1892 में गढ़वाली भाषा में मिशिनरियों ने बाईबिल प्रकाशित की, और गोविन्द प्रसाद घिल्डियाल की गढ़वाली हितोपदेश छापी । प्रारम्भिक युग की दो कवितायें , चेतावनी,और 'बुरो संग'(हर्षपुरी) जी की है। गढ़वाली युग गढ़वाली पत्र के प्रकाशन से प्रारम्भ होता है। 1905 में गढ़वाली के अंक में प्रकाशित 'उठा गढ़वालियों' सत्यशरण रतूड़ी की रचना थी, जिसने गढ़वाली मानस को झकझोर दिया था। चन्द्रमोहन रतूड़ी, आत्माराम गैरोला, तारादत्त गैरौला, गिरिजादत्त नैथानी, विश्वम्भर दत्त चन्दोला बल्देव प्रसाद शर्मा 'दीन' की रामी तारादत्त गैरोला की सदेई और योगेन्द्र पुरी की फुलकंडी, चक्रधर बहुगुणा की रचना, गैरोला का प्रेमीपथिक, भवानीदत्त थपिलियाल के जयविजय और प्रहलाद नाटक ने गढ़वाली के पद्य और नाट्य साहित्य की श्रीवृद्धि की। गढ़वाली छन्दमाला (लीलानन्द कोटनाला) तथा गढ़वाली पखाणा(शालीग्राम वैष्णव) की कालजयी कृतियाँ हैं। भजन सिंह 'सिंह' अपने कृतित्व से एक युग प्रवर्तक कवि और लेखक के रूप में गढ़वाली लोक साहित्य में अवतरित हुए। उनका युग उनके नाम से ही ('सिंह युग') कहलाने लगा. इस कालखंड के लोक साहित्यकारों में भजनसिंह 'सिंह' के अतिरिक्त कमल साहित्यलंकार , विशालमणि शर्मा, ललिताप्रसाद 'ललाम' सत्यशरण रतूड़ी उल्लेखनीय हैं। पांथरी युग के कर्णधार भगवती प्रसाद पांथरी थे। उनकी रचना बजवासुरी के बाद भगवतीचरण 'निर्मोही' की हिलांश पुरूषोत्तम डोभाल की वासन्ती तथा भगवतीप्रसाद पांथरी लिखित नाटक भूतों की खोह, पाँचफूल उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इस युग के स्वनाम धन्य कवियों में अबोधबन्धु बहुगुणा, कन्हैयालाल डंडरियाल, गिरधारी प्रसाद 'कंकाल', सुदामाप्रसाद प्रेमी, सच्चिदानन्द कांडपाल, उमाशंकर 'सतीश' डा. पुरूषोत्तम डोभाल , आदित्य राम दुदपुड़ी, महावीर प्रसाद गैरोला, जीतसिंह नेगी और डा. गोविन्द चातक उल्लेखनीय हैं। आधुनिक युग के गढ़वाली लोक साहित्यकारों में नरेन्द्र सिंह नेगी, मधुसूदन थपलियाल,कुटुज भारती, निरंजन सुयाल,लोकेश नवानी, रघुवीर सिंह रावत 'अयाल' , महेन्द्र ध्यानी और चन्द्र सिंह राही प्रमुख हैं

9.3.4 'गढ़वाली लोक' साहित्य का वर्गीकरण

(क) लोक गाथा - गढ़वाली लोक साहित्य को विशेषकर लोक गाथाओं को डा. गोविन्द चातक ने चार भागों में बाँटा है-

(1) धार्मिक गाथाएं (2) वीरगाथाएं (3) प्रणय गाथाएं (4) चैती गाथाएं। इनमें अधिकांश धार्मिक गाथाओं का आधर पौराणिक है। वीरगाथाओं में तीलूरौतेली, लोदी रिखोला, कालू भंडारी,रणूरौत, माधोसिंह भण्डारी की प्रमुख गाथाएं हैं। प्रणय गाथाओं में, तिल्लोगा (अमरदेव सजवाण) राजुला मालूशाही तथा धार्मिक गाथाओं में पाण्डव गाथा, कृष्ण गाथा,कुद्रू-विनता, और सृष्टिउत्पत्ति गाथा मुख्य है।

(ख) लोक कथा - कथा शब्द संस्कृत की 'कथ्' धातु से बना है। जिसका अर्थ है 'कहना'। कहना से ही कहानी बनी है। कथसे 'कथा'शब्द निष्पन्न हुआ है। लोक अपनी बात को अपने कथन को जिस विधि से कहता है वही लोककथा है। लोक कथा में लोक मानस की अपनी व्यथा-कथा और कल्पना, तथा रहस्य-रोमांच, विश्वास,रीति- रिवाज व्यवस्था, रूढ़ि और मिथक (लोक विश्वास) कार्य करते हैं। इन्हीं से लोक का हृदय कथा बुनता है। उसमें प्राण डालता है और लोक ही उसे मान्यता भी देता है। लोक कथाएं लोक का प्रतिनिधित्व करती हैं। गढ़वाली में कथा-कानी, बारता तीनों शब्दों का व्यवहार होता है। गढ़वाली की लोक कथाएं अपने वर्ण्य विषय के कारण निम्नवत् वर्गीकृत हैं -1 'देवी-देवताओं की कथाएं , 2 परियों, भूतों,प्रेतों की कथाएं 3 आँछरियों की कथाएं 4 वीरगाथाएं 5 पशु पक्षियों की कथाएं 6 जन्मान्तर-पुनर्जन्म की कथाएं 7 रूपक और प्रतीक कथाएं 8 लोकोक्ति अप्सराओं की कथाएं। पक्षियों की गढ़वाली कथाएं निम्न रूपों में वर्गीकृत की गई हैं -

पक्षीकथाएं - चोली, घिडूडी,घुमती, कौआ, पता पुरकनी, जिस्ता, हाथी-टिटों, समुद्रभट्कुटरू, करैं, कठफोड़वा, सतरपथा-पुरै-पुरै, सौत्यापूत पुरफुरै, तिलरू, स्याल।

पशुकथाएं - स्याल हाथी की कथा /स्याल बाघ की कथा/स्याल भगवान की कथा/ ऊँट हाथी की कथा , बाघ और बटोही की कथा/हिरण स्याल और कौआ/ स्याल और तीतर।

ज्ञान नीति की कथाएं -अच्छी सलाह / दुखः में चितैकी, वफादार कुत्ता,महत्त्वाकांक्षा आदि इस प्रकार लोक कथा के अन्तर्गत कतिपय लोक कथाएं (देव विषयक) भी गिनी जा सकती हैं ।

व्रत कथाएं - पूर्णमासी,बैकुठं चतुर्दशी, शिवरात्री, संकटचौथ आदि की कथा भी गढ़वाली लोक साहित्य में प्रकारान्तर से प्राप्त होती है।

व्यंग्य कथाए - कन्हैयालाल डंडरियाल की हास्य व्यंग्य कथा के अन्तर्गत 'सत्यनारायण की कथा' इसका उदाहरण है। वर्तमान समय में श्री नरेन्द्र कठैत की व्यंगात्मक कथाएं /कहानियाँ बहुचर्चित हो रही हैं जिसमें उनकी 'धनसिंगै बागी फस्ट' कुल्ला-पिचकरी,कृतियाँ उल्लेख्य हैं।

9.3.5 गढ़वाली लोक साहित्य की भाषा

गढ़वाली के लोक साहित्य से पहले हम आपको गढ़वाली भाषा के लिखित रूप से परिचित कराएंगें। गढ़वाली भाषा की पहली विशेषता यह है कि गढ़वाली उकार बहुला भाषा है और इसकी उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। गढ़वाली भाषा के आरम्भिक लिखित रूप का पता देवप्रयाग मंदिर के सन् 1335 के महाराजा जगतपाल के दान पात्र से चलता है यह विवरण गढ़वाली भाषा में निम्नवत् है -

"श्री संवत्1412 शाके 1377 चैत्रमासे शुक्ल पक्षे चतुर्थी तिथौ रविवासरे जगतीपाल रजवार ले0 शंकर भारती कृष्ण भट्ट कौं रामचन्द्र का भट्ट सर्वभूमि जाषिनी कीती जी यांटो मट सिलापट"।

अब देवलगढ़ में महाराज अजयपाल (1460-1519) का लेख देखिए

'अजैपाल को धरम पाथो भंडारी करौं उक'।

अब महाराजा पृथ्वीशाह (1664) का गढ़वाली में लिखा लेखांश प्रस्तुत है "श्री महाराजा पृथ्वीपति ज्यू का राज्य समये श्री माधोसिंह भंडारी सुत श्री गजेसिंह ज्यू की पलि परम् विचित्र श्री मथुरा वौराणी ज्यूल तथा तत्पुत्र अमरसिंह भंडारी ज्यूल पाट चढ़ाया प्रतिष्ठा कराई....." इन लेखों में दी गई गढ़वाली भाषा को पढ़कर अब आप जान गए होंगे कि इसमें गढ़वाली के साथ संस्कृत शब्दों की भरमार है

'ग्रियर्सन' ने गढ़वाली के विषय में लिखा है कि "यह स्थान-स्थान पर बदलती है। यहाँतक की परगनै की बोली का भी अपना भिन्न रूप है, प्रत्येक का अपना स्थानीय नाम भी है फिर भी गढ़वाली का अपना एक आदर्शरूप (स्टैण्डर्ड) है'।'' ग्रियर्सन ने गढ़वाली के आठ भेद माने हैं जो निम्नलिखित हैं -

1- श्रीनगरी 2- नागपुरिया 3-बधांणी, 4-दसौल्या 5-राठी 6- टिहरियाली 7- सलाणी 8-माझ-कुमैय्या।

"किसी आदमी के दो लड़के थे'' इस वाक्य में इन भाषाओं के रूप देखिये-

1- श्रीनगरी- कै आदमी का द्वी नोन्याल छया।

2- नागपुरिया- कै वैख का दुई लौंडा छया।

3- दसौल्या- कई आदमी का दुई लडीक छया।

4- बधाणी- कै आदमी का द्वि छिचौड़ी छिया।

5-राठी- कै मनख की द्वी लौड़ छाया।

6- टिहरियाली- एक झणा का द्वी नौन्याल थया।

7-सलाणी- कै झणा का दुई नौना छया।

इस उदाहरण से आप समझ गए होंगे कि गढ़वाली की क्रियाएं एवं वाक्य स्थान-स्थान व (प्रत्येक जिले) में भिन्न हैं। फिर भी वे अच्छी तरह समझ में आ जाती हैं। संस्कृत से बिगड़े हुए तद्भव और शौरसेनी प्राकृत से ये रूप प्रभवित प्रतीत होते हैं। अब हम आपको गढ़वाली के लिखित लोक साहित्य की संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित जानकारी दे रहे हैं।

9.3.6 गढ़वाली का काव्यात्मक (गेय) लोक साहित्य

हर्षपुरी जी जिनके विषय में आप पहले भी अध्ययन कर चुके हैं उनके द्वारा लिखित कविता 'बुरोसंग' गढ़वाली में लिखित पहली गेय कविता है। जिसकी बानगी (स्वरूप) इस प्रकार है-

" अकुलौ माँ मायाँ करी कैकी बी नी पार तरी।

बार विधा सिर थरी,वैकु वि कू रोयेंद" ॥

इन्हीं का एक विरह गीत देखिए -

"आयो चैतर मास सुणा दौं मेरी ले सास।

वण-वणूडे सबी मौलीं गैन चीटे मौलिगैंन घास ॥

स्वामी मेरो परदेश गै तो द्वी तीन होई गैन मास।

अज्यू तई सुणी नीमणी ज्यू को ह्वेगे उत्पास ॥

जौ का स्वामी धरू छन तौंको होयुं छ विलास।

रंग-बिरंगे चादरे-ओढ़ी अड़ोस-पड़ोस-सुहास" ॥

सन् 1905 में गढ़वाली पत्र के प्रकाशन के बाद का कालखंड "गढ़वाली युग" के नाम से जाना जाता है। गढ़वाली युग के कवि सत्यशरण रतूड़ी की कविता द्रष्टव्य है।

" उठा गढ़वालियों, अब त समय यो सेण को नीछ

तजा यही मोह-निद्रा कू अजौं तैं जो पड़ी हीं छ।

अलो! अपणा मुलक की यीं छुरावा दीर्घ निद्रा कु

सिरा का तुम् इनी गेहरी खड़ा या जींन गेर याल्ये

अहो ! तुम भरे त देखा कभी से लोक जग्यां छन

जरा सी ऑख त ख्वाला कनोअब घाम चमक्यूँछ" ।

तोता कृष्ण गैरोला के प्रेमी पथिक में कल्पना और रसान्विति इतनी सुन्दर है कि कविता में प्रकृति का बिंब स्पष्ट दृष्टि गोचर होने लगता है मन्दाक्रान्ता छन्द ने उनकी कविताओं पर चार चाँद लगा है -

चंदा आध सरद पर थै सर्कणी बादल्यूँमा

काँसी की-सी थकुलि रड़नी खत्खली खूल्याँमा ।

निन्योर ये निजन बण का नौवल्या गीत गाणी

शर्दे रातैं शरदि लगणी, शीतली पौन-पाणी ।।

अर्थात् आधा चन्द्रमा आसमान में बादलों के बीच में काँसे की थाली के समान रगड़ खाते हुए चल रहा है । नीचे धरती में निम्यारे, झिल्लीयॉ निर्जन वन में (झन-झन करते हुए) नए नवेली के गीत गा रहे हैं । शरद की रातों में सर्दी बढ़ जाने से पानी और हवा भी ठंडी हो गई है ।

सिंह युग अथवा समाज सुधार युग - इस युग के मूर्धन्य कवि भजन सिंह 'सिंह' थे । उनके नाम से गढ़वाली कविता साहित्य का यह युग सिंह युग कहलाया । इस युग की कविताएं छन्दबद्ध, अलंकृत और समाज सुधार की भावना से ओत- प्रोत हैं । कविवर भजन सिंह 'सिंह' के सिंहनाद की कविता उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

फ्रांस की भूमि जो खून से लाल छ

उख लिख्यूँ खून से नाम गढ़पाल छ

रैंदि चिन्ता बडौं तै बड़ा नाम की

काम की फिर्क रैंदी न ईनाम की

राठ मा गोठ मौं को अमर सिंह छयो

फ्रांस को लाम या भर्ति ह्वै की गयो ।

ज्यौं करी धर मूं लाम पर दौड़िगे

फ्रांस मा, स्वामि का काम पर दौड़िगे।

नाम लेला सभी माइ का लाल को

जान देकी रखे नाम गढ़वाल को।

इस तरह सिंह युग की सभी कविताएं प्रायः देशभक्ति और बलिदान के साथ ही प्रकृति चित्रण तथा समाज सुधर-उद्यम, पुरूषार्थ आदि से ओत प्रोत हैं। आत्माराम गैरोला 'गढ़वाली युग' की एक श्रेष्ठ काव्य विभूति माने जाते हैं। उनकी कविता "पंछीपंचक'' से उदाहरण प्रस्तुत है -

अरे जागा कागा कब बिटि च कागा उड़ि उड़ी

करी काका काका घर घर जागोणू तुम सणी।

उठी गैन पंछी करण लगि गैन जय-जय

उठा भायों जागा भजन बिच लागा प्रभुजि का।

घुमूती घूगूती घुगति घुगता की अति भली

भली मीठी बोली मधुर मदमाती मुदमयी।

ग्ढ़वाली में रचित यह कविता बहुत बड़ी है और शिखरणी छन्द में रची गई है। इसकी काव्यात्मक लय और शब्दावली संस्कृत के प्रभाव को लिए है।

बलदेव प्रसाद 'दीन' संवाद काव्य लिखने में अधिक सफल रहे हैं, उनकी लोक प्रिय रचना 'रामी' (बाटा गोडाई) और जसी आज भी गढ़वाली जनता के मुख से सुनी जा सकती है। रामी का संक्षिप्त काव्यरूप प्रस्तुत है -

बाटा गोडाई क्या तेरो नौं छे, बोल बौराणि कख तेरो गौं छ?

बटोही-जोगी ! न पूछ मैकू। केकु पुछदि, क्या चैंद त्वैकू ?

रौतु की बेटि छौं, रामी नौछ। सेठु की ब्वारी छौं,पालि गौंछ।।

विरह गीत लिखने में गढ़वाली कवि अधिक सफल हुए हैं क्योंकि पर्वतीय नारी की विवसता पति के परदेश जाने के कारण और बढ़ जाती है। गढ़वाल का प्राकृतिक सौदर्य, विरहणी नायिकाओं (नवविवाहिताओं) को अधिक सताता है। कवियों ने इन गढ़वाली बिरहिणियों के हृदय की चीत्कार और कर्मव्यथा को निस्सन्देह अपनी कविताओं और काव्य रूपों (खण्ड काव्य) (गीति काव्य) या (गीतिनाट्य) में प्रखर स्वर दिया है। पुरूष की विरह दशा का वर्णन चक्रधर बहुगुणा ने अपने कविता संग्रह मोछंग की छैला कविता में इस प्रकार किया है -

जिकुड़ि धड़क धड़क कदी, अपणि नी छ वाणी।

छैला की याद करी उलरिगे परागी।

पखन जखन सरग गिडिके, स्यां स्यां के विजुलि सरके

ढॉडु पड़ं तड़-तड़ के,रूण झुण के पाणी

छैला की याद करी उलगिरे पराणी ॥

पांथरी युग - भगवती प्रसाद पांथरी की कृति 'बजबांसुली' से यह युग शुरू होता है। इस परम्परा में 'भगवतीचरण' निर्मोही' की 'हिलांस' काव्यत्व की दृष्टि से उच्च कोटि की कृति मानी गई है। कहानी संग्रह भी इस युग में खूब निकले 'पाँच फूल' पांथरी जी का कहानी संग्रह है। भूतों की खोह, 'वासन्ती'आदि उनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इस युग के लेखकों में अबोधवन्धु बहुगुणा ने 'तिड़का,मण्डाण,घोल' अन्तिमगढ़ आदि प्रख्यात रचनाओं से अपनी विशेष पहचान बनाई थी। उन्होंने गढ़वाली का पहला महाकाव्य "भूम्याल'' भी रचा। कन्हैयालाल डंडरियाल का महाकाव्य नागरजा' इसी युग का प्रदेय है। भले ही यह काव्य बहुत बाद में प्रकाशित हो पाया। कुएड़ी, अज्वाल,मंगतु उनकी श्रेष्ठ काव्य कृतियाँ हैं। उनके गढ़वाली नाटक जो अभी तक अप्रकाशित हैं दिल्ली और मुम्बई में मंचित किये गए। उनका व्यग्य 'बागी उप्पन की लड़ै' लोक प्रिय खण्ड काव्य है। उनका 'नागरजा' एक कालजयी गढ़ावाली महाकाव्य है। गिरधारी प्रसाद 'कंकाल', सच्चिदानन्द कांडपाल, डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' डा. गोविन्द 'चातक' डा.पुरूषोत्तम डोभाल, जीत सिंह नेगी आदि इस युग के श्रेष्ठ गढ़वाली साहित्यकार माने जाते हैं। इस काल खण्ड में मोहनलाल बाबुलकर एक समीक्षक के रूप मे उभरे हैं। इस युग में गढ़वाली साहित्य में शिल्प की दृष्टि और वर्ण्य विषयों की विविधता से एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। गढ़वाली में लिखे नाटब्कों की संख्या के विषय में बाबुलकर जी का मत है कि "इनकी संख्या लगभग 67 है। नाटक लेखकों में ललित मोहन थपल्याल, स्वरूप ढौडियाल, अबोध बन्धु बहुगुणा, कन्हैयालाल डंडरियाल, महावीर प्रसाद गैरोला, उमाशंकर सतीश और नित्यानन्द मैठानी प्रमुख हैं।

आधुनिक युग:- डा. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला इसे चतुर्थ चरण कहते हैं। इस कालखंड में चन्द्रसिंह राही का 'रमछोल' 1982 प्रकाश में आया। आत्माराम फोन्दानी का गीत संग्रह 'रैमोडी' के गीतों ने लोकरंजन किया उसके बाद 'चिन्मय सायर' मधुसूदन प्रसाद थपलियाल, निरंजन सुयाल, कुटजभारती के काव्य प्रकाश में आए। मधुसूदन प्रसाद थपलियाल ने गढ़वाली में गजल विधा को आरम्भ किया। उनकी काव्य पुस्तकें 'कस-कमर' और 'हर्षि-हर्वि' लोक प्रिय रही हैं। हास्य व्यंग्य विधा में कन्हैयालाल डंडरियाल द्वारा बनाए काव्य मार्ग पर सर्व प्रथम (रघुवीर सिंह 'अयाल') चले। अयाल जी के दो काव्य गुढयार (1988) पूर्णतः हास्य -व्यंग्य के छलकते रस कलश हैं। हास्य व्यंग्य विधा को ललित केशवान ने 'दिख्यांदिन तप्यांघाम'

(1994) रचकर चरम शिखर तक पहुंचाने का प्रयास किया है। लोकेश नवानी की 'कभी दिल्ली निजौं' सुप्रसिद्ध लोक प्रिय रचना स्वीकारी गई। कतिपय नए रचनाकार भी लगातार वर्तमान काल की समस्याओं को अपनी हास्य-व्यंग्यमय कविताओं को व्यंजना और वक्रोक्ति द्वारा अभिव्यक्त करने में सफल हो रहे हैं। नरेन्द्र कठैत का साहित्य इसका प्रमाण है। बाल साहित्य की कमी गढ़वाली में पहले से ही बनी रही है। अबोध बन्धु के 'अंख-पंख' के बाद कोई उत्कृष्ट बाल रचनाएं प्राप्त नहीं हुई है। नए लेखक भी इसकी उपेक्षा कर रहे हैं

इस कालखण्ड के साहित्य की सूची आपके सरल अध्ययन हेतु प्रस्तुत की जा रही है।

	कृति का नाम	**कवि/लेखक**	**प्रकाशन वर्ष**
1-	द्वी ऑसू	सुदामा प्रसाद प्रेमी	सन् 1962
2-	गढ़ शतक	गोविन्द राम शास्त्री	'' 1963
3-	उज्याली	शिवानन्द पाण्डे	'' 1963
4-	रंत रैवार	गोविन्द चातक	'' 1963
5-	विरहिणी शैलबाला	पानदेव भारद्वाज	'' 1964
6-	वट्वे	सुदामाप्रसाद प्रेमी	'' 1971
7-	अग्याल	सुदामापसाद प्रेमी	'' 1971
8-	माया मेल्वड़ी	भगवान सिंह रावत	'' 1977
9-	पितरूकू रैवार	गोकुलानन्द किमोठी	'' 1979
10-	गढ़गीतिका	बलवन्त सिंह रावत	'' 1980
11-	समलौण	जग्गू नौटियाल	'' 1980
12-	कुयेड़ी	कन्हैयालाल डंडरियाल	'' 1990
13-	सिंह सतसई	भजन सिंह 'सिंह'	'' 1985
14-	गंगू रमोला	बृजमोहन कवटियाल	'' 1997
15-	पार्वती	अबोधबन्धु बहुगुणा	'' 1994

9.3.7 गढ़वाली का नाट्य साहित्य

उत्सव प्रिय गढ़वाली जन-मानस का चित्त जहां रमणीय अर्थवाली गीतिकाओं से आनन्दित होता रहा है, वहीं नाटकों में जो दृश्यऔर श्रव्य दोनों होते हैं से सर्वाधिक प्रभावित रहा है। नाटक देखने के लिए जितनी भीड़ जुटती है उतनी कविता सुनने के लिए नहीं। महाकवि कालिदास ने इसी लिए नाटक को महत्त्व प्रदान करते हुए लिखा है, 'काव्येषु नाटकं रम्यं' अर्थात् काव्यों में नाटक रमणीय है। महर्षि भरत ने, 'लोकःविश्रान्ति जनन नाट्यं- लोक की थकान मिटाने वाला,आनन्द प्रदान करने वाला, व्यवहारिक ज्ञान देने वाला, तत्व नाटक को माना है। गढ़वाली का नाट्य लेखन भवानी दत्त थपल्याल के 'जय विजय' और प्रह्लाद नाटक से शुरू माना जाता है। विश्म्भर दत्त उनियाल का 'बसन्ती', ईश्वरीदत्त जुयाल का परिवर्तन भगवती प्रसाद पांथरी के दो नाटक (क) भूतो की खोह (ख) अधः पतन, तथा गोविन्द चातक का 'जंगली फूल' अबोध बन्धु के नाटक- 'कचविडाल' 'अन्तिमगढ़' माई को लाल नित्यानन्द मैठानी की 'चौडण्डी' प्रेम लाल भट्ट का 'बॅट्वरू' कन्हैयालाल डंडरियाल के नाटक- कन्सानुक्रम, राजेन्द्र धस्माना का 'अर्धग्रामेश्वर' विश्वमोहन बडोला का 'चैतकी एक रात' ललितमोहन थपलियाल का नाटक 'एकीकरण' तथा उर्मिल थपलियाल का 'खाडू लापता' आदि सुप्रसिद्ध गढ़वाली नाटक हैं। इनके अतिरिक्त जीत सिंह नेगी का नाटक 'डॉडा की अएड' गोविन्द राम पोखिरियाल 'मलेथा की कूल' आदि उल्लेख्य हैं।

9.3.8 कहानी एवं उपन्यास

गढ़वाली में सर्वाधिक संख्या में कहानी लिखी गई हैं। कहानीकारों में रमाप्रसाद पहाड़ी, भगवती प्रसाद जोशी 'हिमवंतवासी' डा. उमेश चमोला, हर्ष पर्वतीय आदि उल्लेखनीय हैं। डा. गोविन्द चातक ने सर्वाधिक कार्य नाटकों पर किया है। अब हम आपके अध्यनार्थ गढ़वाली नाटकों की भाषा के कुछ अंश संक्षेप में प्रस्तुत कर रहे हैं -

प्रहलाद नाटक की भाषा:-

'कालजुगी,माराज मी पर गुस्सा न होवन। सरकार, मैंत सब ताड़नाकर चुक्यूॅ। ये पर बार-बार अर गुरू जी न भि ये तैं दिखाये खूब धुधकार-फुटकार,। परन्तु ये न जरा भर भिन छोडि बोलणा, नारेण-हरिकर्तार! यां ते महाप्रभु! कुछ आपही कराये को बिचार हमते होई गयां ये ते बिलकुल लाचार।'' -

अब विश्म्भर उनियाल के वसन्ती नाटक की काव्यभाषा प्रस्तुत है -

"दिदि, देख दौं हम लोंगू या कतना बुरो रिवाज छ कि नौन्यूं को ब्यौ बुडयो से कर देंदन। भई इना करण से त जैं दिन नोंनि निजै वे दिन हि दतेरे द्योन त अच्छो हो। जिंदगीभर का रोण-धोण से नि होण हि भलो''।

अब भगवतीप्रसाद पांथरी के नाटक 'अधःपतन' के संवाद देखिए -

"नैनुक्य सोनाकि कुंजी हि प्यार को दरवाजू खोल सकदी? पर क्य कंगाल कि हृदय कि अभिलाषा धूल मा हि लिपटण का होन्दी? वे का प्यारकी कुलाई कि डालि क्या दुसरूं का सुख की होलि। जव्नौण का हि लपकदि?''

राजेन्द्र धस्माना के 'अर्धग्रामेश्वर' की भाषा देखिए -

सूत्रधार- "अब ब्वनु क्या च माराज सुन्दरता मा यूडा दि छन हमरि ब्वनाच अब खुणैं भग्यान वक्नन्दा तै भग्यान भि छिन,अर गरीब ब्वलन्दा ते गरीब हुई अर एक चित दिखे जा।

इस प्रकार गढ़वाली नाटकों की भाषा सशक्त और अपनी मांटी की सौंधी गंध लिए हुए है।

9.4 लोकवार्ता के रूप में प्राप्त साहित्य

लोकवार्ताएं केवल देवी-देवताओं के जागर में नृत्यमयी उपासना के बीच सुनाई जाती है। प्रायःरात ही उसके लिए उपयुक्त होती हैं रात में देवता का नृत्य देखने के लिए एकत्र हुए लोगों के मनोरंजन के लिए कभी वार्ताएं आवश्यक समझी जाती थीं। आज भी लोकवार्ता का महत्त्व वैसे ही बना हुआ है जैसे पहले था। लोकवार्ता का काई भी ज्ञाता व्यक्ति मंडाण अर्थात् देववार्ता सुनने और देवता का नृत्य देखने के लिए एक समूह के बीच में बैठते हैं और अवसर पाते ही समूह के बीच से उठकर दोनों हाथों से अपने कानों को दबाकर या उनके छिद्रों में उंगली डालकर संगीत के स्वरों में कोई वार्ता छेड़ता है वह वार्ता के आमुख के रूप में ढ़ोल या डमरू(डौंर) बजाने वाले औजी (वादक) को संबोधित करता है।

देवी देवताओं की वार्ता के समय सभी श्रोता एवं दर्शक भक्तिभाव से बैठे रहते हैं। देवी-देवताओं के समान ही अनिष्ट कारिणी शक्तियों जैसे (भूत,आँछरी) आदि की मनौती के लिए भी उन्हें नचाने खेलवाने के लिए नृत्य के साथ गीत गाए जाते हैं। उन वार्ताओं में कथा का अंश बहुत होता है और उसको रांसो कहा जाता है। डा. गाविन्द चातक इसे 'रासो' से उत्पन्न मानते हैं उनका मानना है कि बोल-चाल में रासो का अर्थ धर्म कथा होता है। कहानी का ध्येय मूलतः मनारंजन होता है लेकिन रासो मनुष्यों को देवताओं और आँछरी,आदि के भय से निर्मुक्त करने की नृत्यमयी उपासना है। लोकवार्ता के रूप में प्राप्त साहित्य के अन्तर्गत -गढ़वाली का वृहत अलिखित साहित्य लोकवार्ता के रूप में आज भी मौजूद है। एटकिन्सन ने भी गढ़वाल के इतिवृत्त लेखन में लाकवार्ता साहित्य की मदद ली। उसने यहां की धार्मिक गाथाओं, तथा यहाँ के ऐतिहासिक अनैतिहासिक वीरों, राजाओं, महाराजाओं, वीरांगनाओं के गीतों को लोगों के मुख से सुना और उनसे यहां की सभ्यता-संस्कृति व भाषा का विश्लेषण किया। गढ़वाली लोकवार्ताएं राजस्थान,गुजरात, पंजाब, महाराष्ट्र, बंगाल के लोकवार्ता साहित्य के समकक्ष है।

गढ़वाल की देव गाथाओं में भूगोल के साथ-साथ इतिहास की जानकारी भी मिलती है। विशेषकर तंत्र-मंत्रऔर देव गाथाओं में पौराणिक भूगोल का वर्णन मिलता है जैसे - देवलोक जाग नागलोक जाग ! खारा समुद्र जाग, अन्तरिक्ष लोक जाग। इनके साथ ही गढ़वाल के प्रमुख पर्वत,नदी,घाटी, गुफाएं वन आदि का वृतान्त मिलता है। यहां के भड़ों और राजाओं की विरूदावली व वंशानुचरित भी गढ़वाली लोकवार्ता के अन्दर मिल जाते हैं।

9.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

- गढ़वाली लोक साहित्य से परिचित हो गए होंगे.
- गढ़वाली लोक साहित्य के इतिहास से भी परिचित हो गए होंगे
- गढ़वाली लोक साहित्य का क्रमिक विकास प्राप्त कर चुके होंगे
- गढ़वाली लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं को जान गए होंगे
- गढ़वाली लोक साहित्य के विभिन्न युगों(काल-खंडों) को जान गए होंगे

9.6 शब्दावली

1. सृजित - बनना , निर्मित होना
2. आस्तिक - ईश्वर पर आस्था रखने वाला
3. मानस - मन, ह्रदय
4. मूर्धन्य - बड़ा, विशेष
5. चीत्कार - चीखना, चिल्लाना
6. उत्कृष्ट - अच्छा, सर्वश्रेष्ठ

9.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्र.उ. 1 (क) सोमदेव (ख) गुणाड्य (ग) पातीराम (घ) योगेन्द्र पुरी

प्र.उ. 2 (क) मिथक -पुराने लोक विश्वासों,पौराणिक कथा एवं गाथाओं को 'मिथक' साहित्य कहा जाता है। मिथक में सत्य का विस्थापन होता है। जैसे हम कहें उषा के बाद सूर्योदय होता है तो मिथककार उसे कहता है -सूर्य उषा का पीछा करता है।

प्र.उ. 3 तीन प्रमुख पक्षी कथाएँ निम्नलिखित हैं:-

(1)भटकुटुरू (2) चोली (3)सतर पथा-पुरै-पुरै (4) पता-पुरकनी।

प्र.उ. 4 - अजयपाल का धर्मपाथो (अनाज मापने का बर्तन) भंडारियों के यहाँ है।'

प्र.उ. 5 - ग्रियर्सन ने गढ़वाली भाषा के विषय में कहा है कि 'यह स्थान-स्थान पर बदलती है। यहां तक कि परगने की बोली का भी अपना भिन्न रूप है। प्रत्येक का अपना स्थानीय नाम भी है । और गढ़वाली का अपना एक आदर्श (स्टैण्डर्ड) रूप है। ग्रियर्सन ने गढ़वाली के आठ भेद माने हैं।

प्र.उ. 6 – ''किसी आदमी के दो लड़के थे''। इसका रूप नागपुरी और बधाणी में निम्नवत् होगा -

(क) नागपुरिया बोली में - कै बैख का दुई लौंडा छया।

(ख) बधाणी बोली में -कै आदमी का दिव् छिचौड़ी छिया।

प्र.उ. 7 'सिंह युग' की गढ़वाली कविताओं की 4 विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

(1) सुधारवादी दृष्टिकोण (2)छन्दबद्ध कविताएं व गीत (3) लोक से जुड़ी गढ़वाली भाषा का काव्यात्मक प्रयोग (4) संवाद परकता।

प्रश्नोत्तर 8- बाटागोडाई (रामी) लोक गीत - लोक काव्य के स्वचिता का नाम है -बल्देव शर्मा 'दीन'।

9.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गढ़वाली लोककथाएं- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 1996, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
2. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य- डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
3. उत्तराखण्ड की लोककथाएं- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
4. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना- मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।
5. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य- डा. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।

6. गढ़वाली लोक गीत विविधा- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

9.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. गढ़वाली लोक साहित्य के इतिहास को विस्तारपूर्वक समझाइए .
2. गढ़वाली लोकसाहित्य के क्रमिक विकास की विवेचना कीजिए .

ईकाई 10 गढ़वाली लोक गीत - स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 गढ़वाली लोक गीत : एक परिचय
10.3.1 गढ़वाली लोक गीतों का वर्गीकरण
10.3.2 गढ़वाली लोक गाथागीतों की प्रमुख विशेषताएं
10.3.3 गढ़वाली लोक गाथागीतों की प्रमुख प्रवृत्तियां
10.3.4 गढ़वाली लोकगीतों की प्रमुख प्रवृत्तियां
10.3.5 'चांचड़ी' लोकगीतों की प्रमुख विशेषताएं
10.5 सारांश
10.6 अभ्यास प्रश्न
10.7 पारिभाषिक शब्दावली
10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
10.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

गढ़वाल अने प्राकृतिक सौन्दर्य, धार्मिक स्थानों का केन्द्र स्थल और सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक विरासत के कारण सर्वत्र पहचाना जाता है। हिमालय के पांच खण्डों में एक खण्ड केदारखण्ड है। यही आज गढ़वाल मंडल है। प्राचीन साहित्य में इसे इलावृत्त, ब्रह्मपुर, उत्तराखण्ड, रुद्रहिमालय, चुल्ल हिमवन्त, कृतपुर, कार्तिकेयपुर के नाम से अभिहित किया गया है। गढ़वाल नाम सम्भवत 1500ई. पूर्व जब अजयपाल ने छोटे-छोटे बावन गढ़ों को जीतकर अपने एकछत्र राज्य की नींव डाली, तब से प्रकाश में आया है। सम्भवतः गढ़ों की अधिकता के कारण या गढ़ों वाला प्रदेश होने से इसका नाम गढ़वाल पड़ा होगा। इस नाम के पड़ने पर विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। इसका अध्ययन संक्षेप में आप पन्द्रहवी इकाई में कर चुके हैं। यहां के प्राचीन निवासी कौन थे, यह कहना कठिन है। पिछले कुछ वर्षों में मध्य हिमालय में जो पुरातात्विक उत्खनन हुये उनसे कुछ प्रमाण जरुर मिले है। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रागैतिहासिक काल में यह क्षेत्र यक्ष, किन्नर, गंधर्व, नाग, किरात, कोल, तंगण, कुलिन्द, खस आदि जातियों की निवास भूमि रहा है। गढ़वाल में यक्ष पूजा के अवशेष मिलते हैं।

गढ़वाल के रबाई क्षेत्र में बसने वाले किन्नौर कहलाते हैं। किरात कुमांऊ, नेपाल, और गढ़वाल में राजी या राज किरात या किरांती नाम से जाने जाते है। भील कभी भिल्डा नाम से जाने जाते थे। भिलंग, भिलंगना, भल्डियाना नाम वाले अनेक स्थान आज भी गढ़वाल में है। साथ ही नागों के स्थान की सूचक नागपुर पट्टी यही गढ़वाल में है। बाद में राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, बंगाल और दक्षिण से भी यहां लोग आये और बस गए। उत्तराखण्ड की भाषा गढ़वाली में द्रविड, कोल, नाग आदि जातियों की भाषाओं का सम्मिश्रण स्पष्ट दिखता है। कई नृवंशों की छाप गढ़वाली शब्द सम्पदा में शब्द रुप में तथा समाज में सांस्कृतिक मेलापक के रूप में देखी जा सकती है। भाषाओं के इस मेलापक और सांस्कृतिक घाल मेल वाले गढ़वाली लोक के लोक जीवन के बीच उपजे गीत भी उनकी वृहत सांस्कृतिक विरासत का स्मरण कराते है। डा. गोविन्द चातक का मत है कि 'लोक गीत जीवन और जगत की अभिव्यक्ति करते है। उनमें कोई विषय वर्जित नहीं होता है'। गढ़वाल के लोकगीत भी इस सत्य के अपवाद नहीं है। उनका कहना है कि गढ़वाल के कुछ नृत्यों के आधार पर वर्गीकृत हुए है। छोपती, तान्दी, थाड्या, चौंफुला, झुमैलों आदि नृत्यों के नाम हैं और उनके साथ गाये जाने वाले गीतों को भी ये ही नाम दे दिए गए है। यही बसन्ती, हरियाली, माघोज, होली, दीवाली, पंचमी, ऋतु तथा त्यौहारों में पायी जाती है। जैसे चैती ऋतु गीत हैं, गढ़वाल में अब सभी संस्कार गीत उपलब्ध नहीं हैं। मृत्यु के गीत केवल रबाई जौनपुर में प्रचलित हैं। गढ़वाल में व्यापक रूप में विवाह के गीत मिलते है, उनको मांगल कहा जाता है। देवी देवताओं के नृत्यमयी उपासना के गीत जागर कहलाते है। कुछ भागों में झूड़ा और लामण गीत भी मिलते हैं। गीतों के स्थानीय नामों तथा उनके वर्ण्यविषयों में अधिकांशतः कोई आधारभूत एकता नहीं है। उदहारण के लिए नृत्यों पर आधारित गीतों का

नामकरण गीतों के भावसाम्य उपेक्षा सा करता है। चौंफुला, झुमैलों, चांचरी, तान्दी, थाड्य आदि नृत्यगीत अपने वर्ग के गीतों की भाव तथा विषय सामग्री की एकता छादित नहीं करते है। जैसे- कोई चौंफुला प्रेम का है तो कोई लड़ाई का। वे अपने वर्ग के गीतों की ताल गति और लय का पालन तो करते हैं परन्तु भाव और विषय की अनुरूपता इनमें नहीं दिखती है। नृत्यों के अतिरिक्त गीतों की शैली, गाने के अवसर आदि को भी लोक ने वर्गीकरण का आधार बनाया है। प्रेमगीत इसके उदहारण है। छोपती, लामण, बाजूबन्द तथा अन्य प्रेमगीत रस की दृष्टि से एक ही कोटि में आते है। इस तरह लोकगीत गढ़वाल में प्रचलित या विभाजित वर्गीकरण में धार्मिक लोकगीत, संस्कारगीत, वीरगाथागीत, प्रेमगीत, स्त्रियों के गीत, नीति उपदेश, व्यवहारिक ज्ञान के गीत और विवाहगीत, जनआन्दोलनों, के गीत प्रमुख हैं।

'औजी' वाहक चैत के महीने में 'चैती' गाते हैं। हास्य-व्यंग्य, राष्ट्रीय चेतना के गीत अब विलुप्ति के कगार पर हैं। केवल आन्दोलनों के गीत सृजे जा रहे हैं। उत्तराखण्ड आन्दोलन पर श्री नरेन्द्र सिंह नेगी के गीत सर्वाधिक लोकप्रिय हुए हैं और उनकी आगे भी सनातन प्रासंगिता बनी रह सकती है। बसन्त ऋतु में गाए जाने वाले गीतों चैती, बसंती, झुमैलों और खुदेड़ गीतों के सृजन की सम्भावना बनी रहेगी। बाल गीत अब समाप्त हो गए है। लोकगीतों में कभी इनकी भी तूती बोलती थी। युगान्तर में 'माँ' के मदर और पिता के 'डैड' हो जाने पर माँ की लोरीवाले वात्सल्यमय लोकगीतों को अब सुनने को कान तरस रहे है। प्राचीन घटना मूलक गीत भी अब शेष नहीं बचे हैं। कुछ गीत मुगल और गोरखा आक्रमण के बचे हैं। आजादी के लिए जो जन आन्दोलन हुए थे उनकी स्मृति भी लोकगीतों के रुप में बची है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के ऐतिहासिक दौर में गांधी, नेहरु, सुभाष, श्रीदेव सुमन पर लोकगीतों की रचना हुई। जन समस्याओं को लेकर भी लोकगीत लिखे गए और अब भी सर्वाधिक रूप में लिखे जा रहे हैं। गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई, बाघ, टिड्डी, अकाल, बाढ़ और आपदाओं पर पहले भी लोकगीत रचे गए और वर्तमान में भी इन पर लोकगीत रचे जा रहे हैं। देवपूजा के लोकगीत आज भी अपने जीवन्त रुप की साक्षी दे रहे हैं। पाण्डवों से सम्बन्धित पंडवार्ता, मंडाण, नागराजा को नचाने की लोकवार्ता, घंडियाल, बिनसर, कैलावीर, महासू, क्षेत्रपाल 'जाख' नरसिंह और भैरवनाथ देवी आदि जो गढ़वाल के स्थानीय लोकदेवता हैं उन पर आधारित लोकगीत, लोकवार्ता (जागर) के रूप में मौजूद हैं। गढ़वाल के ये विविध प्रकार के लोकगीत गढ़वाल की लोकमान्यता, विश्वास, धार्मिक तथा संस्कृति स्वरुप और आमोद-प्रमोद के परिचायक हैं। ये लोकगीत सचमुच में गढ़वाल के लोक मानस को जानने पहचानने के ज्ञानकोष हैं।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई का अच्छी प्रकार अध्ययन करने के बाद आप समझ सकेंगे कि -

1. लोकगीत किसे कहते है और उनकी विषय वस्तु में लोकतत्व कैसे समाया रहता है ?

2. गढ़वाली लोकगीतों का स्वरूप कैसा है ?

3. डा. गोविन्द चातक और मोहनलाल बाबुलकर द्वारा किया गया गढ़वाली लोकगीतों का वर्गीकरण कैसा है - क्या है ?

4. गढ़वाली लोकगीतों के पद्यात्मक साहित्य की विशेषताएं क्या है ?

5. प्रमुख गढ़वाली लोकगीत कौन-कौन से हैं ?

6. लोकगीतों के कथानक और उनकी शैली से परिचित हो सकेंगे।

7. लोकगीतों की प्रमुख विशेषताएं तथा उनकी प्रवृत्तियों को जान सकेंगे।

10.3.1 गढ़वाली लोकगीत एक परिचय

लोकगीत, लोक मानस के चित्त की रागात्मक अभिव्यक्ति का स्वरूप है। मन जब हर्ष-विषाद और रोमांच तथा आश्चर्य से तंरगित या क्षुब्ध होता है, तब मानव मन के ये सुप्त रागात्मक 'स्थाई भाव' रस में परिणित होने के लिए 'गीत' का रुप धारण करते हैं। 'गीत' में छन्द तुक और लय का विधान होता है। 'गढ़वाल' प्रकृति का एक अद्भुत उपहार है। यहां की प्रत्येक वस्तु कवितामय है। नीरव- उतुंग शिखर, हिमानी चट्टानी, बर्फीले चमकदार पहाड़, नीला विस्तृत आकाश, नयनभिराम पशु-पक्षियों का क्रीड़ागंन गढ़वाल अपनी मोहकता से गीतों के सृजन के लिए अनाम कवियों को युगों-युगों से आमंत्रण देता रहा है। मानों अनेक लोकोत्सव और मेले-त्यौहार इस देवभूमि में गीतों को बिछाते और ओढ़ते हैं। 'गीत' यहां की संस्कृति का प्राण तत्व हैं। अतः संस्कारों, क्रियाओं, रीति-परिपाटियों के गीत भी अलग-अलग रूप के हैं। प्रमुखतः छोपती, तान्दी, थाड्या, चौफुंला, झुमैलों आदि यहां के लोक के नृत्य हैं लेकिन इन नृत्यों में जो गाया जाता है वह गीत इन्ही नृत्यों के नाम पर छोपती गीत, थाड्या गीत, तान्दी गीत चौफुला और झुमैलों गीत के नाम से पहचाने जाते हैं। चौफुंला प्रेम का गीत है तो कोई वीरता का, कोई वन्यजीव के आक्रमण का वर्णन प्रस्तुत करता है तो कोई चौफुंला हास्य का पुट लिए होता है। चौफुंला गीत अनेक भावों पर आश्रित होते हैं।, इनके नृत्य में हाथ, पैरों और शरीर की नृत्यमुद्रा का पद क्रम भी भिन्न-भिन्न होता है। विवाह के गीत संस्कार गीत हैं जिन्हें मांगल कहा जाता है। छोपती, लामण, बाजूबन्द आदि प्रेमगीत भाव और रस की दृष्टि से एक ही कोटि में आते हैं।

तथपि इनका युक्तिसंगत वर्गीकरण निम्नवत किया जा सकता है-

1. धार्मिक गीत 2. संस्कारों के गीत 3. वीरगाथा 4. प्रेमगीत 5. स्त्रियों के गीत 6. नीति-उपदेशों वाले गीत 7. राजनीति एवं समाज सुधार और आपत्ति (अकाल, बाढ़ पशु व्याघ्रादि का आतंक) पर आधारित गीत और विविध गीत, बाल गीत आदि।

गढ़वाल में ऋतुगीतों की अपनी अलग ही पहचान है। ऋतुगीतों में चैती सर्वाधिक लोकप्रिय और परम्परागत गीत हैं। कुमांऊ में इसे ऋतुरैण (ऋतुओं की रानी) कहा जाता है। इस गीत को औजी या बादक चैत के महीने में गाते है। यही नहीं बादी जाति इन गीतों को गाती ही नहीं बनाती भी है। ये सब गीत, जातियों की दृष्टि से बने हैं, लेकिन ये गीत सभी में फैले हैं। किसी वर्ग विशेष की सम्पत्ति नहीं हैं। भले ही एक वर्ग विशेष इनका रचयिता एक गायक होता है। ये गीत उनके व्यवसायिक हित को भी साधते हैं। चैत के महीने औजी (आवजी, बाद लड़की (घयाण) के माईके से उसके ससुराल में जाते हैं और चैती गाकर ससुराल पक्ष से दक्षिणा प्राप्त करते हैं। ऋतुगीतों का अपना लोक पर भारी प्रभाव हैं ये काव्यात्मकता लिए हुए होते हैं। बसन्त ऋतु कर गीत प्रस्तुत है- ''उलरया मैना, ऐगे खुदेंड़ बसन्त, बारा रितु बौड़ी ऐन बारा फूल फूलेन!'' बासलो कफ्फू मेरा मैत्यों की मैती,। यह गीत नवविवाहिता के मन को करुणा और वात्सल्य तथा श्रृंगाररस से ओत-प्रोत कर देता है। अधिकांश गीत जीवन की क्षणभंगुरता को भी प्रदर्शित करते है। 'छूड़ा' छोपती की अपनी विशेषताएं अलग हैं। 'छूड़े' भले ही प्रेम गीत नहीं हैं लेकिन अन्य विषयों के साथ मिलकर प्रेम की अभिव्यक्ति करते हैं। 'बाजूबन्द' श्रृंगारी युगल जनों का एकान्तिक प्रेम गीत हैं। त्यौहारों के गीत, होली, चौमासे और वर्षा ऋतु में कुयेड़ी के लौंकने पर एक करुण दृश्य की संरचना कर देते हैं। विरहतप्त, पर्वतीय नारी के हृदय की कोमल भावनाएं मायके की याद में कभी अपने परदेशी पति की याद में प्रकट होकर वातावरण को गमगीन कर देती है। एक गढ़वाली गीत प्रस्तुत है-

''काला डांडा पछि बाबाजी काली छ कुयेड़ी

बाबाजी मैं यखुली लगदी डेर

यखुली मैन कनके की जाण विराणा विदेश ?

आज दिउलू बेटी तने हाथी-घोड़ा

त्वै दगड़ जाला लाडी तेरा दीदा भुला

त्वै लाड़ी मैं यखुली नी भिजौऊ''

हिन्दी भावार्थ है, ''काले पर्वत के पीछे पिताजी काले बादल है। पिताजी! मुझे अकेले डर लगता है। मैं पराए देश कैसे जाउंगी। पिता कहता है- पुत्री मैं तेरे आगे पूरी बारात भेजूंगा। तेरे पीछे हाथी, घोड़े भेजूंगा। तेरे साथ बेटी तेरे भाई जायेंगे, बेटी मैं तुझे अकेले नहीं भेजूंगा। मैं तुझे गायों के गोठ दूंगा, मैं तुझे बकरियों की डार दूंगा''।

झुमैलों - यह गढ़वाली नृत्यगीत गढ़वाल की धरती को जब अपने गायकों की कंठध्वनि और पैरों की क्रमागत धम्म-धम्म की ध्वनि से गुंजित करता है तब संगीत और श्रृंगार भाव का एक

साथ अवतरण हो जाता है और मन में गुदगुदी होने लगती है। कहीं-कहीं पर 'करुण' रस भी चित्त को भिगों देता है। एक उदहारण प्रस्तुत है-

''ऐगैन दादू झुमैलों, रितु बौडीक झुमैलो

बरा मैनों की झुमैलों, बारा बसुन्धरा झुमैलों

बारा ऋतु मा झुमैलों को रितु प्यारी झुमैलों

बारा ऋतु मा झुमैलों, बसंत ऋतु प्यारी झुमैलों"।

झुमैलों गीत लड़कियों द्वारा मायके की याद में गाये जाते हैं । जिनकी टेक ही झुमैलों होती है। इनके साथ वे झूमकर नृत्य करती हैं। ये गीत बसन्त पंचमी से विषुवत संक्रान्ति तक चलते हैं।

खुंदेड़ गीत - ''जै भग्यान का ब्वे बाबू होला

स्ये उंका सहारा मैतूड़ा जाला

मेरा मैत छपन्याली डाली, कुल्यां की छाया

ये पापी सैसर रुखड़ा डांडा दायां, बायां"।

अर्थात्- ''जिस भाग्यवान बेटी के माता-पिता होंगे वे उसे मायके बुलाएंगे। उनके सहारे वह मायके जाएगी। मेरे मायके में छतनार चीड़ के वृक्षा की छाया है। इस पापी ससुराल में दाएं-बाएं रुखे पर्वत ही पर्वत है"।

प्रणय गीत - ये गीत अपने पति की याद में विवाहिता स्त्री द्वारा गाए जाते हैं वह गीत में अपने पति को अपना दर्द बताती है और मिलन की तड़फन जतलाती है और कालिदास की विरहिणी नायिका की तरह बादलों को देखती, नदियों, पक्षियों से अपना रैबार भेजती है। अपने प्रेमी को उलाहना भी देती है। गढ़वाली में प्रेम गीतों में देवर-भाभी, जीजा-साली के गीत बहुत प्रचलित हैं। 'बाजूबन्द' भी श्रृंगार के अतिरंजन पूर्ण मादक वर्णन भरे होते है। ये एकान्तिक, प्रेमी-प्रेमिका के मिलन-विद्रोह के गीत है।

निष्कर्षतः श्रृंगार, प्रेम, वासना, करुणा और धर्म विश्वास इन लोक गीतों का प्राणतत्व है। संगीत की मादकता और गीत की बानगी उसके बोल मन को उमंगित करने में समर्थ होते हैं- उदाहरण के लिए एक गीत प्रस्तुत है-

''नाच मेंरी वीरा, तेरा घुंघरू बाज्या छम

घुगता की घोली, तेरी रुबसी धिची होली

कुछ भर्या आंख्योन, कुछ भर्या गोलीन

मेरों हिया भरियूं, छ तेरी मीणी बोलीन"।

अर्थात्-

''हे मेरे हृदय की रानी वीरा! (प्रेमिका का नाम) तेरे घुंघरू छम-छम बजते हैं। मेरा हृदय तेरी मीठी बोली से भरा है। प्यारी। अपने हृदय पर तू चिन्ता का बोझ मत डाल तू मेरी आखों में रीठे की दानी जैसी घूमती है। तूने मुझे अपनी बांकी नजर से मार डाला है। मेरा हृदय तेरी मीठी बोली से भर गया है। तेरी खूबसूरत गोल मुखाकृति घुघते के घोल सी सुन्दर है"।

निष्कर्ष - लोकगीत गढ़वाली लोक साहित्य की एक प्रमुख विधा हैं। ये लोक जीवन से उपजते हैं तथा जीव और जगत की अनुभूति करके सृजे जाते हैं। इनमें कोई भी विषय ऐसा नहीं हैं जो लोकगीतों के वर्ण्य विषय के अन्तर्गत न आता हो। वर्गीकरण के आधार पर इन्हें संस्कारों, रासनुभूतियों, सामाजिक क्रियाओं, रीतियों, त्यौहारों और जातियों (छन्दों गेयात्मकता) के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। गढ़वाली लोकगीत यहां के नृत्यों के आधार पर भी नामांकित किए गए हैं। जैसे - छोपती, तान्दी, थाड्यो, चौफुलों, झुमैलों आदि गढ़वाली नृत्यों के नाम है लेकिन उनके गीतों के भी इसी नाम से पुकारते हैं। विवाह के गीत, मांगल कहलाते है, 'संस्कार गीत' भी बहुप्रचलित है। देवी-दवताओं के गीत जागर या लामण, झूड़ा गीत के रुप में प्रसिद्ध हैं। मोहनलाल बाबुलकर ने इन्हें धार्मिक गीत, संस्कार गीत, वीरगाथा, प्रेमगीत, स्त्रियों के विरह गीत, नीति उपदेश तथा व्यवहारिक ज्ञान सम्बन्धित गीत और विविध गीत के रुप में विवेचित किया गया है। औजी वादक चैती या ऋतु गीत गाते हैं। यहां हम आपकी जानकारी के लिए संक्षिप्त में इन गीत रूपों का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे है। ऋतुगीत का उदहारण है -

''उलर्या मैनों ऐगे खुदेड़ बगत,

बार रितु बौड़ी ऐन, बार फूल फूलेन।

सरापी जायान मां जी विधाता का घर

केक पाली होलु मांजी निरासू सी फूल

गौं की नौनी स्ये गीत बासन्ती गाली

जौकी बोई होली मैतुड़ा बुलाली"।

गढ़वाली पक्षी, तोता, हिलांस, कफ्फू, घुघती बसन्त के आगमन की सूचना देते हैं। उनके स्वरों से अचेतन मन में सिहरन सी उठती है। विहरणी स्त्री 'कफ्फू' पक्षी को अपने मैत (मायके) से आया पक्षी मानकर गीत गाती है-

बासलों कफ्फू मेरा मैत्यों कू मैती

कफू बासलो मेरा मैत्यों की तीर।

कफू बासलो नई रीति बौड़ली

कफू बासलो मेरी ब्वे सुणली

मैकू ताई, कलेऊ भेजली।

मेरा मैती सुणला ऊं खुद लगली।

'खुद' इन गीतों का मुख्य वर्ण्य विषय होता है। कुमांऊनी में इसे 'नराई' कहते है। लोक साहित्य में हिलांस, कफ्फू, धुधती आदि पक्षी नारी उत्पीड़न के प्रतीक के रूप में लोक धारणा में घर किए हुए हैं। इनके जीवन में गढ़वाली नारी अपने ही अन्तर्मन की छाया पाती है। धुधती के विषय में एक जनश्रुति यह भी है कि उसकी विमाता (कही सास) ने उसे जब वह नारी थी मारा था। आज भी वह पक्षी बनकर के 'धुधती' वासूती (मां सोई है) पुकारती हुई अपनी मां को खोजती है।

गढ़वाली गीत प्रेम से भी लबालब भरे होते हैं। एक छोपती गीत प्रस्तुत है-

काखड़ की सींगी, मेरी भग्यानी हो,

रातू कु सुपिमा देखि, मेरी भग्यानी हो,

दिन आख्यूं रींगी, मेरी भग्यानी हो,

ढोल की लाकूड़ी मेरी भग्यानी हो,

तू इनी दिखेन्दी, मेरी भग्यानी हो,

छोपती में संयोग-वियोग दोनों अवस्थाएं मिलती है। प्रेमगीतों के अन्तर्गत 'बाजूबन्द' में भी छोपती के समान ही संवादगीत होते हैं। अन्तर इतना है कि छोपती चौक में नृत्य के साथ समूह में गाई जाती है और बाजूबन्द दो स्त्री- पुरुष के बीच निजता के साथ वनों के एकान्त में गाए जाते हैं। 'छूड़े' प्रेमगीत तो नहीं है पर उनमें अन्य विषयों के साथ प्रेम की अभिव्यक्ति भी होती है। मूलतः वे सूत्र रुप में गठित सूक्ति गीत कहे जा सकते है। इनमें कुछ गीत जीवन और

जगत की क्षणभंगुरता पर आश्रित है। कुछ गीत भेड़ पालकों के जीवन पर आधारित है। कुछ प्रेम सम्बन्धी है और कुछ नीति, आदेश या उपदेश सम्बन्धी इनके नायक वे ही प्रेमी-प्रेमिका होते है जो जीवन में किसी पीड़ा को लेकर जी रहे है। कई गीत समायिक समस्याओं पर भी रचे जाते है। त्यौहारों के गीत, आन्दोलनों के गीत, हास्य-व्यंग्य गीत, बाल गीत आदि। स्वतन्त्रता आन्दोलनों के दौर में गांधी, नेहरु, सुभाष पर गीत बने, अकाल, टिड्डी दल, गरीबी, बेरोजगारी गीतों के विषय बनते रहे है, जिनकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

10.3.2 गढ़वाली लोकगीतों का वर्गीकरण

मोहनलाल बाबुलकर का लोकगीतों का वर्गीकरण वैज्ञानिक है। संक्षेप में उनका वर्गीकरण देखिए -

संस्कारों के गीत	जन्म
	विवाह
	मृत्यु
देवी-देवताओं के स्तुति गीत	होली गीत
	नगेला गीत
	गंगा माई के गीत
	देवी के गीत
	भूमि पूजन के गीत
	कूर्म देवता के गीत
	हरियाली के गीत
	हनुमान पूजा गीत
	हील प्रस्तुति
	खितरपाल पूजन गीत
	अग्नि के गीत
खुदेड़ गीत	भाई के सम्बोधित गीत
	सास, ननद, जेठानी की निन्दा से सम्बन्धित गीत
	मां को सम्बोधित बेटी के गीत
	भादो और असूज, चैत के महीने गाए जाने वाले गीत
	फल-फूलों को सम्बोधित गीत
	मायके को सम्बोधित बेटी के गीत
विरह गीत	

सामूहिक गीत	थड्या, चौफुंला
तंत्र-मंत्र के गीत	रखौली समौण सैठाली नुखेल प्रभाव मोचक गीत
लघु गीत	बाल गीत (लोरियां) अक्कू-मक्कू अरगण-बरगण घुघती-वासूती नौनीकती वीस
वादियों के गीत	घौंघा भामा र्यूजी छुमा कुसुमाकोलिन जीजा-साली लसकमरी डिबली भकम वम सरैला गणेसी, हे यारि रिंजरा, गएली आदि

एवं सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियों पर आधारित गीत-

1. युद्धगीत एवं दानियों पर आधारित गीत।
2. नया जमाना।
3. नेता विषयक गीत।
4. आर्थिक संकट के गीत।
5. संक्रान्ति के गीत।
6. स्थानीय विषयों पर सम्बन्धित गीत।

10.3.3 गढ़वाली लोकगाथा गीतों की प्रमुख विशेषताएं -

लोकगाथा गीत के लिए अंग्रेजी में 'बैलेड' शब्द का प्रयोग किया जाता है। शब्दकोष के अनुसार- बैलेड वह स्फूर्तिदायक या रोचक कविता है, जिसको कोई जनप्रिय आख्यान रोचक ढंग से वर्णित होता है। इसी प्रकार प्रोफेसर किटरेज न बैलेड को ऐसा गीत कहा है- ''जिसमें कोई कहानी हो अथवा वह कहानी हो, जो गीत के माध्यम से व्यक्त की गई हो"। डा. सत्येन्द्र लोकगाथा गीत में कथा और गेयता को अनिवार्य मानते है। कतिपय अन्य विद्वानों ने भी लोकगाथा गीत की परिभाषा में मौखिक परम्परा और अज्ञात स्वयिताओं को भी सम्मिलित किया है। डा. दिनेश चन्द्र बलूनी के अनुसार, 'मानव सभ्यता के साथ-साथ नृत्यों, गीतों एवं गाथाओं का विकास हुआ होगा। जो मौखिक परम्परा के आधार पर श्रुतिरुप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचते गए। मौखिक परम्परा के आधार पर ही ये लोक जीवन में फैले हुए हैं। अस्तु उनमें परिवर्तन एवं परिवर्द्धन का पूरा समय मिलता रहा है। इसलिए लोकगाथा गीतों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि लिपिबद्ध करने पर इनकी गति एवं प्रगति रुक जायेगी, क्योकि लोकगाथा गीतों की जीवनशक्ति उनकी मौखिक परम्परा में ही निहित है। यह भी देखने में आता है कि कतिपय लोकगाथा गीतों का आदान-प्रदान स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं किया जाता है, ऐसे लोकगायक अपनी विद्या को प्रायः निश्चित् शिष्य परम्परा को ही देना चाहते है। क्योंकि इनके पीछे धार्मिक भावना और पवित्रता से जुड़ी हुई भावना निहित रहती है। फलतः कई लोकगाथाएं मंत्रों के समान अकाल-काल कवलित भी हो गई है। इस प्रकार लोकगाथा 'गी' लिखित और अलिखित गेय काव्य रचना है, जिसमें किसी लोक प्रिय आख्यान, घटना अथवा नायक के वर्णन के साथ-साथ ऐतिहासिक जो प्रायः विवादग्रस्त होती है'। उत्तराखण्ड गढ़वाल में लोकगाथा गीतों की एक समृद्ध परम्परा है। इन गाथा गीतों की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियां इस प्रकार है।

10.3.4 लोकगाथा गीतों की प्रमुख प्रवृत्तियां

1. संगीतात्मक- गढ़वाल के गाथागीत गेय और छन्दबद्ध होते है। गेय होना लोक गाथा गीत की प्रमुख विशेषता है। इसके सम्बन्ध में डा. प्रयाग जोशी का कथन है कि ''गाथा की रंगत गाने में है, कहने में नहीं"। गायन की परिपाटियां (लोकधुने) लोक में पीढ़ियों से निर्धारित है। उसमें सहजता और सरलता लाना लोक गायकों का अपना व्यक्तिगत गुण है। यहां तक कि गाथा का अर्थ समझे बिना भी मात्र लय के आधार पर करुणा, श्रृंगार, वीर और अन्य भावों की स्थिति का अनुमान किया जा सकता है। गाथागायन में अधिकांशत रुप से गायक किसी न किसी वाद्य प्रयोग करता है। राग-रागिणियों की शास्त्रीय विशेषताओं से परिचित न होन पर भी गाथागायकों का स्वर सधा हुआ रहता है। ''इससे प्रतीत होता है कि रचना-विधान के लचीले होने के कारण भी लोकगाथा गीत को इच्छित राग में ढाला जा सकता है। गढ़वाल के लोकगीतों में संगीत के साथ-साथ नृत्य का भी विधान मिलता है"।

2. टेकपद की पुनरावृत्ति - लोकगाथा गीतों की सबसे बड़ी विशेषता टेकपद की पुनरावृत्ति मानी जाती है। डा. उपाध्याय का मानना है कि गीतों की जितनी बार दुहराया जाए उतना ही उनमें आनन्द आता है। इन टेक पदों की आवृत्ति से गीत अत्यधिक संगीतात्मक होकर श्रोताओं को आनन्द प्रदान करते है। उदहारण के लिए पांडव गीत गाथा का एक गाथा गीत प्रस्तुत है-

''कोंती माता सुपिन ह्वे गए, ताछुम, ताछुम

ओडू-नोडू आवा मेरा पांच पंडऊ, ताछुम, ताछुम

तुम जावा पंडऊ गैंडा की खोज, ताछुम, ताछुम

सरादक चैंद गैंडा की खाल, ताछुम, ताछुम''।

समूह में गाए जाने वाले गाथा गीतों में गायक जब एक कड़ी गाता है, तो समूह के लोग टेकपद को दुहराते हैं। पुनः पुनः टेकपद की आवृत्ति से श्रोता गीत के भाव को समग्रता के साथ ग्रहण करने में सक्षम होता है।

3. दीर्धकथानक- लोकगाथा गीत का आरम्भिक रुप चाहे जैसा भी रहा हो, कालान्तर में उनके कथानक दीर्ध होते गए, इसका कारण यह भी है ये गाथाएं अतीत में श्रुतिपरम्परा के आधार पर एक गायक ये दूसरी तथा दूसरी से तीसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होती रही हैं। हस्तान्तरण के इस क्रम में मूल गाथा गीत के रुप के स्वरुप में कितना परिवर्तन होता है। इसे कहना कठिन है। लोकगाथा द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों के साथ पौराणिक आख्यानों को जोड़कर गाथा में प्रस्तुत कर देने से उनमें अमानवीय तथा पराप्राकृतिक तत्वों का समावेश हो गया, मूल गाथा के स्वरुप में इससे परिवर्तन तो आया ही उसका विस्तार भी हो गया। इस तरह लोकगाथा गीतों का कलेवर बढ़ता रहा है, और अतिशयोक्तियां भी इन गीतों के वर्ण्य विषयों की मूल आवश्यकता बन गई।

4. जनभाषा का प्रयोग- लोकगाथा की भाषा चिर नूतन रहती है। इसकी भाषा लोकगाथा के जीवन्त रूप का प्रतिनिधित्व करती है। लोकगाथा गीतों का प्रचार-प्रसार मौखिक परम्परा से होता है। अतः इस परम्परा में अप्रचलित शब्दों के स्थान पर गायक प्रचलित शब्दों का प्रयोग सहज भाव से करता है। गढ़वाल के लोकगाथा गीतों में गढ़वाली भाषा-बोली की मिठास गाथागायन में सर्वत्र मिलती है।

5. स्थानीय विशेषताएं- लोकगाथा गीत स्थान विशेष की संस्कृति और उसकी परम्पराओं का दिक्दर्शन भी कराते हैं। क्योकि लोकगाथाएं जीवन्त साहित्य का उत्कृष्ट रूप होती है। वे जहां-जहां पहुंचती है वहां की स्थानीय विशेषताओं को अपने में समाहित कर लेती हैं। स्थानीय वातावरण की सृष्टि करना ही लोकगाथा गीत की सबसे बड़ी विशेषता है, यदि स्थानीय वातावरण एवं देश काल की छाप लोकगाथा में नहीं है तो वह लोकप्रियता अर्जित नहीं कर

पाती है। यहां आपकी जानकारी और इस मत की पुष्टि के लिए हम उदाहरणार्थ गंगू रमोला की लोकगाथा को प्रस्तुत कर रहे हैं -

रमोली - द्वारिकाधीश कृष्ण को स्वप्न में गंगू का राज्य दिखाई देता है। कृष्ण ने गंगू से दो गज भूमि तपस्या के लिए मांगी, किन्तु उसने देने में आना-कानी कर दी। वह समझता था कि कृष्ण आज दो गज भूमि मांग रहा है कल पूरा राज्य मांग लेगा। गंगू की लक्ष्मी, बकरी के सिर में निवास करती थी। बकरी बाहर वीसी रेवड़ के साथ कुलानी पाताल चरने गई थी। कृष्ण ने उसी जंगल में प्रवेश किया और दिव्य बांसुरी से लक्ष्मी मोहिनी सुर बजाया, बकरी श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे खिंचती चली आई। गंगू की लक्ष्मी का हरण कर कृष्ण अपनी द्वारिका लौट गए। इस प्रसंग में 'स्थानीयता' रमोली की रमणीय भूमि कुलानी पाताल बकरियां आदि स्थानीय वातावरण को प्रस्तुत कर रही है। जिससे लोकगाथा सीधे रमोली उत्तराखण्ड गढ़वाल से सीधे जुड़ गई है। लोकभाषा के शब्द भी स्थानीयता को प्रस्तुत करने में सहायक होते है।

6. उपदेशात्मक प्रसंगों का अभाव- गढ़वाल की इन लोकगाथा गीतों में संस्कृत की नीति कथाओं का नीति श्लोकों की तरह उपदेशात्मक नहीं मिलती है। लोकगाथा में अत्याचारी को उसके दुष्कर्म के लिए दण्डित किए जाने की बात अवश्य वर्णित रहती है, त्यागी-तपस्वी और परोपकारी व्यक्ति की प्रशंसा मिलती है। गाथागायक लोकगाथाओं को सुनाते हुए धर्म की रक्षा, और अधर्म के नाश को जोर देकर श्रोताओं तक पहुंचाता है। ताकि लोक इन लोकगाथाओं से अच्छी शिक्षा ले सकें और बुरी आदतों को छोड़ सके।

7. संदिग्ध ऐतिहासिकता - गढ़वाली की लोकगाथाएं गीत रूप में भी प्राप्त होती है। इनमें अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन मिलते हैं। भले ही पात्र इतिहास और पुराणों से लिए होते हैं लेकिन उसके पराक्रम दान, ज्ञान और अन्य जीवन व्यापार इतने अतिरंजित कर वर्णित किए जाते हैं कि वें इतिहास न होकर तिलस्मी पात्र जान पड़ते हैं। अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों में इतिहास गौण पड़ जाता है और ये पूरी तरह काव्यानिक प्रतीत होने लगती हैं। इसका कारण श्रुत परम्परा से धटनाओं का विस्तृत होना माना जा सकता है। इनमें इतिहास तत्व, संकेत मात्र रह जाता है।

8. मौखिक परम्परा - लोकगाथा गीत लोकगाथा गीत के अनाम रचयिता के मुख से लोक में उतरते हैं, ये लिखित नहीं अपितु श्रुत होते हैं अतः परम्परा से सुने जाने के कारण पीढ़ी दर पीढ़ी आगे चलते रहते हैं। इनेक लोकगाथा गीत अब भी अलिखित अवस्था में हैं और परम्परागत लोकगायकों द्वारा मौखिक रूप से गाए जा रहे हैं। इसके सम्बन्ध में विद्वानों ने यह तर्क दिया है कि लोकगाथा गीत तभी तक जीवित रहते हैं जब तक उनकी मौखिक (वाचिक) परम्परा है। लिपिबद्ध होने पर उनका विकास रूक जाता है। यद्यपि डा. गोविन्द चातक, मोहनलाल बाबुलकर, डा. प्रयाग जोशी आदि ने कुछ लोकगाथा गीतों को संग्रहीत करने का प्रयास किया है फिर भी लिपिबद्ध लोकगाथा गीतों की संख्या बहुत कम है।

9. लोकरुचि के विषय - ये गढ़वाली लोकगाथा गीत लोक रूचि के अनुसार, प्रेम, त्याग, बलिदान, भक्ति आदि धर्म के मूलतत्वों पर आधारित होने से लोकरुचि को जाग्रत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं । इन भावनाओं को गेय और काव्यबद्ध रुप में प्रस्तुत करके लोकगाथा गायक यथावसर समाज में अपना जादू बिखेर देता है और लोकगाथा-गीतों से जुड़े समागमों में बड़ी भारी भीड़ को जुड़ती देखकर कोई भी ऐसा अनुमान सहज ही लगा सकता है कि लोगों की इन लोकगाथा गीतों को सुनने में कितनी रुचि है।

10. विद्वता का अभाव - लोकगाथा गीतों में विद्वता, अलंकरण और कृत्रिमता का अभाव रहता है। अर्थात लोकगाथाओं से साहित्य का सौन्दर्य नहीं रहता है। गाथाकार की अभिव्यक्ति, रस, छन्द अलंकार के बन्धन से दूर लोकरुचि का ध्यान रखती है जिससे उसकी सहज लोकगाथा में प्रस्तुत लोकगाथा गीत, अनगढ़ रचना होते हुये भी समाज द्वारा स्वीकृत होती है और श्रुति परम्परा से चलती रहती है। ये अनगढ़ लोकगाथा गीत अपनी गेयता के कारण तथा कथानक जैसी प्रस्तुति के कारण समाज में अपनी जाग्रत अवरूथा में रहते है। जब भी सामान्य साहित्यिक गीत लोगों द्वारा विसरा दिए जाते हैं।

11. सामूहिकता - लोकगाथा गीत जन सम्पत्ति हैं वे परम्परा से लोक द्वारा संरक्षित किए जाते रहे हैं। वे एक बड़े समुदाय के मनोरंजन के साधन है तथा लोकपरम्परा में धर्म और संस्कृति के संवाहक भी माने जाते हैं। अंग्रेजी के बैलेड शब्द का अर्थ नृत्य करना है। लगता है आदिम समाज में लोकमानस में गाथा गीतों की परम्परा में नृत्य भी प्रचलन में रहा होगा। तब क्रमोत्तर इनमें गीत के साथ संगीत और क्रमबद्ध नृत्य पद संचालन भी आरम्भ हुआ होगा। 'पंडों' ऐसा ही एक लोक गाथा गीत है जो अब नृत्यनाटिका का रुप ले चुका है। लोकगाथा गीत समूह में गाए जाने वाले गीत है जिनमें नृत्य की भी एक विशेष परिपाटी है। तथा एक विशेष अवसर पर ही इनका गायन-वादन होता है।

12. निष्कर्ष - गाथागायन पद्धति हमारी बहुत पुरानी पद्धति है। ऋग्वेद और ब्राहमण ग्रन्थों में भी अनेक गाथागीत संस्कृत ऋचाओं एवं श्लोकों में प्राप्त होते है। बौद्धकाल में गाथाएं समाज में प्रमुख मनोरंजन का साधन बन चुकी थी। भगवान बुद्ध ने कहा था कि मैं उसी कन्या से विवाह करुंगा जो गाथा-गायन में प्रवीण हो।

प्राचीन 'गाथासप्तशती' आदि रचनाएं समाज में लोकगाथाओं की गहरी पैठ के प्रमाण है। गढ़वाल में लोकगाथा गायक एक समृद्ध परम्परा है जो जागरियों, वाद्य वादकों (आबजी) और ब्राहमणों के द्वारा वाचिक रुप में आज भी सुरक्षित है। राजस्थान में पवाड़े के रुप में थे वीरगाथा गीत आज भी जनता में जोश जगा रहे हैं। भारत के सभी प्रान्तों की लोकभाषाओं में उनके लोकगीत है। उनकी गाथा गायन भिन्न-भिन्न पद्धतियां है और उनकी अपनी धुनें है। कुछ विद्वानों का मत है कि भारत में लोकगाथा गीतों का विकास उस समय हुआ होगा जब फ्रान्स आदि देशों में रोमांस साहित्य का सृजन हो रहा था। यूरोप में बैलेड का विकास सोलहवीं

शताब्दी तक हो चुका था। इंग्लैण्ड का लोकगाथाओं में राबिन हुड सम्बन्धी प्रणयगाथाएं अत्यन्त लोकप्रिय है। स्कॉटलैण्ड के 'सर पैट्रिक स्पेस' 'द कुअल ब्रदर' और 'एडवर्ड' जैसे कथागीत, तो फिनलैण्ड और इटली तक प्रचलित है। कालान्तर में यूरोपिय जातियों के साथ वे अमेरिका पहुंच गए। डेनमार्क में 'बैलेड' प्रायः औलोकिक पृष्ठभूमि वाले होते है। जिनमें जादू-टोना और रुपान्तरण जैसी बाते मुख्य होती है। गढ़वाली लोकगाथा गीतों में गेयता क साथ-साथ कथानकों में जादू होना और रुपान्तरण की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। सम्भवत इन लोक गाथाओं की वर्ण्य विषय वस्तु में परस्पर आपसी साहचर्य के कारण ये तत्व धुल मिल गए हो। लेकिन उन अनाम लोक गाथाकारों की ये अनगढ़ रचनाएं मानस की लोकचेतना से अलग नहीं की जा सकती है। ये अपनी माणिक संरचना में भी अनगढ़ रहने पर भी सभी के द्वारा सहज बोधगम्य होती है क्योकि ये लोकगाथा में लोकतत्व तथा उसके श्रुत इतिहास को लेकर सदियों से लगातार वाचिक परम्परा से चली आ रही है।

10.3.5 गढ़वाली लोकगीतों की प्रमुख प्रवृत्तियां

अपनी प्रभूत विशेषताओं के लिए हुए गएवाली लोकगाथा गीतों की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियां भी है। अब हम उन प्रवृत्तियों की संक्षिप्त जानकारी दे रहे हैं । इन प्रवृत्तियों को रुढ़ियां भी कहा जा सकता है। क्योंकि अधिकांश गाथाओं में ये एक जैसी देखने में आती है। ऐसा लगता है जैसे इनका लोकगाथा के वर्णन में आना अनिवार्य सा अपरिहार्य हो। ये प्रवृत्तियां निम्नलिखित है-

1. प्रेम, विवाह तथा सुन्दरियों को जीतकर लाने वाली प्रवृत्ति- गढ़वाली लोकगाथा गीतों में प्रेम, विवाह और सुन्दरियों की चर्चा अधिक मिलती है। जैसे- राजुला, मालूसाही में सौक्याणी देश (तिब्बत) को सुन्दरियों का निवास स्थान बताया गया है। कई भड़ स्वप्न में उनका दर्शन करके उन्हें पाने के लिए उतावले हो उठते है और उनकी खोज में चल पड़ते है। वहां उनके पतियों को हराकर सुन्दरियों को जीतकर ले आते है। योगी बनकर, योगी का वेश धारण कर प्रेयसी से मिलने का प्रयास, गढ़वाली लोकगाथा गीतों में वर्णित मिलता है। कुमांऊ में प्रचलित गंगनाथ गाथा में नायक जोगी का वेश बनाकर जोशीखोला में 'भाना' से मिलने आता है। राभी बौराणी में भी उसका पति जोगी का रुप धारण कर रानी के पातिव्रत्य की परीक्षा लेता है। श्रीकृष्ण गंगू के पास जोगी का वेश धारण कर उसकी रमोली में मिलते है और मुझसे भूमि मांगते हैं।

2. सतीत्व रक्षा को प्रमुखता- गढ़वाली लोकगाथा गीतों में स्त्री अपने सतीत्व की रक्षा के लिए आत्मबलिदान देने (सती) होने को तत्पर रहती है। गढ़ू सुम्याल की गाथा में गढ़ू कहता है 'यदि मेंरी मां विमला सतवन्ती होगी और मैंने उसके सहस्रधारों वाला स्तनपान किया होगा तो मेरी रधुकुंठी धोड़ी आसमान में उड़ने लगेगी'। अनेक गाथाएं इसकी प्रमाण है रणूरौत की गाथा में ,रणूरौत की माता अमरावती अपने पुत्र रणूरौत से कहती है कि तेरी मंगनी तेरे पिता ने स्यूंसला से

की थी। मुझे आज 'मेधू कलूनी' जबरदस्ती ब्याहकर ले जा रहा है। तुझे मेरी कसम है अपने शत्रु को मारकर स्यूंसला का डोला जीत कर ला। युद्ध में रणू के मरने के बाद स्यूंसला उसकी चिन्ता में कूदकर अपने सतीत्व की रक्षा करती हुई प्राण दे देती है। कालू भण्डारी कर गाथा में भी कालो भण्डारी के द्वारा बेदी के मंडप में छः फेरे फेर देने वाले रुपू को मार देने के बाद 'रुपू' के भाई 'लूला गंगोला' के द्वारा कालू भण्डारी को मार देने पर वह नवविवाहिता रुपू और काले भण्डारी के शव को अपने दोनों जांधों में रखकर चिता में भस्म हो जाती हैं। कफ्फू चौहान की गाथा में भी उसकी पत्नि और मां 'देवू' के द्वारा कफ्फू की सेना के पराजित हो जाने के समाचार को सुनकर चिता बनाकर जल जाती है। तैड़ी की तिलोगा की प्रेमगाथा में भी तिलोगा अमरदेव सजवाण के मारे जाने पर अपने दोनों स्तन काटकर अपनी आत्महत्या कर देती है। तिगन्या के डांडे में चिता बनाकर अमरदेव सजवाण के साथ तिलोगा के शव को भी भस्म कर दिया जाता है। इस प्रकार प्रेमी के साथ प्रेमिका की जीवनलीला का अन्त दिखाना गढ़वाल लोकगाथा गीतों की भरमार रही है।

3. जन्म व सन्तान सम्बन्धी रुढ़ियां - जन्म के समय नक्षत्र आदि के सम्बन्ध में गाथाओं में प्रचलित रुढ़ियां सर्वत्र एक जैसी मिलती है। जैसे - वीर का पुत्र ही होगा, 'जिसके बाप ने तलवार मारी उसकर बेटा भी तलवार मारेगा' । वंशानुक्रम परम्परा का वर्णन क्रम भी एक जैसे वणित जैसे- ''हिवां रौत का भिवां रौत, भिवां रौत का राणू रौत'' ।

4. शकुन-अपशकुन सम्बन्धी रुढ़ियां - शकुन-अपशकुन वाली प्रवृत्ति गढ़वाली लोकगाथा गीतों में सर्वत्र मिलती है। 'जीतू बगड़वाल' की गाथागीत में जब जीतू अपनी बहिन को बुलाने जाता है तो उसकी मां द्वारा बकरी के छींकने को अपशकुन बताया गया है। इसी पकार राधिका गाथा गीत में जब राधा की माता उसकी ससुराल के लिए पुवे बनाती है तो पहला पुवा तेल में डालते ही नीला पड़ जात है, यह देखा राधिका की मां शंका से व्याकुल हो उठती है- और सोचती है ''न जाने मेरी राधिका कैसी होगी'' ?

5. स्त्री को दोहद की इच्छा- वीर पुरुष की स्त्रियां दोहद अवस्था में अपने वीर पति को मृग का मांस खाने की इच्छा प्रकट करती है। तब वीर पुरुष अपनी नवविवाहिता पत्नी की दोहद इच्छा पूरी करने के लिए जंगल में जाकर शिकार खेलने जाता है और वहां संकट में फंस कर मर जाता है, जो विजयी होकर आता है उसके विषय विलास का भव्य वर्णन लोकगाथा गीत प्रस्तुत करते हैं कि उसकी रानी ने अपना कैसा श्रृंगार किया है। इस वर्णन में अश्लीलता नहीं रहती लेकिन अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन रहता हैं।

6. कोमल संवेदनाओं से जुड़े लोक विश्वास- गढ़वाली लोकगाथा गीत, आस्था विश्वास और रुढ़ियों से जुड़े हुए है। ज्योतिष पर विश्वास, शकुन-अपशकुन की धारणा, लोक रुढ़ियां जैसे- सुअर का धरती खोदना, सूखी लकड़ी ढोता आदमी, कान फड़फड़ाता कुत्ता, भेड़ियों और ऊल्लू की आवाजें, हंसिया या कुदाली-फावड़े पर धार चढ़ाते समय उसका चटकना आदि अपशकुन

के रुढ़िगत विश्वास है। शुभ संकेतो में पानी का गागर भर कर लाने वाली स्त्री, कबूतर या धुधती पक्षी का दिखना शुभ माना जाता है।

7. तन्त्र-मन्त्र में विश्वास- ये लोकगाथा गीत, तन्त्र-मन्त्र के प्रभाव का भी बखान करते है। जोगियों के कांवड़ की जड़ी, बोक्साड़ी विद्या, ज्यूदाल, तुम्बी का पानी आदि में गढ़वाली जनमानस का विश्वास इल लोकगीतों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय होता है। जगदेव पंवार और सदेई की गाथा में बलिदान का महत्त्व सिदुवा-विदुवा का संकट काल में सहायक होना आदि लोकविश्वासों का भी वर्णन गाथागीतों में मिलता है। निष्कर्षतः लोकगाथा गीत लोक विश्वास और आस्था को लेकर रचे गए मिथकीय आख्यान गीत है जो परम्परा के वाचिक साहित्य के रुप में चले आ रहे है।

7. 'चांचड़ी' लोकगीतों की प्रमुख विशेषताएं- पूर्व में अभी हमनें आपकों गढ़वाली के लोगाथात्मक गीतों की प्रकृति एवं विशेषताओं से परिचित कराया था, उसमें आपने बाजूबन्द, थड़िया, चौफुलस, तान्दी, छोपती आदि गीतों के बारे में जाना था। चांचडी़ के अन्तर्गत पूर्व में वर्णित सभी प्रकार के गीत, जिन्हें नृत्यगीत भी कहा जाता है आ जाते है। आपकों यह भी अच्छह तरह जान लेना चाहिए कि चांचड़ी के अन्तर्गत आने वाले सभी प्रकार के गीत है। इन्हें नृत्यगीत भी कहा जा सकता है और नृत्यों के नाम भी वहीं है जो गीतों के नाम पर है। जैसे- बाजूबन्द लोकगीत भी है और लोकनृत्य भी, उसी प्रकार थाड़या या चौफुला गीत भी है तो नृत्य भी। इन सभी नृत्य या लोकगीतों को 'चांचरी' के नाम से पुकारा जाता है। चांचरी या चांचड़ी गीतों के विषय में नन्दकिशोर हटवाल का कहना है कि ''मेरे विचार में ढ़ंकुड़ी, चांचरी, चांचड़ी, झोड़ा, थाड़या, झुमैला, दुस्का, जोड़ ज्वैड़, छोपती, तान्दी आदि ये सब नाम एक ही गीत नृत्य के लिए प्रचलित नाम है। जैसे- कई बार चांचरी नृत्य में प्रचलित विविध प्रकार के हस्तबन्धनों, पदसंचालनों, पदगति अथवा अन्य प्रकार के अलंकारों को अलग नाम से पहचानने या सम्बोधित किए जाते है। जैसे- कि कुमांऊ के कुछ इलाकों में चांचड़ी-झोड़ा जब तेज गति से होने लगता है तो उसे धसेल, धस्येला, धौंस्योला या दरी भी कहते है। हटवाल ने अनेक विद्वानों द्वारा वर्गीकृत किए गए लोकगीतों की तुलना करके अपना निर्णय दिया है कि इन विद्वानों ने भी प्रकारान्तर इन लोकगीतों को एक ही वर्ग का माना है। जो चांचड़ी के अन्तर्गत आ जाते है। वे झुमैलों को संस्कृत के 'जम्मालिका' से निष्पन्न मानते हैं तथा महाकवि कालिदास के समय में भी ऐसे कुछ लोकगीत एवं लोकनृत्य कर प्रचलन था स्वीकार करते है। वे लिखते है चांचरी नृत्य का उल्लेख महाकवि कालिदास के विक्रमोर्वशीयम नाटक में भी किया गया है। इसमें चर्चरी नृत्य का अर्थ गीत-खेल-क्रीड़ा और ताल देना बताया गया है। गढ़वाली में 'र' की ध्वनि 'ड़' में परिवर्तित हो जाने से चाचरी या चांचरी-चांचड़ी हो गई। गढ़वाली- कुमांऊनी में 'ज' की ध्वनि 'झ' में बदल जाती है। अतः जोड़ा का 'झोड़ा' शब्द नृत्यगीत के लिए व्यवद्वत होने लगा है। डा. गोविन्द चातक के अनुसार, 'जो नृत्य अवकाश के अवसर पर आंगन (थाड़्) में होते है उन्हें 'थाड़्या' कहा जाता है। 'स्थल' या समतल भूमि में खेले जाने ये यह स्थाल्या ये बिगड़कर

'थाड्या' बना है। गढ़वाली में यही शब्द 'थाल' या 'थौल' के रुप में भी प्रयुक्त होता है और 'थाड्' के रुप में भी! डा. चातक लिखते है, 'लोक आमोद-प्रमोद से सम्बन्धित नृत्य प्रायः सामाजिक नृत्यों के अन्तर्गत आते है। स्थान परिस्थितियों और काल के अन्तर के कारण अनेक नामों से पुकारे जाते है'। मोहनलाल बाबुलकर ने गढ़वाली गीतों का वर्गीकरण करते हुए थाड़या गीतों को सामूहिक गेय गीत वर्ग में रखा है, तथा 'सुमेलों' को खुदेड़ गीत माना है। डा. पोखरियाल ने अपनी पुस्तक 'कुमांऊनी लोकगीत और लोकगाथाएं' पुस्तक में चांचरी और झोड़ा को दो पृथक-पृथक वर्ग में जिन गीतों के साथ रखा है वे भाव वर्ण्यविषय, टेक्निक आदि की दृष्टि से देखने में एक समान लगते है। अतः स्पष्ट है कि चांचड़ी, थाड्या, झोड़ा एक ही प्रकार का नृत्यगीत है। इनकी कुछ विशेषताएं निम्नवत् है-

8. चांचड़ी लोकगीतों की विशेषताएं-

1. टेक - इन उपरिवर्णित लोकगीतों (नृत्यों) में लोकगाथाओं और इतिहास पुराण का धाल-मेल है। चांचड़ी नृत्य गीतों में लोकगाथाओं को जिनमें 'जीतू बगड्वाल' पांडव, सिदुवा-विदुवा, सूर्जकौल, माधो सिंह भण्डारी क गाथाएं आती है में 'द्विभाई रम्बोला रम्मा छम्मा' या 'जीतू बगड्याला जीतू मारि झमाको' 'टेक' लगने से ये गाथा गीत गाने में सुन्दर तुकान्त और कर्णप्रिय लगते हैं । साथ ही नृत्य में पद विन्यास भी पद ध्वनि की सामूहिक थाप पर एक मधुर समां बांध देते है। टेक इन गीतों की एक विशेषता है, जो कि बार-बार दोहराई जाती है। जैसे- उपर दो टेक पंक्तियां उदहारणार्थ दी गई है।

2. पट्टदार शैली - लोकगीतकार पट्ट शैली के माध्यम से चांचड़ी गीतों की रचना करते है। इसे जोड़ मिलना भी कहते है। इस शैली में लोक रचनाकार तुक और छन्द मिलाने के लिए प्रथम पद को निरर्थक बनाते है जैसे-'हलीवो रुकमस डोट्याली' या 'कियो मेरो कले लछिमा' भांगुली को प्योण आदि को उदहारण नन्दकिशोर हटवाल ने दिए है। कई लोकगीतों में टेक और पट्टदार शैली दोनों की तकनीक एक साथ प्रयुक्त मिलती है। जैसे- 'सरभायों गढ़वल छो छम बल' या 'गणेशी जा गणेशी घौर'।

3. संवादात्मक शैली- गढ़वाली लोकनृत्य गीतों में संवादों और प्रश्नोत्तरों की एक विशेष शैली विकसित हुई है। जीजा-साली, देवर-भाभी, नायक-नायिका के गीत प्रायः संवाद या प्रश्नोत्तर शैली में मिलते है। लोकगाथाओं में लम्बे संवाद गीत मिलते है। सिदुवा-विदवा का गीत इसका प्रमाण है। श्री नन्दकिशोर हटवाल के अनुसार- कभी-कभी एक की प्रश्न को बार-बार दोहराने और उत्तर देने में भी बार-बार पूर्व पंक्तियों के दोहराव के सज्ञथ महज एक नया शब्द जोड़ देने की तकनीक अपनाकर लम्बे-लम्बे गीत तैयार हो जाते है।

4. सम्बोधन शैली- का प्रयोग भी लोकगीत को रोचक बनाता है। चांचड़ी लोकगीत, करुणा, दुखः-सुख और वियोग-श्रृंगार के भाव गीतों में और अधिक द्रवणशीलता ले आते है।

नायिका, धुधती, पहाड़ी, कुएड़ी आदि को देखकर पिताजी यां मां को सम्बोधित करके अपने मन के भावों को व्यक्त करती है- धार्मिक गाथा गीतों में भी सम्बोधन शैली की प्रचुरता मिलती है।

5. श्रृंगार रस की प्रचुरता- आधुनिक समय में बहुत से पुराने गीत आज भी अपनी ताजगी से लोकमानस का चित्त हरण कर लेते है। इन्हें सुनकर श्रोता भाव विभोर हो उठते है। जैसे- ''पोसतू का छुमा, मेरी भायानी बौ'' के बौल और उसकी टटकी लोकधुन, नवयुवक-युवतियों और रसिको को भाव विभोर कर देती है। आगे इस गीत का संक्षिप्तांश आपकी जानकारी के लिए गढ़वाली एवं उसके हिन्दी अनुवाद सहित दिया जा रहा है- 'जीजा-साली के गीत' प्राचीन समय से ही ही गढ़वाली लोकमानस की रुचि के विषय रहे है और आज भी नई नई धुनों और गीतों की नई शैली तथा नृत्यनिर्देशन के सज्ञथ लिखे और प्रदर्शित किए जा रहे है। जैसे- सुप्रसिद्ध नृत्यगीत है- ''ग्वीरल फूल फुलिगे म्यारा भीना''। यह ऋतुगीत भी है। इसके बोल देखिए-

''ग्वीराल फूल फुलीगे म्यारा भीना,

मलू-बेड़ा फ्योंलडी फुलिगे भीना

झपन्यालि सकिनि फुलिगे भीना

धरसारी लगड़ी फुलिगे भीना

झूल थान कूंजू, फुलिगे भीना

गैरी गदिनी तुशारि फुलिगे भीना

डांडयू फुलिगे बुरांस, म्यारा भीना

डल फूलों बसन्त, बौड़िगे भीना

बसन्ती रंग मा, रंगैदे म्यारा भीना

ग्वीराल फूल फुलीगे, म्यारा भीना।''

अर्थात् हे जीजा जी! ग्वीराल के फूल खिल गए हैं। मालू, बेजू, फ्योंली खिल गए है। पत्तेदार सकिना फूल गया है। हे! जीजा जी! घर के नजदीक की सरसों फूल गई है, कुनजू फूल गया है। छोटी पहाड़ी नदी के किनारे की 'लुसरी' फूल गई है। वृक्षों में फूल आने लगे गए है। बुरांश की डालियां फूल गई है। जीजा जी! डालियों पर बसन्त फूल खिलाने आ गया है मुझे भी तुम बसन्ती रंग में रंग दो। जीज जी! ग्वीराल (कचनार) के वृक्षों पर फूल खिलने लग गए है।

गढ़वाल लोकगीतों में भी श्रृंगार रस अपनी प्रभूत मात्रा में प्राप्त होता है। गढ़वाल की प्राकृतिक छटा ही ऐसी ही कि यहां के युवाओं के हृदय में अपने आप श्रृंगार पनपनें लगता है और वह अपनी संमोहकता से नायक-नायिका को भाव-विभोर कर देता है। बड़े-बड़े शूरवीर (भड़) भी इसके सम्मोहन से बच नहीं पाते हैं- कहते है 'रुक्मा' माधोसिंह भण्डारी की प्रेमिका थी। कुछ लोगों का कहना है कि वह माधो सिंह की भौजाई (भाभी) थी। माधोसिंह भण्डारी पर आधारित गीत देखिए-

''कनु छ भण्डारी तेरो मलेथा?

ऐ जाणू रुकमा मेरा मलेथा

मेरा मलेथा धांड्यो को धमणाट

मेरा मलेथा बाखर्यों को तादो।

कैसो छ भण्डारी तेरो मलेथा ?

देखेण को भलों मेरा मलेथा।

लगदी फूल मेरा मलेथा।

गौं मुड़े को सेरो मेरा मलेथा

गौं मथे को पंधारों मेरा मलेथा।

कैसों छ भण्डारी तेरो मलेथा?

पालिंगा की बाड़ी मेरा मलेथा

लासण की क्यारी मेरा मलेथा

बांदू की लसक मेरा मलेथा

बैखू की ठसक मेरा मलेथा

ऐ जाणू रुकमा मेरा मलेथा।''

अर्थात्- भण्डारी! कैसा है तेरा मलेथा ? ये रुकमा! तू मेरे मलेथा गांव में आ जा! रुकमा! मेरे मलेथा में भैसों का खरक है। गोरु के गले में बंधी घंटियों की धमण्धार (खनखनाहट) है। बकरियों के झुण्ड हैं। भण्डारी तेरा मलेथा कैसा है। रुकमा! मेरा मलेथा देखने में रमणीक है। उसमें चलती नहर हैं। गांव के नीचे खेत है। मेरे मलेथा गांव के ऊपर पनघट है। भण्डारी! तेरा मेरा

मलेथा कैसा है ? रुकमा! मेरे मलेथा गांव में लहसन की क्यारियां हैं। पालक का बाड़िया है। मेरे मलेथा में सुन्दरियों की लचक हैं, पुरुषों की शान हैं। रुकमा, तू मेरा मलेथा आ जा।

9. धार्मिक गीत- बिनसर गढ़वाल का सुप्रसिद्ध शिव मन्दिर है। इस मन्दिर पर आधारित धार्मिक गीत के बोले देखिए- इसमें देवी विन्सर टेकपद है-

विन्सर का डांडा देवी विन्सर।

ह्यूं कती आयूं च देवी विन्सर।

धुण्ड-धुण्डयों को ह्यूं च देवी विन्सर

त्येरी जातरा पूरी कलू विन्सर।

जांठी ट्एकी औंलू विन्सर

छाया रख्या माया देवी विन्सर

अर्थात् 'हे देवी! पहाड़ी पर विन्सर (महादेव) का मन्दिर है। हे देवी वहां बर्फ कितना गिरा है ? घुटनों तक बर्फ है। मैं तेरी यात्रा पूरी करूंगा विन्सर देवता। छड़ी टेककर आउंगा। उपनी छांव और प्यार रखना देवता। मैं तेरे दर्शन को आऊंगा विन्सर देवता'।

आपकी जानकारी के लिए अब हम एक और धार्मिक नृत्यगीत प्रस्तुत है। जिसका टेकपद है- 'झमाकों' यह गीत नन्दा भगवती पर आधारित है-

''सतवन्ती माता झम्मा को, मैणावन्ती माताझम्मा को।

मैणा की पुतरी झम्मा को, बाई गंवारा झम्मा को,

गौरा का गणा झम्मा को, क्वे देश को राजा झम्मा को,

दक्षिण को राजा झम्मा को, तू दैवी न कारा झम्मा को

मैणावन्ती माता झम्मा को, बाई गंवारा झम्मा को,

गौरां का मंगणा झम्मा को, क्वे देशों राजा झम्मा को,

उत्तराखण्ड को राजा झम्मा को, तू देणी न कारा झम्मा को,

एक हाथ त्रिशूला झम्मा को, एक हाथ डमरु झम्मा को

शंकर भगवाना झम्मा को, बणीगी भगवान झम्मा को

अर्थात्- सतवन्ती माता मैणावती माता को प्रणाम (झम्मा को निरर्थक पद) केवल पद पूर्ति के लिए तथा ताल मिलाने में सहयोगी वाक्य है। मैणा की पुत्री गौरा, गौरा के गणों को प्रणाम। दक्षिण के राजा (आए है) तू फलदाई न होना। गौरा का विवाह प्रस्ताव लेकर आए हैं फलदाई न होना। उत्तराखण्ड के राजा आए हैं उस पर अनुकूल होना। कैलाश के राजा आए हैं उन पर अनुकूल होना। भगवान शंकर की बारात सज रही है। उनके एक हाथ में त्रिशूल और एक हाथ में डमरु है। शंकर भगवान को दाहिनी होना। गौरा शंकर की जय हो। बभूतधारी जोगी ने अपना विकट रुप छोड़ दिया है। जा बेटी गौरा फ्यूंली खिल गई हैं भगवान ने सुन्दर रुप बनाया है। बारात आ गई है झम्मा को अर्थात् आनन्द आ गया हैं।

चन्द्रामती की लोकगाथा में लोक संगीत के बोल इस प्रकार होते हैं-

नाच नाचों चन्द्रामती चंदन की चौकी,

कैसे नाचूं ? कैसे खेलू ? चंदन की चौकी।

ब्याली ल्यायों नाक नथुली कां धाले बुवारी

मै त गयो नन्दा का द्यूल भेटुंली चढायों। नाच नाचों चन्द्रामती

कैसे नाचूं ? कैसे खेलू ? चंदन की चौकी।

ब्याली ल्यायों सरि सिसफूल कां धाले बुवारी ?

मै त गयो नन्दा का द्यूल, भेटुंली चढ़ायों। नाच नाचों चन्द्रामती

कैसे नाचूं ? कैसे खेलू ? चंदन की चौकी।

ब्याली ल्यायों गात धाधरी का धाले बुवारी ?

मै त गयो नन्दा का द्यूल भेटुंली चढायों। नाच नाचों चन्द्रामती चंदन की चौकी।

अर्थात- चन्द्रामती चन्दन की चौकी में नाचों! मैं चन्दन की चौकी में कैसे नांचू कैसे खेलूं ? अरी बहू! कल ही तो नाक की नथ लाया था वह कहां डाला ? मैं तो नन्दा के देवालय गई थी, मैंने भेंट चढ़ा दी। मैं चन्दन की चौकी में कैसे नांचू ? अरी मैं नन्दा के मन्दिर में भेंट चढ़ा आई। चन्द्रामती! चन्दन की चौकी में नाच। अब मैं चन्दन की चौकी में कैसे करके नांचू ? मेरे पास धगुली नहीं है। अरी बहू कल ही तो धागुली लाई थी ? वह तो मैंने नन्दा जी के मन्दिर में चढ़ा दी है। अब मैं बिना (आभूषणों) के चन्दन की चौकी पर कैसे करके नांचू। हे चन्द्रामती! चन्दन की चौकी पर नाच ? इस गीत में स्त्री के सभी आभूषणों का वर्णन आता है।

10. झूल नगेलों- देवता (प्राचीन नागवंश के राजा रहे हैं) वे गढ़वाल में नाग देवता के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनका लोकगाथा गीत देखिए-

झूल नगेलो आयो जसिलों देवता।

झूल नगेलो आयो रैती देंद जस,

झूल नगेलो आयो मुलक लगे घेउ,

झूल नगेलो आयो लसिया की धाती,

झूल नगेलो आयो बजीरा की गादी,

झूल नगेलो आयो तू मोतू का सिर,

झूल नगेलो आयो छै मैन का बालक,

झूल नगेलो आयो भौंकोर्यो का रुगाट,

झूल नगेलो आयो धाण्डयूं का धमणाट

झूल नगेलो आयो परचो बदौंद।

अर्थात- ''देवालय में नगेला देवता आया है- यशस्वी देवता। देवल में नगेला आया है, अपने भक्तों को यश देता है। देवालय में नगेला आया है देश भर में ख्याति हो गई है। लस्या की थाती में लजिश की देवभूमि में और मोतू के सिर में नगेला आया है। छः माह के बालक पर नगेला आया है। भौंकरियों की रुणआणट सुनकर, घंटों की घनघनाहट सुनकर देवालय में नगेला आया है। वह अपना परिचय देता है, जौं के चावल बनाता है, हरियाली उगाता है। देवालय में भैंस दूध देती है। क्वारे को ब्याह देता है। देवालय में नगेला (नाग देवता) आया है''।

इस प्रकार लोकगीत, गढ़वाली जनमानस की धार्मिकता, ओजस्विता, दानवीरता, कर्तव्यपरायणता, श्रृंगार-प्रेयता, प्रकृति प्रेम, विरह वेदना, और मानवीय भावनाओं को अभिव्यक्त करने के साधन है। जो कि अनाम लोकगाथा गीतकारों की अद्भुत करामाती प्रतिभा से उपजे है और समाज में व्याप्त है तथा लोक के मनोरंजन, तथा लोक व्यवहार के शिक्षक बनकर एक सभ्य आस्थावान समाज करा निर्माण करने के लिए अपनी विशिष्टता के कारण अजर-अमर है। लेकिन परम्परा से श्रुत होने के कारण, तथा वर्तमान में नए-नए संगीत प्रचार और पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से परिवर्तन होने के कगार पर पहुंच रहे हैं। क्योकि पाश्चात्य संगीत का प्रभाव इन्हें विनष्ट कर देगा। यहीं लोकगाथा गीतों के भविष्य पर प्रश्नचिह्न है।

10.5 सारांश

लोकगीत मन की रागात्मक प्रवृत्ति से उपजते हैं। इनमें मनुष्य और उसके समाज के हर्ष विषाद के छन्दबद्ध नमूनों के रुप में गीतधाराएं अनाम कवियों के कंठ स्वरों से निकलती हैं। जहां वे गीत हैं वहीं नृत्य भी है। ढोल वादक चैत के महीने में चैती गाते हैं। जिनमें विवाहिता स्त्री को पातीव्रत्य में रहने व अपने कुल की मर्यादा का आभास कराते हैं। ऋतु गीतों में खुदेड गीत, बसन्त ऋतु में गाये जाते हैं तथा चौमासे वर्षा ऋतु में। प्रणय गीतों में पति-पत्नी व प्रेमी-प्रेमिका के संयोग-वियोग के बिम्ब होते हैं। छोपती, तान्दी, थड्या, चौफुंले, झुमैलों, बाजूबन्द, झूड़े आदि चांचरी गीतों के अन्दर समाहित है। इन लोकगीतों की विशेषता एवं इनकी प्रवृत्तियां भिन्न-भिन्न है। जिनमें काफी कुछ अन्तर भी मिलता है। लोगगीत और लोकगाथा गीत दोनों अलग-अलग प्रकार की शैली रुपों एवं वर्ण्य विषयों को लेकर चलते हैं।

इस इकाई का अच्छी प्रकार अध्ययन करने के बाद आप समझ गए होंगे कि -

1. लोकगीत किसे कहते हैं और उनकी विषय वस्तु में लोकतत्व कैसे समाया रहता है ?
2. गढ़वाली लोकगीतों का स्वरूप कैसा है ?
3. गढ़वाली लोकगीतों के पद्यात्मक साहित्य की विशेषताएं क्या हैं ?
4. प्रमुख गढ़वाली लोकगीत कौन-कौन से हैं ?
5. लोकगीतों के कथानक और उनकी विभिन्न शैलीयों का क्या आशय है।
6. गढ़वाली लोकगीतों की प्रमुख विशेषताएं तथा उनकी प्रमुख प्रवृत्तियों कौन-कौन सी हैं।

10.6 शब्दावली

औजी (आवजी) -	ढोल वादक
उदंकारी -	पहाड़ की चोटियों पर अकस्मात दिखने वाला प्रकाश
चौंफुला -	एक प्रकार की लोकगीत जिनमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार फलों की प्राप्ति होती है।
झुमेलो -	एक प्रकार की लोकगीत या लोकगीतों की अन्तिम कड़ी
पश्वा -	गढ़वाल का एक देवता
धुंयाल -	पूजा के समय उठने वाला धुआ अथवा पहाड़ की चोटियों पर प्रातः सूर्योदय के समय उठने वाला धुंआ

पंवाड़ा - गढ़वाल के वीर बहादुरों के गीत

पालसी - भेड़-बकरियों कर चरवाहा

पाखा - पहाड़ का एक भाग

भूम्याल - भूमि पाल, एक देवता विशेष

स्यूंसाठ - नदियों का स्वर्ग

हंसिया - रसिक

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

प्र. 1 का उ. - संगीतात्मकता, जनभाषा का प्रयोग, मौखिक परम्परा, लिखित व अलिखित गेय काव्य

प्र. 2 का उ.- ''कनु छ भण्डारी तेरो मलेथा?

ऐ जाणू रुकमा मेरा मलेथा

मेरा मलेथा धांड्यो को धमणाट

मेरा मलेथा बाखर्यों को तादो।

कैसो छ भण्डारी तेरो मलेथा ?

देखेण को भलों मेरा मलेथा।

लगदी फूल मेरा मलेथा।

गौं मुड़े को सेरो मेरा मलेथा

गौं मथे को पंधारों मेरा मलेथा।

कैसों छ भण्डारी तेरो मलेथा?

पालिंगा की बाड़ी मेरा मलेथा

लासण की क्यारी मेरा मलेथा

बांदू की लसक मेरा मलेथा

बैखू की ठसक मेरा मलेथा

ऐ जाणू रुकमा मेरा मलेथा।‘‘

प्र. 4 का उ. - लोकगाथा गीतों की चार प्रवृत्तियां निम्नलिखित है-

1. सतीत्व रक्षा की प्रवृत्ति,
2. जन्म और सन्तान सम्बन्धी रुढ़ियां,
3. सुन्दरियों को जीतकर लाने की प्रवृत्ति,
4. भड़ों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन

प्र. 5 का उ.- झुमैलों को संस्कृत में जम्भालिका कहते हैं। उदाहरण-

‘‘ऐगैन दादू झुमैलों, रितु बौडीक झुमैलो

बरा मैनों की झुमैलों, बारा बसुन्धरा झुमैलों

बारा ऋतु मा झुमैलों को रितु प्यारी झुमैलों

बारा ऋतु मा झुमैलों, बसंत ऋतु प्यारी झुमैलों”।

प्र. 8 का उ. - छोपती में संयोग-वियोग दोनों अवस्थाएं मिलती है। प्रेम गीतों के अन्तर्गत बाजूबन्द में भी छोपती के समान ही संवाद गीत होते है। छोपती चौंक में नृत्य के साथ समूह में गाई जाती है और बाजूबन्द दो स्त्री-पुरुषों के बीच निजता के साथ वनों के एकान्त में गाये जाते है। छोपती का एक उदाहरण प्रस्तुत है-

काखड़ की सींगी, मेरी भग्यानी हो,

रातू कु सुपिमा देखि, मेरी भग्यानी हो,

दिन आख्यूं रींगी, मेरी भग्यानी हो,

ढोल की लाकूड़ी मेरी भग्यानी हो,

तू इनी दिखेन्दी, मेरी भग्यानी हो

10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गढ़वाली लोककथाएं- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 1996, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

2. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य- डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

3. उत्तराखण्ड की लोककथाएं- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

4. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना- मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।

5. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य- डा. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।

6. गढ़वाली लोक गीत विविधा- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

7. धुंयाल- अबोध बन्धु बहुगुणा, गढ़वाली भाषा परिषद? देहरादून- संस्करण अगस्त 1983

10.5 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न-1 गढ़वाली लोकगीतों की प्रमुख विशेषताएं बताओ।

प्रश्न- 2 गढ़वाली लोकगीतों के विकास एवं उसकी प्रवृत्तियों पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।

इकाई 14 गढ़वाली लोकगाथाएं - स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 गढ़वाली लोक गाथाओं का स्वरूप एवं साहित्य
11.3.1 गढ़वाली लोकगाथाओं का वर्गीकरण और गढ़वाली लोकगाथाएं
11.3.2 गढ़वाली लोक गाथाओं की विशेषताएं
11.3.3 मिथकों पर विश्वाश
11.3.4 गढ़वाली लोक गाथाएं : कुछ अन्य प्रवृत्तियां
11.3.5 गढ़वाली लोक गाथा और पावड़ा
11.4 जागर : एक लोकगाथा गायन पद्धति
11.4.1 रणभूत तथा वार्ताएं
11.4.2 कृष्ण से सम्बन्धित जागर गाथाएं
11.4.3 चन्द्रावली की वार्ता
11.5 सारांश
11.6 अभ्यास प्रश्न
11.7 शब्दावली
11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
11.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1. प्रस्तावना

लोकगाथाएं हमारे लोक साहित्य की धरोहर हैं। जो हमारे इतिहास, पौराणिक मान्यताओं और विश्वासों तथा जीवन शैली का परिचय देती हैं। जुगल किशोर पटशाली के अनुसार, ''पूर्ववती सामाजिक संरचना, इतिहास मान्यताएं एवं मानसिकता को अपनी गठरी में बांधकर ये लोकगाथाएं हम तक पहुंचाती हैं। इन गाथाओं के मूल व उत्पत्ति के कारण जानने के लिए जब हम सुदूर अतीत की ओर झांकते हैं, तो हमारी बुद्धि व आँखें सृष्टि के प्रारम्भिक काल पर जाकर ही विराम लेती हैं"। लोकगाथा का दर्जा प्राप्त करने के लिए जिन प्रमुख बातों पर उन्हें खरा उतरना चाहिए वे निम्नलिखित हैं-

1. गाथा का काल 2. गाथा की विषय वस्तु 3. गाथा का लोक संगीत/लोक धुन 4. गाथानायक की समाज में पैंठ की गहराई 5. गाथा द्वारा श्रोताओं को दिए गए मानवीय मूल्य व समाज को दिया संदेश 6. गाथा द्वारा समाज अथवा लोकमानस में स्थापित किया गया महत्त्वपूर्ण आदर्श आदि,

लोकगाथा गायन भी जब जो चाहे जैसा करना चाहे इसकी छूट नहीं दी जाती है। लोकगाथा में हम किस महापुरुष की, किस योद्धा की, किस वीर की, किस देव तुल्य व्यक्ति की विरुदाबलि गाए इसका निर्णय भी लोक, सोच विचार कर करता है। इसके गायन के लिए एक निश्चित् नियम व प्रक्रिया में रहना अत्यावश्यक है। लोकगाथा गायन की पद्धति, उसके छन्द, लय-ताल, संवाद, प्रवचन, स्वरों को गाते समय उतार-चढ़ाव, वाद्य यन्त्र की धुन के साथ ताल-मेल, भाव और नाट्य की एकरुपता, नृत्य की संगतता पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

गाथाओं के गायन की अलग-अलग शैलियां प्रचलित हैं जो कि भाषा और वर्ण्यविषय के कारण निम्नवत् अभिहित की जाती है। जैसे- तमिलनाडू की हरिकथा 'कलाक्षेपम्', आन्ध्र प्रदेश की 'बुर्राकथा' महाराष्ट्र और राजस्थान के 'पवाड़े', उत्तर प्रदेश में 'आल्हा' गोपीचन्द और पूरनमल के गाथागीत, छत्तीसगढ़ की रामायण और महाभारत (तीजनबाई की पाण्डुवानी) महाभारत गाथा और पंजाब का 'हीर-रांझा' ये सभी अत्यधिक प्रिय लोक गाथाओं की शैली और वर्ण्य विषय की सामग्री हैं।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने से आप जान सकेंगे -

1. लोकगाथा किसे कहते हैं ?

2. लोकगाथाओं का प्रतिपाद्य विषय क्या होता है ?

3. लोकगाथाएं कितने प्रकार की होती हैं ? उनका वर्गीकरण क्या हैं ?

4. लोकगाथाओं की विशेषता क्या है ?

5. लोकगाथाओं की प्रमुख प्रवृत्तियां कौन-कौन है ?

6. पवाड़ा, जागर, लोकवार्ता क्या हैं ? उसकी गायन पद्धति कैसी हैं ?

7. लोकगाथाओं में प्रमुख लोकगाथाएं कौन सी हैं ? उनका लोक साहित्य, 'गढ़वाली भाषा' में हिन्दी अनुवाद देखकर आप सरलता से गढ़वाली भाषा की मधुरता से परिचित हो सकेंगे तथा उसमें प्रयुक्त प्रतीक, बिम्ब, उपमान योजना जैसे काव्य तत्वों का भी आभास पा सकेंगे।

11.3 गढ़वाली लोकगाथाओं का स्वरूप एवं साहित्य

आंचलिकता के प्रभाव के कारण जो जिस अंचल की लोकगाथा होती हैं वह वहां की लोकधुन, लोक संस्कृति, लोक विश्वास, लोक रुढ़ियां, लोकोत्सव और लोकभाषा का ठाठ लिए होती हैं। लोकगाथाओं में क्षेत्र विशेष का भूगोल इतिहास और मान्यताएं भी जीवित रहती हैं। वे आँचलिकता को ओढ़ कर चलती है। लोकगाथाएं अपने संगीत तत्व को लोकवाद्यों, लोकगाथा गायकों और लोकमानस की श्रद्धान्वित भाव तरंगों से सरसब्ज बनाए रखती हैं। लोकगाथा गायन को लोकगाथाकार सृजता है और कभी लोकगाथा की धुनें, लोकगाथा गायन करने वाले गायक स्वयं भी तैयार करते हैं। अतः दोनों में अटूट सम्बन्ध बना रहता है। कोई साहित्यिक रचना तो लेखक की मौलिक रचना होती हैं। लेकिन लोकगाथाएं लोक की होती हैं लोक रचित रहती हैं। अतः उन पर व्यक्ति विशेष स्वयं रचयिता होने का दावा नहीं कर सकता है।

लोकगाथाओं में मूल वर्ण्य विषय एक होने पर भी उनकी गायन पद्धति, लोकधुनें, शैली, प्रस्तुतिकरण भिन्न-भिन्न हो सकते है। श्रोताओं की जो शैली, जो धुन जो पद्धति पसन्द आती हैं, वहीं भावी पीढ़ी के पास धरोहर के रूप में पहुंचा दी जाती हैं। डा. अवस्थी के अनुसार- ''लोकगाथा लोकनाट्य, लोकगाथाएं मूल में तो एक ही है। मात्र शाखाएं अलग-अलग है। जो लोकगाथाएं अपने लोकतत्व, लोकसंगीत और पद्धति से निखरकर समाज में लोकप्रिय होती हैं, वे जीवित रहती है"। उत्तराखण्ड के विविध अंचलों में समयानुसार आज भी जो गाथाएं प्रचलन में है वे निम्नलिखित है- 1. अजुबा बफौल की गाथा 2. अजीत बौर की गाथा 3. ऐड़ी की गाथा 4. कत्यूरों की गाथा 5. कलबिष्ट की गाथा 6. उषा-अनिरुद्ध की गाथा 7. कालू भण्डारी की गाथा, कमुली रौतेली की गाथा 8. कृष्ण-रुक्मिणी गाथा 9. कालसिण गाथा 10. कृष्णावतार (भारत गाथा) 11. गोरिधना की गाथा 12. गौरा-माहेश्वर गाथा 13. गंगानाथ की

गाथा 15. गददेवी की गाथा 16. गुरु गोरखनाथ की गाथा 21. गढू सुमरियाल कर गाथा 23. गोपीचन्द की गाथा 23. छुरमल की गाथा 20. जियाराणी की गाथा 21. जयमाला बौहरी की गाथा 23. जगदेव पंवार की गाथा 23. जीतू बगड़वाल की गाथा 24. तीलू रौतेली की गाथा 25. चौमू देवता की गाथा 26. झांकर सैम की गाथा 27. दुधा कंवल की गाथा 28. अनारी नैद की गाथा 29. धामयों-विरमद्यो की गाथा 30. नागमिल-भागमिल की गाथा 31. नन्दादेवी की गाथा 32.नागवंशी गाथाएं 33. नारसिंह की गाथा 34. नौलिंग देव की गाथा 35. निरावली जैंता की गाथा 36. पुरुखपन्त की गाथा 37. परियों की गाथा 38. पाण्डव गाथाएं 39. ज्यूंली की गाथा 40. बरमी कंवल कर गाथा 41. बफौल गाथा 42. विरमूसोन कर गाथा 43. विषभाट की गाथा 44. बाल गोरिया कर गाथा 45. बालोचन की गाथा 46. बाजुरी चैत की गाथा 47. भनरिया की गाथा 48. भोलानाथ की गाथा 49. भारतीचन्द की गाथा 50. भीमा कठैत की गाथा 51. भुम्याल गाथा 52. भर्तृहरि गाथा 53. भैरों गाथा 54. माधो सिंह (मलेथा) की गाथा 55. मोतियां सोन की गाथा 56. रणू रौत की गाथा 57. राजुला-मालूसाही की गाथा 58. रुक्मिणी चन्द्रावली गाथा 59. रामी-बौराणी की गाथा 60. रतूमहर-भगूमहर गाथा 61. रामअवतार गाथा 62. सकाराम कार्की की गाथा 63. स्यूंरा-बैरा बैक की गाथा 64. सिदुवा-विदुवा रमौल की गाथा 65. सूर्जकंवल की गाथा 66. सरुगंगा लली की गाथा 67. सम्याल हीत की गाथा 68. सैम की गाथा 69. शिवअवतार की गाथा 70. स्यूरांज-म्यूंराज बौर की गाथा 71. हंसकुंवरिगाथा 72. हरु की गाथा 73. हंसा-हिण्डवाण की गाथा आदि। श्री पेटशाली के अनुसार, यह ज्ञातव्य है कि प्राचीन काल में प्रचलित गायन परम्परा का मध्ययुग में बहुत विकास हुआ। दसवीं शताब्दी तक नाट्य कलकारों का एक निश्चित् वर्ग चारणों का था। ये चारण प्राचीन सूत्रों और कुशीलवों की परम्परा के माने जाते है। भारत के मध्यकाल में देश छोटे-छोटे राज्यों में बंटा था। ये राजा लोग सदा छोटी छोटी लड़ाइयों में लगे रहते थे। उनके दरबार में चारण (भाट) रहा करते थे जो कि इन राजाओं की युद्धवीरता, दानवीरता की विरुदावली बखान करते थे। आगे राजदरबार से यह परम्परा बाहर निकली और स्थानीय चौबारों, मेले-उत्सवों, शहर-गांवों के खुले मैदानों में प्रस्तुत की जाने लगी। इन्हीं चारणों के कारण रामायण-महाभारत की गाथा सामान्य जनता के बीच प्रचलन में आई और बाद में महाकाव्यों की विषय-वस्तु भी बनी। लोकगाथाएं निम्नवत् विभाजित की जा सकती हैं-

1. प्रेम-गाथाएं 2. वीर गाथाएं 3. पौराणिक गाथाएं 4. ऐतिहासिक गाथाएं 5. स्थानीय देन गाथाएं। यह वर्गीकरण श्री जुगल किशोर पेटशाली का है। हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', डा. गोविन्द चातक, मोहनलाल बाबुलकर और तारादत्त गैरोला ने भी अपनी-अपनी तरह से लोक गाथाओं के वर्गीकरण किए है, यह वर्गीकरण आगे प्रस्तुत किए जायेंगे। प्रसिद्ध प्रेम गाथाओं में ''राजुला मालूसाही'' ज्यादा लोकप्रिय है। इस पर बहुत काम हुआ है। यहां तक कि विदेशी व्यक्तियों (कोनाई माइजनर) ने भी इसका ध्वन्यालेखन का कार्य किया जिसके परिणाम स्वरुप यह 'गाथा गायन शैली' लोक धुन थोड़ा बहुत बच पाई है। आज संरक्षण के अभाव में अनेक लोकगाथाएं

विस्मृति के गर्त में जा रही है। अतः उनका समय पर बचाव जरुरी है। इसके लिए आधुनिक तकनीकि संचार माध्यम हमारे लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते है। अतः आडियो-विडियों की मदद लेकर आधुनिक नए वैज्ञानिक उपकरणों से इसके संग्रह और ध्वन्यकंन, गाथागायक शैली का संरक्षण किया जा सकता है। लोकगाथाओं में लोक का तत्कालीन परिवेश और इतिहास अपनी मौलिकता के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए, उसे नए वाद्यों और ध्वनियों से देने से वह अपनी मौलिकता खो देगा।

लोकधुनों, लोकविश्वासों और लोक पद्धति का, लोकगाथाओं के गायन-वादन औ संवाद प्रवचन में सदैव ध्यान रखना चाहिए। वर्तमान समय में गाथागायक उसे अपनी दृष्टि से तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे है। इससे उनके मौलिक स्वरुप पर खरोंच आनी स्वाभाविक है। अतः बिना परिवर्तन के ज्यों का त्यों इन गाथाओं का गायन, वादन एवं अभिलेखन किया जाना चाहिए।

11.3.1 लोकगाथाओं का वर्गीकरण और गढ़वाली लोकगाथाएं-

लोक में प्रचलित गाथाएं 'लोकगाथा' कहलाती है। लोकगाथाओं को विद्वनों ने समुदायवाद, व्यक्तिवाद, जातिवाद, चारणवाद और व्यक्तिहीन व्यक्तिवाद में वर्गीकृत किया है। इन विद्वानों के आधार पर लोकगाथाओं का निर्माण व्यक्ति समाज एक विशिष्ट कलाकार, विविध जातियों, चारणों और भाटों द्वारा किया गया है। लेकिन आगे चलकर व्यक्तिवाद से ऊपर उठकर ये गाथाएं जन साधारण की सम्पत्ति बन जाती है। प्रो. कीट्ज ने लोकगाथाओं का जो वर्गीकरण किया है वह निम्नवत् है-

1. चारण गाथाएं- चारणों द्वारा गाए जाने के कारण इनकों चारण गाथा कहते हैं।
2. परम्परागत गाथाएं- परम्परागत गाथाएं चिरकाल से चली आ रही है। इनका प्रभाव आज तक चिरस्थाई हैं।

डा. गूचर ने लोकगाथाओं के वर्गीकरण में निम्नवत् सोपान निर्धारित किए हैं-

1. प्राचीन गाथाएं- ये गाथाएं आकाश, पृथ्वी और ऋतुओं से सम्बन्धित है। इनका आधार वैदिक साहित्य से लेकर लोक साहित्य तक सर्वत्र रहा है। पृथ्वीसूक्त, और उषासूक्त में इन पौराणिक गाथाओं की निमित्ति देखी जा सकती है।
2. कौटुम्बिक गाथाएं - इनका सम्बन्ध कुटुम्ब से है।
3. आलौकिक गाथाएं - इन गाथाओं के अन्तर्गत जादू-टोना, परी-अप्सरा और अन्ध विश्वास समाहित हैं।

4. पौराणिक गाथाएं- प्राचीन आख्यान, जो प्राचीन भारतीय साहित्य के पुराण-वेद और उपनिषद् साहित्य में है उनसे सम्बन्धित गाथाएं पौराणिक गाथाएं है। जागर के अन्तर्गत देवपूजा, स्तुति और देव विरुदावलियां इसके अन्तर्गत आती है।

5. सीमान्त गाथाएं - सीमा प्रान्त स्थित लोगों की अभिकल्पना और सीमान्त युद्ध-संस्कृति, लोकपरम्परा पर आधारित गाथा को सीमान्त गाथाओं के अन्तर्गत परिगणित किया गया है।

6. नायक गाथाएं - ये गाथाएं व्यक्ति विशेष के चरित्र से अनुप्राणित होकर सृजी जाती है जैसे- सुल्ताना डाकू, मान सिंह, जोरावर सिंह, मोरो पिमन, राबिन हुड आदि नायकों की जीवन से सम्बन्धित गाथा नायक गाथा के अन्तर्गत आती है।

डा. कृष्णदेव उपाध्याय कृत वर्गीकरण -

डा. कृष्णदेव उपाध्याय ने गाथाओं को आकार तथा विषय के अनुसार विभाजित किया है। उन्होंने लघु तथा वृहद विषय के अनुसार इन्हें तीन भागों में विभाजित किया गया है-

1. प्रेमकथा गाथा

2. वीरकथात्मक गाथा

3. रोमांचक कथात्मक गाथा

डा. सत्येन्द्र का वर्गीकरण-

1. विश्व निर्माण की व्याख्या करने वाली लोकगाथाएं।

2. प्रकृति के इतिहास की व्याख्या करने वाली लोकगाथाएं तथा

3. मानवीय सभ्यता की व्याख्या करने वाली लोकगाथाएं।

लोकगाथाओं का यह वर्गीकरण समग्रता को लेकर किया गया है यद्यपि यह देश-काल के अनुसार लोक और प्रादेशिक भाषाओं में व्यवहृत एवं प्रचलित भी हुआ है तथापि लोकगाथाओं के अन्य विभेद भी किए जा सकते हैं।

गढ़वाली लोकगाथाओं को डॉ गोविन्द चातक ने निम्नवत विभाजित किया है-

1. जागर वार्ता - इसके अन्तर्गत उन्होंने सभी धार्मिक लोकगाथाओं को अन्तर्निहित कर दिया है।

2. पवाड़ा - ये गढ़वाल में प्रचलित प्रबन्धात्मक वीर गीत है।

3. चैती - प्रेमाख्यान गीत।

डॉ गोविन्द चातक को आधार मानकर डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' ने लोकगाथाओं को दो भागों में बांटा है-

1. लौकिक गाथाएं 2. पौराणिक गाथाएं

1. लौकिक गाथाएं- इसके अन्तर्गत पवाड़ा-वीर गाथाएं और प्रेमगाथाएं सभी प्रकार के प्रबन्ध गीत है।

2. पौराणिक गाथाएं- इसके अन्तर्गत डॉ भट्ट ने कृष्ण लीलाओं सम्बन्धी स्थानीय देवताओं और पांडव सम्बन्धी गाथाओं को लिया है।

मोहनलाल बाबुलकर ने गढ़वाली लोकगाथाओं को मुख्यतः दो भागों में बांटा है-

1. जागर वार्ता - इनमें पौराणिक देवता, महाभारत के पात्र (पाण्डवों) तथा स्थानीय देवताओं की उपासनात्मक वीर गाथाएं है तथा

2. लोकगाथाएं - ऐतिहासिक व अनैतिहासिक वीर पुरुषों एवं स्थानीय पुरुषों के आख्यान पुनश्च बाबुलकर जी ने देवगाथा और लोकगाथा के निम्न विभाजन किए है।

1. देवगाथाएं (जागरवार्ता) के अन्तर्गत परिगणित की जाने वाली गाथाएं

   (क) कृष्ण चरित्र, रुक्मिणी-चन्द्रावाली, शिव-पार्वती, बैकुण्ठ चर्तुदशी की गाथाएं।

   (ख) निरंकार, गरुड़ासन, भैरों, नरसिंह, हन्त्या, आछरी, देवी विषयक गाथाएं।

   (ग) पाण्डव, भीम, नागलोक कथा, युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव, द्रोपदी, और कुन्ती अर्जुन गाथा

2. लोकगाथाएं-

(क) ऐतिहासिक पुरुषों पर आधारित लोकगाथाएं।

(ख) ऐतिहासिक, अनैतिहासिक, एवं स्थानीय पुरुष सम्बन्धी।

(ग) वीरगाथाएं।

बाबुलकर जी ने देवगाथाओं को आकार एवं गायन पद्धति के आधार पर निम्नवत वर्गीकृत किया है-

देवगाथाएं

(क) राज पुरुषों सम्बन्धी गाथाएं

1. अजैपाल
2. राजा मान साह
3. मालू साही
4. ज्गदेव
5. राजा प्रीतम सिंह

(ख) ऐतिहासिक, अनैतिहासिक स्थानीय पुरुषों की गाथाएं

1. कालू भण्डारी
2. कफ्फू चौहान
3. गढ़ू सुम्याल
4. सुरजू कुंवर
5. बागा रौत
6. काली हरपाल
7. राजुला-मालूसाही
8. भाग देऊ
9. बरमी कौल
10. सोनू-विरभू
11. जीतू बगड़वाल
12. हंसा कुंवर
13. गंगू रमोला
14. विध्नी विजयपाल
15. रणू रैत
16. ब्रह्म देव
17. सुमेरु रौतेला
18. धाम देव
19. भानू भौंपेला
20. आशा रौत
21. हंसा-हिंडवाण

(ग) वीरगाथाएं

1. नौरंगी राजुला
2. पत्थर माला
3. तीलू रौतेली

4. रौतेली राणी पुर्हा
5. ध्यान माला
6. जोतर माला
7. चन्द्रावली
8. सुरमा
9. सरु कुमैण
10. बरुणा (भरणा)
11. अमरावती

निष्कर्षतः डॉ गोविन्द चातक, डा. शैलेश, मोहनलाल बाबुलकर के वर्गीकरण में प्रायः सभी प्रचलित और उपलब्ध गढ़वाली लोकगाथाएं आ गई हैं । आपको यह ध्यान रखना है कि गढ़वाली लोकगाथाओं को 'पंवाड़ा' कहा जाता है। ये पद्यरुप में गाए जाने वाले गीत होते है। पवाड़ों में राजाओं, वीरभड़ों, वीरांगणाओं की गाथाएं आती हैं। गढ़वाल की वीर गाथाओं में सन् 688 से सन् 1800 तक के कतिपय गढ़देशीय राजपुरुष, गढ़वाली वीरांगणाएं एवं वीरपुरुष वीरगाथाओं के अन्तर्गत स्थान पाए है। मोहनलाल बाबुलकर के अनुसार ये वीरगाथा चरित्र गीत वीरपुरुषों और वीरांगणाओं की विरुदावलिया है। जो कि तेहरवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं सदी तक रचे गए हैं।

इन लोक गाथाओं में अद्भुत पराक्रम, शक्ति, श्रद्धा, विश्वास, प्रेम और प्रेम की यातनाएं, त्याग, तपस्या, बल-बुद्धि कौशल का प्रदर्शन, राग-द्वेष, उलाहने और उलाहनों के लिए उत्सर्ग की भावना, युवा-युवतियों को पाने की होड़, खनखनाती तलवारों का वीभत्स नाच, मुण्डों के चौरे, खून के घट्ट, यौवनावस्था का एन्माद, अन्न और धन का उन्माद, शराब और वैश्याओं की रंगशालाओं की झांकिया, आलौकिक शक्तियों का प्रदर्शन और लोकरीतियों एवं नीति का सत्य शिवं सुन्दरम सभी रुप इन्हीं गाथाओं में मिलता है। ये लम्बी ढौल (तर्ज) पर ऊंचे स्वर में गाए जाने वाली गाथाएं है। इन गीत गाथाओं में चरित्र वर्णन बोधगम्य भाषा में है तथ्ज्ञा स्थान विशेष की विशेषताओं का इनमें स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

11.3.2 गढ़वाली लोकगाथाओं की विशेषताएं

गढ़वाली लोकगाथाओं की कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्नवत् हैं -

1. अज्ञात रचयिता- गढ़वाली लोकगाथाओं के रचियता कौन है इसका पता नहीं लेता है। रचयिता का अज्ञात रहना भी इन गाथाओं की एक प्रभूत विशेषता है।
2. मूलपाठ का अभाव-गढ़वाली लोकगाथाएं विविध मूलक है अर्थात एक ही लोकगाथा विविध रुपों में उपलब्ध है। इनका कोइ एक प्रमाणिक मूलपाठ उपलब्ध नहीं है।

3. मौखिक परम्परा- गढ़वाली लोकगाथाएं परम्परा से मौचिाक रुपों में चली आ रही है। इनमें कतिपय अब भी अलिखित या अप्रकाशित रुप में ही अस्तित्व में है। तथापि दो दशक से बहुत सा लोकगाथा साहित्य संकलित और प्रकाशित होता जा रहा है।
4. स्थानीय प्रभाव- इन गाथाओं पर स्थान विशेष की परिस्थितियों का प्रबल प्रभाव मिलता है। इसके कारण गाथाओं में पाठान्तर है।
5. लेकसंगीत और नृत्य की एक रुपता- लोकसंगीत और नृत्य इन लोकगाथाओं की विशिष्टता है। इनमें प्रायः संगीत तत्व और नृत्य एक जैसा मिलता है।
6. साधारण, सरल और प्रभावोत्पादक शैली- इनकी प्रस्तुति की शैली सरल, अटपटी, भोजपूण और प्रभावोत्पादक है।
7. व्यवहारिक भाषा- इनकी भाषा सरल और लोकमुंह लगी होती है। जो कि स्थानीय भाषा के प्रभाव को द्योतित करती है।
8. निर्देशन का अभाव- इनमें निर्देशन का अभाव है। उपदेशात्मक नहीं है।
9. लम्बा कथानक और विविध कथाओं का चयन- गढ़वाली लोकगाथाओं के कथानक लम्बे और अनेक उपगाथाओं को लिए हुए है। जिन्हें प्रासंगिक गाथा कहा जा सकता है लेकिन मुख्य (अधिकारिक गाथा) अन्त तक चलती रहती है।
10. मोहनलाल बाबुलकर ने इन गाथाओं के लोकगायकों अथवा लेखकों की यशलिप्सा से दूर बताया है। उनका कार्य, उद्देश्य केवल जनता का लोक रंजन करना है। यह मूलतः लोक के लिए लिखा लोक काव्य है।
11. अलौकिक शक्ति वाली अप्सराओं की सृष्टि- इनमें अपनी अलौकिक शक्ति और सम्मोहन, रुपलावण्य से अप्सराएं (आंछरिया) जगत को मोहित करती दिखती है। वे सुन्दर पुरुष पर आसक्त होकर उसे हरण भी कर लेती है। स्त्रियों पर भी उनका आवेश चलता है। लेकिन कई बार ये अप्सराएं लोकगाथा गायकों की मदद करती भी दिखती है।
12. अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन - इन लोकगाथाओं के वर्णन प्रायः अतिशयोक्ति मंडित है। विशेष करके नायिकाओं के सौन्दर्य वर्णन में तथा नायकों के पराक्रम (पौरुष) और देह सौष्ठव का वर्णन इनमें अतिरंजनापूर्ण है जो कि अस्वाभाविक लगता है।
13. इष्ट देव का सहायक होना- सभी वीरगाथाओं में इष्ट देव नायकों और नायिकाओं की सहायता करते है। उनका स्मरण करके वे अलौकिक कार्य कर जाते है। अनहोनी को होनी में बदल देते है।
14. गुरु तथा मां द्वारा समझाया जाना- इन लोकगाथाओं के पात्रों को उनके गुरु या माता द्वारा उपदेश दिया जाता है। अपनी सौगन्ध दी जाती है। उन्हें मार्ग सुझाया जाता है। कई गाथाओं में नायक-नायिकाओं को टोका भी गया है। गुरु द्वारा रोका जाना और विपत्ति से उबरने में सहायक होना भी वर्णित है।

15. स्थानों के वर्णन में अनियमितताएं- यात्राक्रम में स्थानों के नाम परस्पर विरोधी है तथा देश काल और भूगोल प्रायः अस्पष्ट और भ्रान्ति मूलक मिलता है। रण यात्रा का क्रम उल्टा-पुल्टा है। अतः ये गाथाएं ऐतिहासिक विसंगता भी उत्पन्न करती हैं।
16. टेकपदों की पुनरावृत्ति- गेय होने के कारण इन वीर गाथाओं में हर दूसरे पद के बाद, पहला पद दुहराना पड़ता है।
17. प्रलाप व प्रवाद की प्रवृत्ति- ये गाथाएं प्रायः प्रवाद-प्रलाप की स्थिति में गाथागायकों के द्वारा गाई जाती है। जिनमें चिल्लाने की प्रवृत्ति अधिक दिखती है।
18. लोक विश्वासों का अमिट प्रभाव- इन गाथाओं में स्थानीय रीति-रिवाज, नीति और लोकविश्वासों की अमिट छाप मिलती है। जो उनके जीवन का लोकतत्व है।
19. ऐतिहासिक पुरुष- इन गाथाओं में राजपुरुषों के चरित्र है तथा मल्ल और वीरपुरुषों (भड़ों) का अतिशयोक्तिपूर्ण अतिरंजित वर्णन मिलता है।
20. स्त्री पात्रों के प्रेम की प्रधनता- युवक-युवतियों के प्रेम को पाने के लिए बलवती होड़ दिखाते है। नायकों कर शक्ति उनकी वीरता, देह सौष्ठव पर नारियां (युवतियां) आकर्षित दिखाई जाती है, यहां प्रेम की मुग्धावस्था कर वर्णन रहता है।
21. सशक्त स्त्री पात्र- सभी लोकगाथाओं में सशक्त चरित्रावली स्त्री ही नायिका के रुप में वर्णित रहती है। एसमें वीरत्व, साहस, और स्त्रीजनोचित प्रेम मार्धुय का भी अद्भुत सामंजस्य मिलता है। ये वीरांगणाएं या साहसी प्रेमी महिलाएं लोकगाथाओं की नायिका होती है।

निष्कर्षतः गढ़वाल लोकगाथाओं में लोकतत्व की प्रधानता रहती है। सावर की विद्या, बोक्साडी जाप, पंजाबी जुगटी, हाथताल छुरी, खुरासानी चीरा, स्फटिक मुंदरा, नौपुरी को बांस, पांसा, अमृत की तुम्बी, कानूं को मंतर, है सदा ज्यूंदाल, काली को जाप, बागभरी आसन आदि तांत्रिक और मांत्रिक शक्तियों का प्रयोग करने वाले वीरगाथा के नायक, उनके गुरु तथा सहयोगी नायिकाएं एक विचित्र सम्मोहन तथा कीमियागीरी (कौतुक) की सृष्टि करते है। वीरगाथा नायकों का चरित्र नायिक निरुपण और युद्ध कौशल तथा दृश्य बिम्ब, एकानेक वीरगाथाकालीन प्रबन्ध काव्यों की पृष्ठभूमि सी तैयार करते है।

सम्भवतः मध्यकाल की स्थिति का जब कि मुगल आक्रमण जोरों पर थे, और उनके बाद राजस्थानी भड़ों की युद्धवीरता, श्रृंगार प्रियता जो कि पद्मावत आदि में वर्णित है। या रासो काव्यों में विद्यमान है उसका प्रभाव भी गढ़वाली वीरगाथा के अज्ञान लेखकों पर पड़ा है। राजुला मालूसाही की गाथा, पद्मावत महाकाव्य की इतिहास गाथा से कम रोचक नहीं है। ये गढ़वाली लोकगाथाएं कल्पना और इतिहास तत्व को एक साथ लेकर सृजी गई है। इनका 'रसात्मक पक्ष' तथा संगीत तत्व प्रबल आवेगमय है। 'फिंतासी' भी यहीं कही-कही अपना रंग दिखाती है। संक्षेप में लोकतत्व के साथ इतिहास गाथा का समेकित रुप पाठकों को इन लोकगाथाओं को पढ़ने और सुनने तथा इन पर चिन्तन-मनन करने के लिए उत्साहित करता है।

11.3.3 मिथकों पर विश्वास-

गढ़वाली लोकगाथाओं की एक प्रवृत्ति मिथकों पर विश्वास भी है। जैसे- सृष्टि उत्पत्ति के विषय में गढ़वाली लोकगाथाओं में 'निरंकार' और 'सोनी गरुड़' की प्रख्यात गाथा लोक प्रसिद्ध है। इस गाथा में निरंकार से सोनी गरुड़ की उत्पत्ति की बात बताई गई है। सब ही शिव को भी सृष्टि की उत्पत्ति का श्रेय दिया गया है। गढ़वाल में निरंकार के गीतों में यह श्रेय गुसांई को दिया गया है। गुसांई शब्द गढ़वाल में नाथपंथी जोगियों के लिए प्रयुक्त होता है। सृष्टि की उत्पत्ति सम्बन्धी जिन गाथाओं में जिस सृष्टि की बात की गई है उसके गीज वेदों में हिरण्यगर्भ अंड की अवधारणा में निहित है। शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ में भी हिरण्य अंड की चर्चा मिलती है। 'छान्दोग्य उपनिषद्' में भी ''अंडे कपाले रजत च सुपर्ण चामवत यद्यद् जात एयं पृथिनी यत् सुवर्ण सा द्यौ'' के रुप में अंड से ब्राह्माण्ड की उत्पत्ति मानी गई है। लिंड्ग पुराण और मार्कण्डेय पुराण के अनुसार - पुरुष और प्रकृति के सम्मिलन का पूर्ण रुप अंड ही है। ब्रह्म या चैतन्य पुरुष ही अंड के रुप में समस्त प्राणियों का आदिकर्ता है। अब आप पुराण कथा और गढ़वाली गाथा में सृष्टि उत्पत्ति कथा का अन्तर देखों। गढ़वाली लोकगाथाओं (वार्ताओं) में सृष्टि उत्पत्ति में गरुड़ और गरुड़ी को माध्यम बनाया गया है। इसके लिए जागर वार्ता में 'कद्रु और विनता' वाली गाथा गाई जाती है जो कि गरुड़ और नागों में हुए संघर्ष की झांकी प्रस्तुत करती है। गरुड़ा शक्तिशाली थे अन्त में वें विजयी हुए और विष्णु के वाहन बने। समुद्र मंथन से निकले अमृत कुम्भ को देवता और राक्षसों की सुरक्षा से उठाकर भागने वाले महापराक्रमी गरुड़ ही थे। गाथा में गरुड़ के रोने से उसके आँसू गरुड़ी पी जाती है और उसके गर्भठहर जाता है। जब प्रसव का समय आता है तब गरुड़ के पंखों के उपर गरुड़ी अपना अंड प्रसव कर देती है लेकिन उसके पंखों से नीचे लुढ़ककर फूट जाता है जिससे समुद्रों सहित पृथ्वी और आकाश की उत्पत्ति हो जाती है। आपकी जानकारी के लिए गढ़वाली में लिखित यह सृष्टि उत्पत्ति गाथा जागर लोकवार्ता में इस प्रकार है, जिसका इस गाथा में अन्त में हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। जिससे आप गाथा को समझ सकें-

हे भगवान, कद्रु का नाग ह्वेना, विनता का गरुड़!

कद्रू-विनता दुई होली सौत्

सौतिया डाह बल कनी हांदी

क्या-क्या नी सोचौंदी क्या-क्या नी करौंदी ?

11.3.4 गढ़वाली लोकगाथाएं कुछ अन्य प्रवृत्तियां

इन लोकगाथाओं का अध्ययन करने से गढ़वाली लोकमानस की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियों का पता चलता है, कि यथार्थ जीवन से संवद्ध होने पर भी इनमें अमिानव और अतिप्राकृत तत्वों की भरमार है। जो कि तत्कालीन लोक में प्रचलित अंधविश्वासों, अनुष्ठानों, मनःस्थितियों और

कथानक कर रुढ़ि पर निर्भर करता है। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरुप गढ़वाली पवाड़ों में देवताओं, अप्सराओं, पशुओं तथा विभिन्न क्रिया व्यापारों के प्रति अति प्राकृत धारणाएं मिलती है। जिसमें पिता की संतान नहीं होती वह देवताओं की कृपा से संतान पाता है। वीर का पुत्र वीर ही होता है। ''जिसके पिता ने तलवार मारी है उसका पुत्र भी तलवार मारेगा'' यह लोकविश्वास इन गाथाओं में चरम पर है, भड़ों की जीवन युद्धों में बीतता है। ये राजा के आदेश का पालन करते दिखते है। भड़ और उसकी सेना दोनों एक साथ मिलकर शत्रु पर टूटते है। भड़ की मां और पत्नी को अपने महल या भड़ के युद्ध में घायल होने, मारे जाने एवं बन्दी बनाए जाने वाले अनिष्ट का पूर्व ही भान हो जाता है। मां के स्तनों से दूध बहने लगता है, पत्नी को अशुभ स्वप्न होता है या संकेत मिलते है। सतीत्व पर जोर मिलता है। सतीत्व रक्षा की वृत्ति पंवाड़ो में रुढ़ि से आई है। कालू भण्डारी के पंवाड़ें में युद्ध में जाते हुए पुत्र आनी माता से पूछता है कि मां सच-सच बता कि मैं अपने पिता की ही पुत्र हूं। तभी युद्ध में जाउंगा। 'दो की जाई और एक की जाई होना' अर्थात एक ही व्यक्ति की पति के रुप में स्वीकारने वाली 'दो पुत्रों की माता' होना सती स्त्री का लक्षण माना जाता था। अपने सत (सतीत्व) का स्मरण कराकर माताएं अपने पुत्रों को युद्ध में भेजती थी। उदहारणार्थ- विरमा डोटियाली अपने पिता को पुत्री होने को विजय से जोड़ती है, वह कहती है 'यदि हम सातों बहिने आपकी पुत्री होगी तो हमें युद्ध में विजय मिलेगी। इन बातों से यह संकेत मिलता है कि जारज सन्तान युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होगी। वीर माताएं अपने सत के कारण अपने पुत्रों की अभीष्ट प्राप्ति (इच्छा सिद्धि) में सहायक होती थी। गढ़ू सुमरियाल की वीरगाथा में उसकी माता इसी प्रकार उसकी सहायक होती है। माताओं के साथ गाथाओं की एक और प्रवृत्ति यह भी है कि पत्नी अपने सत (पतिव्रत्य) के बल पर मृत पति को जीवित करती हई दिखाई गई है। इन गाथाओं में असम्भव की सिद्धि के लिए सत्य को ललकारा गया है। सत्य ही अपनी सम्पूर्ण शक्ति से प्रकट होकर असम्भव को सम्भव बनाकर चमत्कृत कर डालता है। कभी-कभी इष्ट देवी स्वप्न में आकर बाधाएं दूर करती है और प्रेमी वीर पुरुष अपनी प्रमिका की डोली लेकर सारी बाधाएं पार करके अपने घर लौटते हैं ,स्नान कराते हुए को शत्रु या शत्रु का सिपाही उन्हें धोखे से मार डालता है। लोदी रिखोला, कालू भण्डारी हिंडवाण आदि के साथ ऐसा ही धोखा होता है। ऐसी स्थिति में स्त्री सती हो जाती है। किसी पवाड़े में स्त्री पति और प्रेमी को दाहिनी और बाईं जांघ पर रुख कर उनके साथ सती हो जाती है। किन्तु जहां डोली घर सकुशल पहुंच जाती है वहां स्त्री (प्रेमिका) को दोहद की इच्छा होती है। फलतः पति शिकार के लिए जंगल में जाता है और मारा जाता है। षडयन्त्र प्रायः यभी पवाड़ों में मिलता है किन्तु सतीत्व की रक्षा वर्णन प्रायः पवाड़ों में काव्यमय ढंग से किया गया मिलता है। इस सौन्दर्य वर्णन में सुन्दरियों के लिए चुन-चुनकर उपमान संजोए गए है। ध्यानमाला, शोभनी, सरुकुमैण, जोगमाला सब के अद्भुत रुप सौन्दर्य का वर्णन, उनके नाक, मुंह, आंख, कमर आदि को लेकर भुजाएं और बलिष्ठ शरीर को लेकर किया मिलता है। युद्धस्थल पर उनकी वीरता का वर्णन मुहावरों और लोकोक्तियों तथा लक्षणा शब्द शक्ति के माध्यम से किया हुआ मिलता है जैसे- उन्होंने शत्रुओं को कचालू सा काट डाला। मुंडों से चबूतरे खड़े कर दिए, लहू के घराट चला दिए। वहां उन्होंने भांग बोना शुरु कर दिया।

लोकगाथा में वीर मल्ल सा भड़ ऐसा चमत्कार व पराक्रम अपनी इष्ट देवी झाली माली, ज्वाल्पा, कैलापीर आदि की कृपा से करते वर्णित किए गए है। भड़ों पर शिव-पार्वती की कृपा का भी वर्णन भी कुछ पवाड़ों में मिलता है।

तन्त्र-मन्त्र का प्रयोग भी इन लोकगाथाओं की प्रमुख प्रवृत्ति मानी जा सकती है। विशेषकर सबसे अधिक उल्लेख गुरु गोरखनाथ और उनकी बोक्साडी विद्या का हुआ है। ''धौला उड्यारी'' का उल्लेख पंवाड़ों में मिलता है। कहा जाता है यहां सत्यनाथ ने और गोरख ने तपस्या की थी, देवलगड़ में सत्यनाथ का मन्दिर है और उसकों लेकर राजा अजयपाल के सम्बन्ध में अनेक कथाएं/अनुश्रुतिया मिलती है। अजयपाल स्वयं नाथपंथ में दीक्षित था। उसकी वाणी भी नाथों की वाणी और मन्त्रों में शामिल है। श्रीनगर गढ़वाल के नाथों का मौहलला अब तक मौजूद है। पवाड़ों (वीरगाथाओं) में नाथों की बभूति, धूनी, कांवर की जड़ी, चिभटा, खरुवा (राख) की झोली, गुदड़ी, खुराशानी, बाघम्बरी आसन, अमृत की तुम्बी आदि सामग्री का उल्लेख मिलता है। उनकी तन्त्र विद्या को बोक्साडी लोग जादू-टोना के रुप में आजतक जीवित रखे हुए है। बोक्सा तराई की एक जाति है। सम्भवतः कभी वें इस विद्या के जानकार रहे हो। राजुला मालूसाही में जादूगरनी स्त्रियों का भी उल्लेख मिलता है।

इन गढ़वाली लोकगाथाओं की एक और प्रवृत्ति की ओर हम आपका ध्यान ले जाना चाहेंगे, वह प्रवृत्ति है, बाल्यकाल में विवाह का तय होना और फिर उसे भूल जाना तथा अचानक कन्या द्वारा युवावस्था में पर्दापण करने पर प्रेम का अनुभव करना, या अपने मंगेतर अथवा वाक्दत्ता को स्मरण करना उसे पाने की इच्छा करना। राजुला मालूसाही की लोकगाथा में यह प्रवृत्ति पाई जाती है। राजुला मालूसाही की गाथा हम आपकी जानकारी के लिए आगे प्रस्तुत करेंगे।। इन वीर गाथाओं में जिनमें प्रेमगाथा का भी पुट रहता है। गायक लम्बी लय में गाते है जिसे पवाड़ा लय विशेष कहा जाता है। इन में आलाप के लिए प्रायः 'हे' ध्वनि का प्लुत रुप में प्रयोग में लाया जाता है। चूंकि ये गाथाएं श्रोताओं (सुनने वालों) का सम्बोधित होती है, इसीलिए इनमें कहीं-कहीं 'मर्दो' 'महाराज' सुणदी सभाई आदि सम्बोधन प्रयुक्त होते है। आरम्भ में तो मंगलाचरण जैसी कोई चीज होती है या किसी का वंशगत परिचय होता है। कहीं भूमिका के तौर पर 'माई मर्दान का चेला, सिहणी का जाया', 'मर्द मरी जांदा, बोल रई जांदा' जैसे विरुद का प्रयोग होता है। कभी वीरगाथा सा पवाड़ा सुनाने वाला आवजी श्रोता की प्रशंसा उसकी वंशावली के साथ दान की महिमा को मंगलवार के रुप में बखान करता जाता है। अधिकांश लोकगाथात्मक पवाड़ों का अन्त स्त्री के सती होने विवरण के साथ होता है। मिलन की स्थिति में मंगल बधाई बजती है। त्रासद परिणित में हुतात्मा के शौर्य को सराहना के सज्ञथ पवाड़े का अन्त किया जाता है। ऐसी स्थिति में पवाड़े में वर्णित होता है। कि मां भड़ को अभीष्ट कार्य करने के लिए मना कर रही है लेकिन पुत्र युद्ध या अपनी इच्छा की जबरदस्ती पूर्ति के लिए मां की बात की अनसुनी करके निकल पड़ता है लेकिन फिर अपशकुन होने के कारण या तो मारा जाता है या बन्दी बना दिया जाता है। ऐसी स्थिति में यह माना जाता है कि अमुख भड़ या मल्ल ने अपनी मां का कहना नहीं

माना था। इसीलिए उसके साथ अपशकुन हुआ। जीतू का गाथा इसका उदहारण है। वीरगाथाओं में आपको इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि ये गाथाएं सा पवाड़े इतिहास नहीं है। ये इतिहास सांकेतिक गाथाएं है और इस इतिहास सामग्री में भी कल्पना और पुनरावृत्ति मिलती है। लेकिन इतिहास लेखन में उनसे कहीं-कहीं सहायता मिल सकती है। इन लोकगाथाओं में मध्ययुगीन सांस्कृतिक तत्वों की बहुलता मिलती है। नारी के लिए युद्ध करना, और उसे पाने के लिए प्राणों की बाजी लगाना मृत्यु से भयभीत न होकर युद्धभूमि में या संकट में पराक्रम दिखाना पवाड़ों में दिए एक नैतिक संदेश को उजागर करता है। गढ़वाली वीरगाथाओं (पवाड़ों) के ऐतिहासिक पात्रों को मानशाह (1555-1765 महीपत शाह (1584-1610) और फतेहशाह (1671-2165) आदि राजाओं का इतिहास सम्मत वर्णन प्राप्त होता है। राज्य के अधिकारियों में पुरिया नैथानी, शंकर डोभाल, पांच भाई कठैत, रामा धरणी और राजमाताओं में प्रदीपशाह की संरक्षिका के शासन काल राणी राज के कालखंड की घटनाएं, गोरखा आक्रमण, मुगल आक्रमण आदि की इतिहास संकेतिक जानकारी इन वीरगाथाओं में मिलती है। वस्तुतः गढ़वाल में प्रचलित ये लोकगाथाएं गढ़वीरों व भड़ों की वीर श्रृंगार और करुण रस से भरी काव्यात्मक गेय विरुदावलियां है। जिन पर राजस्थानी शौर्य गाथाओं की भी प्रभाव दिखता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि मण्यकाल में अनेक क्षत्रिय जातियां, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र से गढ़वाल उत्तराखण्ड में आकर बसी थी। अतः अपनी संस्कृति और पूर्वजों की थाती को उन्होंने इस प्रकार के विरुदगानों (पवाड़ों) में और जागरों में पीढ़ी दर पीढ़ी आपने 'आवजी', ढोलवादकों, जागरियों और पुजारियों के माध्यम के सुरक्षित रखने का प्रयास किया है।

11.3.5 गढ़वाली लोकगाथा और पंवाड़ा

कालान्तर में लोकगाथा गायन की एक भिन्न पद्धति है। पवाड़ा गढ़वाली लोक गाथा श्रृंगार और प्रेम से युक्त होने पर भी करुण रस और वीर रस से भरी पड़ी है। वीरगाथाओं का दूसरा नाम 'पवाड़ा' भी है। हिन्दी साहित्य में आपने वीरगाथा काल, रीतिकाल, भक्तिकाल, आधुनिक काल का साहित्य पढ़ा होगा। गढ़वाल के राजाओं और वीर भड़ों की शौर्य पूर्ण गाथाएं यहां पवाड़ा कही जाती है। डा. गोविन्द चातक का कथन है कि ''पवाड़ा शब्द थोड़े से अर्थ परिवर्तन के साथ ब्रज, मराठी, गुजराती, राजस्थानी में 'पाबूजी' के पवाड़े सुप्रसिद्ध है। विद्याविलास चरित पवाड़ा जिसे आचार्य हीरानन्द सूरी ने 1428 ई. में रचा था, इसे पहली बार पवाड़े की संज्ञा दी गई थी। इसका पंवार राजाओं से डा. गोविन्द चातक कोई सम्बन्ध नहीं मानते है। पवाड़ों में किवदंती और स्थानीय लोकोक्तियां लोकधारणा का समावेश रहता है। अधिकांश गढ़वाली पवाड़े मध्य काल में रचे गए है। अनेक गढ़वाली लोकोत्तियां अपने में इतिहास की छाया लिए है। गढ़रनरेश स्वयं शूर होते थे और वीरों को जागीर आदि देकर उन्हें सम्मानित भी करते थे। इन वीरों या भड़ों (भटो) को वेतन दिया जाता था। ये राजाओं के रक्षक, स्वामिभक्त और विश्वसनीय होते थे। ये भड़ मल्ल या माल कहलाते थे। इनमें आपस में रणकुशलता और वीरता दिखाने की होड़ लगी रहती थी। सर्वप्रथम इन छोटी-छोटी गढ़ियों, ठकुराईयों को विजित कर जो कि उस

समय बावन के लगभग थी उनकों अजयपाल ने जीतकर अपने एकछत्र शासन की नींव डाली थी। फलतः उसे सीमा विस्तार के लिए तिब्बत, सिरमौर, कुमांऊ तथा मुगल साम्राज्य से युद्ध करना पड़ा। गढ़वाल नरेश, मानशाह, दुलाराम शाह, महीपत शाह मेदनी शाह और फतेहशाह को अपने राज्यकाल में डेढ़ दौ सालों तक बाहरी शक्तियों से युद्धरत रहना पड़ा था। कफ्फू चौहान (1500-1548) अजयपाल का प्रतिद्वन्दी राजा था वह उपूगढ़ का गढ़पति था। कफ्फू चौहान की गाथा अनुश्रुति के रूप में प्राप्त है। कफ्फू चौहान के बारे में प्रसिद्ध है कि वह बड़ा हठीला, स्वाभिमान नवजवान था। जब उसने राजा अजयपाल की अधीनता स्वीकार नहीं की तब अजयपाल ये उसका भारी संघर्ष हुआ। इस आक्रमण में कफ्फू की सारी सेना मारी गई। कहते हैं जब कफ्फू चौहान के पकड़े जाने और उसकी सेना के मारे जाने की खबर उपूगढ़ में पहुंची तो उसकी माता और पत्नी ने किले में आग जलाकर उसमें अपने को भस्म कर दिया था। कफ्फू चौहान को अजयपाल ने जब अपने चरणों में सिर न झुकाने पर उसके सिर को ऐसा झटका दिया कि उसका सिर अजयपाल के मुख से टकरा गया। कुछ लोगों का कहना है कि कफ्फू चौहान का सिर उछलकर गंगा में गिर पड़ा था। उपूगढ़ के गढ़पति कफ्फू चौहान की वीरगाथा के समान ही लोक में भानू धमादा विध्नी विजयपाल, काली हरपाल, बागा रावत, अजवावंपा, सौणू-विस्मू, ब्रह्म और विरमा डोटियाली, स्यूंराज-म्यूंराज आदि की कई वीरगाथाएं लुप्तप्रायः होती जा रही है। इनमें कुछ को तारादत्त गैरोला और ओकेले ने ''हिमालयन फोकलोर'' में संकलित किया है। किन्तु अब वे केवल पुस्तक में है। लोक में सुनने में नहीं आती। जो गाथाएं काल कवलित होने से बच पाई है और लोकपरम्परा में जीवित है। वें है- लोदी रिखोला की गाथा, माधो सिंह, गढ़ू-सुमरियाल, सूर्ज कुंवर, ब्रह्मकुंवर, जयदेव पंवार, कालू भण्डारी, रणू-झंकरु, हरि हिण्डवाण, तीलू रौतेली और सुप्या रौत की गाथा प्रमुख है। अब आगे हम लोदी रिखौला की गाथा के साथ माधोसिंह, रणू रौत, सुप्या रौत, कालू भण्डारी की लोकगाथा का गढ़वाली मूल पाठ एवं उसका हिन्दी अनुवाद आपके अध्ययन के लिए आगे प्रस्तुत करेंगे, अभी हम आपकी जानकारी के लिए गढ़वाली लोकगाथा की 'जागर' विधा पर प्रकाश डाल रहे है ताकि आप इस विधा को भली-भांति जान सकें।

11.4 जागर- एक लोकगाथा गायन पद्धति

जागर शब्द संस्कृत की जागृ (जाग्रत) करना धातु से बना है। इसका अर्थ है - जागरण अर्थात जागना। महाकवि कालिदास ने रघुवंश और महाभारत में भी जागर-जागृत (जाग्रत) शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'तम् जाग्रतो दूरभुदेति देवम्' आदि। गढ़वाल में देवताओं की नृत्यमयी पूजा, वाद्यवादन को घड़ियाला कहते है। जिसमें डमरु, थाली आदि वाद्यों को एक विशेष पद्धति में बजाया जाता है। इसमें गायन, वादन-पूजन करने वाला पुरोहित 'जागरी' कहलाता है। जिस व्यक्ति पर देवतस अवतरित होता है उस देववाहन या माध्यम को कही 'पस्वा' कहीं 'धामी' आदि कहा जाता है। 'पस्वा' या 'धामी' गांव का ही कोई ऐसा व्यक्ति जिसमें दैवी शक्ति की

ग्राहयता होती है। जिस व्यक्ति के सिर पर देवता आता है, घड़ियाला लगाते हुये जब जागरी पुरोहित दैवी शक्ति का आह्वान करता है तो उसमें कम्पन्न होता है जो धीरे-धीरे बढ़ता जाता है, जब कम्पन्न चरम सीमा पर पहुंच जाता है तो वह 'हव्' ध्वनि उच्चरित करता हुआ, उठकर नाचने लगता है। यह 'हव्' शब्द सम्भवत (आह्वान स्वीकार किया) का द्योतक है। थाली और डमरु का उत्तेजित स्वर, पुजारी का आह्वान गीत और रात्रि के सूने प्रहर, कुल मिलाकर ऐसा वातावरण उपस्थित करते है कि 'पश्वा' कांपने लगता है जो इस बात का प्रमाण होता है कि उस पर आहूत (बुलाए) गए देवता की शक्ति अवतरित हो गई है। डा. गोविन्द चातक के अनुसार- इन गीतों को जागर कहने के पीछे एक तर्क यह भी है कि इनमें देवशक्ति को जाग्रत करने के लिए आह्वान होता है। इसीलिए इनका प्रारम्भ जागने जगाने के उद्बोधन से होता है। ''हरि हरिद्वार जाग, बद्री-केदार जाग, धौली पयाल जाग, भूमि कर भूम्याल जाग, छेम का छेतरपाल जाग'' आदि भिन्न-भिन्न देवताओं के लिए इस प्रकार के मिलते-जुलते उद्बोधन से जागर का अनुष्ठान प्रारम्भ होता है और देवता प्रकट होने के लिए बुलाया जाता है जैसे- ''प्रकट ह्वे जान, प्रकट ह्वे जान पांच भई पंडऊ। प्रकट ह्वे जान कोन्ती माता.....'' ऐसे आह्वान से जब दैवी शक्ति 'पश्वा' पर प्रकट होती है तब उसकी लीलागान करते हुए नचाया जाता है।

भारतीय नाट्य शास्त्र में यह विश्वास किया जाता है कि नृत्य से देवता प्रसन्न होते है। नृत्य ही गढ़वाल में पूजा-रुप है। किसी के सिर पर देवता का अवतरित होना और उसको नचवाना सम्भवतः समग्र भारत में पाया जाता है। सम्भवत यह परम्परा पुराकाल में यक्ष-गन्धर्व और किन्नरों में प्रचलित रही होगी। गढ़वाल में जागर पूजा का महत्त्व नृत्य समारोह और लीलागायन में ही नहीं बहुत कुछ रोग निवारण के लिए किए गए आश्वासनों में भी है। लोक 'पश्वा' को अक्षत देकर प्ररून पूछते है- जिन्हें बार-बार उछालता हुआ उत्तर देता है और आधि-व्याधि के निवारण के लिए उपाय सुझाता है। कुछ 'पश्वा' या पुछारे यही काम करते है। वे अनुष्ठान का अवसर न होने पर भी प्रश्नों के उत्तर देते है। उन्हें 'वाकी' अथवा 'वाक्या' कहते हैं क्योकि वे वाक् बोलते हैं। देवताओं को नचाने के लिए आयोजित समारोह के जारता (देवयात्रा) मंडाण आदि कहकर पुकारा जाता है। पांडवों की जात को 'पंडवार्त' और देवी की जात को 'अठवाड' कहते हैं। किसी व्यक्ति के घर में आयोजित ऐसे समारोह को घड़ियालों का नाम दिया जाता है। आदिम मानव ने ब्राह्माण्ड की ऐसी शक्तियों को जागर द्वारा अवतरित करने में विश्वास किया, यह कल्पना करने में एसे देर नहीं लगी कि दैवी शक्ति किसी प्रतीक में अवतरित हो सकती है। इसी भावना के अनुरुप वृक्षों, पर्वतों, मूर्तियों आदि को उसने प्रतीक का स्थान दिया और स्वयं मानव को भी 'पश्वा' के रुप में एक प्रतीक माना जाने लगा जिससे दैवी शक्ति के अवतरण की अवधारणा को प्रश्रय मिला। डा. मदन चन्द्र भट्ट का कथन है कि, "ब्रह्मा के बाद प्रजापति बने। रुद्र ऋषि ने कैलाश में अपना आश्रम बनाकर नेपाल के पशुपति नाथ से लेकर वाल्हीक तक धर्म का प्रचार किया।। इसी रुद्र ऋषि ने ताण्डव की परम्परा शुरु की जिसमें नृत्य के माध्यम से मानव शरीर में पवित्र आत्माओं का अवतरण कराया जा सकता था। ये वैदिककालीन रुद्र ही पुराणों में

'शिव' नाम से प्रसिद्ध हुए है। ऐसा प्रतीत होता है यह ताण्डव नृत्यगीत ही जागर के रुप में प्रचलन में आया है। डमरु में यदि प्रचण्डता को साथ लेकर एकाकार होकर एक ही स्वर-ताल में बजकर कम्पन्न उत्पन्न कर देते है"।

11.4.1 रणभूत तथा वार्ताएं

किसी युग के जातीय वीरों यहां तक कि भूतों- रण में मारे गए योद्धओं (रण भूतों) आछरियों तक को भी जागर में नचाया जाता है। लेकिन आश्चर्य है कि जहां पाण्डव, जीतू बगड्वाल को यह गौरव मिला, वहीं राम, शिव आदि इस पद्धति से अवतरित किए जाने में उपेक्षित रहे है। सभी स्थानीय देवताओं को जागर में नाचने और मनुष्यों द्वारा आवाहित करने का सुअवसर मिलता है, इनमें नगेलों, घंटाकर्ण, खितरपाल, विनसर, कैलावीर, भैरव, नरसिंह, हीत, देवी, हनुमान आदि उल्लेखनीय है। किन्तु उनके सम्बन्ध में न लम्बे कथा गीत प्रचलित है और न वे जागरी पुरोहित द्वारा थाली, डमरु के घड़ियाले पर गाए जाते है। इनमें ढोली आवजी, ढ़ोल-दमामा बजाते हुए बीच-बीच में देवता का विरुद गाते है। सब कुछ होते हुए भी उन्हें जागर के अन्तर्गत नहीं लिया जाता।

डा. चातक का कथन है कि ''देवता दिन और रात चार पहरों में नाचता है। लेकिन रात में विशेष आयोजन होते है। इन चार प्रहरों में देवता रात भर नहीं नाचता और न जागरी निरन्तर गा पाता है। फलतः बीच के समय में था तो युवक नाचने बैठ जाता है। फलतः बीच के समय में या तो युवक नाचने बैठ जाते है या फिर दर्शकों में से कोई व्यक्ति उठकर कानों में हाथ डालकर लम्बे स्वर में देवताओं सम्बन्धी कोई प्रसंग सुनाने लगता है जिसे वार्ता कहा जाता है। वार्ता सुनाने वाले के प्राथमिक बोल इस प्रकार होते है''

''हे ढोली मैं निद्रा में खोया था.....तूने ढ़ोल के शब्द और नगाड़े की गूंज से मुझे बुलाया है। मैं नदियों से बहते, शिखरों से लुढ़कते हुए यहां आया हूं। आज तू अपने वाद्य से मुझे फूल सा खिला दे, भौंरे सा उड़ा दे। ढ़ोली ढोल बजाता है, लोग नाचते है और बीच-बीच में कोई कथिक (कथा कहने वाला) राम, शिव, पांडव अथवा किसी पौराणिक चरित्र की वार्ता सुनाने लगता है। वार्ताएं अनेक है। जागर वार्ता के अन्तर्गत नागराजा, कृष्ण के जागर, ब्रह्मकौंल (कुवंर के जागर), सूरज कौंल, चन्द्रावली हरण, कुसुमाकोलिन और सूजू की सुनारी की वार्ताएं दी गई है। गंगू रमोला और सिदुवा-विुदुवा की वार्ता, नागराजा कृष्ण के ही जागर के अंश है। सिदुवा-विदुवा तो पश्वा के सिर पर भी आते है और उन्हें कृष्ण के साथ-साथ नचाया जाता है। पाण्डवों के मंडाण को यद्यपि पंडवार्ता (पाण्डव वार्ता) कहा जाता है। किन्तु वे व्यक्तियों पर आधारित होते है, ढ़ोल दमामों के साथ नचाएं जाते है। सीता हरण, 'कद्रू-विनीता संवाद', निरंकार वार्ताएं है परन्तु नन्दा भगवती और गोरील, गोल्ल/गोरिया को नृत्यमयी पूजा दी जाती है।

11.4.2 कृष्ण से सम्बन्धित जागर गाथाएं

डा. गोविन्द चातक अपनी पुस्तक गढ़वाली लोकगाथाओं में गाथाओं की लोकप्रियता के विषय में लिखते है। कि 'गढ़वाल में कृष्ण का जागर सबसे अधिक लोकप्रिय है'। वहां उन्हें 'नागर्जा' या नागराजा कहा जाता है। एक जागर में उन्हें नागवंशी भी कहा गया है और अन्य में नागकन्या से विवाह करते दिखाया गया है। कलिया नाग का दमन और खाण्डव दाह की प्रेरणा देने वाले कृष्ण नागराजा कैसे कहलाएं, सम्भवतः इसके पीछे नाग प्रभुत्व रहा हो स्वयं उनकी लीला भूमि मथुरा में प्रचलित नागों की कन्याओं के नायक कृष्ण है। जब वासुदेव बालक कृष्ण को मथुरा से गोकुल ले जा रहे थे तो नदी के उफान में शेषनाग ने उनकी सहायता की थी। उनके भाई बलराम को शेषनाग का अवतार माना जाता है। कृष्ण को भी शेषशाची विष्णु का अवतार माना गया। मथुरा के मन्दिरों के उत्खनन से अनेक नाग मूर्तियां मिली है। मथुरा अंचल के लोग नागपूजा के बहाने कृष्ण की ही स्मरण पूजन करते है। गढ़वाल में नागों के गढ़ थे, उरगम, और नागपुर पट्टियां ही नहीं दशौली और पैनखण्डा में उनका अधिपत्य था, ऐट किन्सन ने हिमालयन गजेटियर में नामों के 61 मन्दिर गिनाएं है इनमें शेषनाग, वासुकी नाग, भकेल नाग, मंगल नाग, बेनी नाग, फेनी नाग, काली नाग, धौला नाग, कर्कोटिक नाग, स्यूड़ियां नाग आदि कई नागों की पूजा होती है। रमोली के सेम-मुखेन में नागराजा कृष्ण की पूजा होती है। इस क्षेत्र में गंगू रमोला की गाथा जुड़ी है। गंगा जी को नागनां जननी (नागों की माता) कहा गया है। गाथा के अनुसार वासुकी नाग की पत्नी विमला के दूधिया कौंल, वरमी कौंल, सूरज कौंल, धर्म कौंल, नीम कौंल, फूल कौंल, जत कौंल और सतकौंत नौं नाग पुत्र थे। गीतों में उसे 'जियावे नागीण' अर्थात् नागों की माता कहा गया है। उसके पुत्रों सुरजू कौंल, सौर ब्रह्मी कौंल से कृष्ण की बड़ी मित्रता थी वे कृष्ण को बडा भाई मानती थे और उन्हें ही उन्होंने 'जोत्रमाला' अथवा 'ध्यानमाला' नामक सुन्दरी को ले आने का संदेश दिया था।

मोतीमाला ध्यानमाला अथवा जोत्रमाला नाग जाति की कन्याएं बताई गई है। लेकिन कुसुमा कोलिन और सूजू की सुनारी निम्नवर्ण की रमणियां है। कृष्ण से उनका सम्बन्ध कृष्ण के परकीया प्रेम नहीं बल्कि कृष्ण के समत्व भाव दिखाने के प्रयोजन से जोड़ा गया है। कुसुमा कोलिन की वार्ता में कृष्ण स्नान करते हुए उएसकी टूटी लट पर मुग्ध हो जाते है और उसके पैरों के निशान चिन्हते हुये उसके घर तक पहुंच जाते है। उस समय कुसुमा कोलिन का पति इन्द्र को दुशाला बुनकर देने गया था, जैसे ही वह अपने घर पहुंचता है मुर्गा कृष्ण को जगाने के लिए बांग देता है, और वह हल्दीके बाड़े में छिप जाते है। इस वार्ता में मुर्गे की सुन्दर कलगी होने, और हल्दी के मंगल कार्यो में प्रयुक्त होने की प्रतिष्ठा को आधार प्रदान किया गया है। इस गाथा पर कबीर पंथ का प्रभाव है। गाथा में कृष्ण की सभा में कबीर, कमाल और दादू को बैठा वर्णित किया गया है। गंगू रमोला और कृष्ण सम्बन्धी गाथा में गंगू के पुत्रों सिदुवा-विदुवा को गोरखनाथ की बोक्साड़ी विद्या में पारंगत कहा गया है। सुरजूकंवर की गाथा में सिदुवा इसी प्रकार क चमत्कार करता हुआ दिखाया गया है। गढ़वाल के नाथ पंथियों में भी कृष्ण को अपने साथ

लपेटा है। एक गाथा में चन्द्रावली से कृष्ण की एक बेटी होती है जिसका नाम कृष्णावती है। कृष्ण ने चन्द्रावती से पैदा हुई अपनी बेटी को गुरु गोरखनाथ से ब्याह दिया। कृष्णावती योग के प्रति अरुचि होने से अपने भाग्य को कोसती है। इन लोकगाथाओं का कोइ ऐतिहासिक सिर-पैर नहीं है। ये पूर्णतः कल्पित है। गाथाकार ने कृष्ण का गोरखपंथ से सम्बन्ध जोड़ने के लिए या किसी गढ़वाल के नाथपन्थी लोकमानस ने गाथा में उसे अमर कर दिया है। कृष्ण के साथ कबीर, रैदास, गोरख का इन गाथाओं में जुड़ना गढ़वाल के लोकमानस के मन की एक धार्मिक सद्भाव की धन्य झांकी मिलती है।

कृष्ण की किसी नागकन्या के प्रति आसक्ति की ये गाथाएं नागों और यादवों के सम्बन्ध को प्रकट करती है। गंगू के पुत्र सिदुवा-विदुवा कृष्ण के मित्र थे। एक गाथा के अनुसार सूरजकौंल की बहिन सूरजी से सिदुवा का विवाह हुआ था। कुमांऊ की रमोला गाथा में कहा गया है कि कृष्ण की छोटी बहिन विजोरा उससे ब्याही थी। गढ़वाली लोक गीतों में भी सिदुवा को कृष्ण 'भेना' (बहिनोई) कहकर पुकारते है। नागराजा कृष्ण के जागर में पौराणिक वृत्त ही दुहराया हुआ मिलता है। इसमें कृष्ण के जन्म, गोचरण, कंदुक क्रीड़ा, कालियादमन, चीरहरण, गोवर्धन धारण, रास, गोपी विरह आदि विषय ज्यों त्यों वर्णित होते है।

11.4.3 चन्द्रावती की वार्ता

इसमें कृष्ण का चन्द्रावती के लिए प्रेम और उसकी के छल का प्रयोग वर्णित मिलता है। इस वार्ता में रुक्मिणी और चन्द्रावली को बहिन बताया गया है। कृष्ण चन्द्रावली के रुप की प्रशंसा युक्ति सुझाती है पर चन्द्रावली बच जाती है। अन्ततः रुक्मिणी बताती है तुम मेरा रुप धारण करों, कहो कि तुम्हारे जीजा (कृष्ण) का देहान्त हो गया है। आंसू बहाते उससे आश्रय मांगना। गाथा में वर्णन है कि कृष्ण रुक्मिणी का वेश बनाकर सो रहे थे तो चन्द्रावली को संशय हुआ। उसने भी रुप बदल दिया पर अन्त में कृष्ण ने उसे पकड़ लिया। ब्रज और बुन्दोली में चन्द्रावली छलन की गाथा मिलती है। गढ़वाली वार्ता में मौलिकता इस बात में है कि कृष्ण को चन्द्रावली के हरण की प्रेरणा और तरकीब रुक्मिणी ने बताई है। बुन्देली गाथा में कृष्ण उसे दही बेचते हुये देखते है और उसके रुप पर मोहित हो जाते है और उसे छलने का विचार स्वयं करते है। गढ़वाली लोकवार्ता में कृष्ण चन्द्रावली को छलने के लिए अनेक रुप धारण करते है लेकिन हर बार पकड़े जाते है। चन्द्रावली उन्हें पहचान जाती है। कृष्ण की रसिकता की ऐसी वार्ताएं गढ़वाल में प्रचलित है। जिनका आधार पौराणिक नहीं है। इन लोककथाओं (वार्ताओं) में मोतीमाला, जोत्रमाला के अपहरण के लिए कृष्ण सीधे सामने नहीं आते है। किन्तु 'सूजू की सुनारी' तथा 'कुसुमा कोलिन' में कृष्ण साक्षात् रुप के प्रति ही आकर्षित नहीं होते बल्कि उन्हें पाने के लिए प्रयत्न करत हुये भी वर्णित है।

11.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन करने से आप जान गए होंगे कि -

1. लोकगाथा किसे कहते हैं .
2. लोकगाथाओं का प्रतिपाद्य विषय क्या होता है
3. लोकगाथाएं कितने प्रकार की होती हैं ? उनका वर्गीकरण क्या हैं .
4. लोकगाथाओं की विशेषता क्या है .
5. लोकगाथाओं की प्रमुख प्रवृत्तियां कौन-कौन है .
6. पवाड़ा, जागर, लोकवार्ता क्या हैं ? उसकी गायन पद्धति कैसी हैं .

11.6 शब्दावली

भेना - बहनोई

कुसुमाकोलिन - अन्त्यज जाति की एक रुपवती स्त्री

सिदुवा-विदुवा - गंगू रमोला पुत्र

अठवाड़ - देवी पूजन की पद्धति

वार्ता - दर्शकों के बीच से कोई जानकार व्यक्ति उठकर अपने दोनों कानों में उंगली डालकर लम्बे स्वर में जब देवताओं की गाथा का कोई प्रसंग सुनाने लगता है उसे वार्ता कहते है।

वाक्या - लोक में इसे 'पुच्छेर' भी कहते है। यह वाक् सिद्ध व्यक्ति होता है जो लोक द्वारा पूछे गए रहस्यमय प्रश्नों के उत्तर देता है। 'वाक्' बोलने से इन्हें वाक्या कहते है। ये व्यक्ति भूत, और भविष्य तथा वर्तमान के विषय में बताते है तथा आपदा से बचने के उपाय सुझाते है।

जागरी - गायनपूर्वक जागर वाता लगाने तथा डौर-थाली वादन करने में दक्ष व्यक्ति जागरी कहलाता है।

मण्डाण - देवपूजा में देवनृत्य देखने व वार्ता सुनने के लिए आए हुए भक्तों (देवता के आराधकों) का हुजूम। जो नियमानुसार शान्त चित्त से एक स्थान पर विधिवत् बैठे रहते है। जिनमें देवताओं के पश्वा (जिन पर

देवता आकर्षित होते है) भी बैठे रहते है। उसे मण्डाण कहते है। सम्भवतः मन्दिर स्थान शब्द के अपभ्रंश हो जाने के मण्डाण (मन्दिर स्थान-मन्दिर थाण = मण्डाण) बना है। अधिकांश देवयतनों (देव मन्दिरों) के चौतरों या आंगन अथवा कमरों में ही मण्डाण लगवाते हैं।

11.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गढ़वाली लोककथाएं - डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 1996, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली।
2. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य - डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली।
3. उत्तराखण्ड की लोककथाएं - डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली।
4. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना - मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।
5. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य - डा. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।
6. गढ़वाली लोक गीत विविधा - डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

11.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोकगाथा से आप क्या समझते है ? लोकगाथा और लोककथा में अन्तर बताओं।
2. गढ़वाली लोकगाथाओं पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।

इकाई 12 गढ़वाली लोककथाएं : स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 गढ़वाली लोक कथाएं : स्वरूप एवं साहित्य
12.3.1 गढ़वाली लोककथाएं और उनके भेद
12.3.2 गढ़वाली लोक कथाओं की उल्लेखनीय प्रवृत्तियां
12.3.3 गढ़वाली लोककथाएं : शैली एवं शिल्प
12.3.4 गढ़वाली लोक कथाओं में शिल्प एवं संवेदना
12.3.5 गढ़वाली लोककथाओं की विशेषताएं
12.4 सारांश
12.5 अभ्यास प्रश्न
12.6 शब्दावली
12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
12.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.10 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

'कथा' शब्द संस्कृत की कथ् धातु से कथा रूप में निष्पन्न हुआ है। जैसे-हिन्दी में (कह) से कहानी बनी है। कथ् का तात्पर्य है - किसी चरित्र, घटना, समस्या या उसके किसी पहलू का रोचक और मनोरंजन वर्णन करना। परन्तु इधर वर्तमान में कथा शब्द का अर्थ संकोच हो गया है। कथावाचक द्वारा धार्मिक उद्देश्यों से श्रोताओं को सुनाई जाने वाली कथा के रूप में इसका अर्थ रूढ़ होता जा रहा है। लोक की भाषा अर्थात् बोली में परम्परा से चली आती हुई मौखिक रूप में प्रचलित कहानी लोककथा है। अंग्रेजी में लोककथा के लिए 'फोक टेल' शब्द का प्रयोग होता है। डा. देवसिंह पोखरियाल लोक कथाओं में लोकमानस की सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, राग-विराग, आस्था-आकांक्षा आदि मानवीय भावनाओं की प्रधानता

स्वीकारते हैं । उनका कथन है कि लोककथाओं में शब्दाडम्बरों की अपेक्षा भाव सा कथ्य की प्रधानता रहती है और लोकसाहित्य का उत्कृष्ट रूप लोककथाओं में ही देखने को मिलता है। इनमें वर्णन की लघुता और स्वाभाविकता, प्रेम की अभिन्न पुट, अश्लील श्रृंगार का अभाव, मानव की मूल प्रवृत्तियों से साहचर्य, आशावादिता, उपदेशात्मक, मंगल भावना, सुखान्तता (हास्य-रोमांच) आलौकितता तथा औत्सुक्य की भावना रहती है। मांगल गीतों की तरह गढ़वाल के लोकमानस में लोक कथाएं भी लोकप्रिय हैं। आज भी गढ़वाल के बूढ़े लोग चौपालों में बैठकर अपने (नातियों या छोटे नौनिहालों) को लोक कथाएं सुनाकर उनका मनोरंजन करते देखे जा सकते हैं। लोककथाओं का उत्स अर्थात जन्मस्रोत वैदिक संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों में ढूंढा और देखा जा सकता है। लोक-कथाओं की प्राचीन पुस्तकें पंचतन्त्र, हितापदेश आदि है। पालि में बौद्ध कथा साहित्य की लोक कथाओं को 'जातक' कहा जाता है। नीतिकथाओं के रूप में भी लोक को ही उपदेश देने का प्रयास है। संस्कृत, बौद्ध और जैन कथा साहित्य में लोकमानस की ही अभिव्यक्ति हुई है। पाली की तरह अपभ्रंश साहित्य में भी लोककथाओं की बहुलता है। 'पउम चरिउ' इसका उदहारण है। संस्कृत में लोकमानस की अभिव्यक्ति कराने वाली लोक कथाओं की भरमार है। 'वृहतकथा' पैशाची में जिसे 'बढ्ढकथा' कहा जाता है संस्कृत में वृहतकथा, वृहतकथामंजरी और कथा सरित सागर के नाम से मिलती है। 'बेतालपंचविशतिका' में पच्चीस कहानियां है जिसका हिन्दी अनुवाद 'बेताल पच्चीसी' के रूप में मिलता है। वे भी तत्कालीन लोककथाओं के ही रूप है। 'शुकसप्तति' में सत्तर कथाएं हैं।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपको यह ज्ञात हो सकेगा कि

1. लोक कथाएं यहां के लोक को कहां तक अपने में आत्मसात् कर पाई है। इन लोक कथाओं और अन्य प्रदेशों की लोककथाओं में क्या अन्तर है ?
2. गढ़वाली की ये लोक कथाएं लोक को क्या संदेश देती है ? इनका भाषा स्वरूप तथा कथ्य क्या होता है ?
3. इनका कितना पुराना साहित्य है और उसका वर्तमान स्वरूप क्या है ?
4. इन लोककथाओं के मूल में कल्पना तत्व के साथ यहां की प्रकृति, मिथ, और इतिहास का कितना धाल-मेल हुआ है ?
5. इन लोक कथाओं की मूल प्रवृत्तियां तथा शिल्प की क्या विशेषता है। ?

12.3 गढ़वाली लोककथाएं - स्वरूप एवं साहित्य

गढ़वाल के लोक मानस पर इन कथाओं का प्रभाव पड़ा तो है लेकिन बहुत कम। गढ़वाली का कथा साहित्य यहां की आदिम जाति के विश्वासों, यक्ष, आंछरी (अप्सरा), कृष्ण, नागदेवता और पाण्डवों, पिशाचों, दानवों तथा आत्माओं से सम्बन्धित तथा यहां के शासकों से जुड़ी है। यहां की पशु-पक्षी कथाओं पर भी हितोपदेश, पंचतन्त्र का प्रभाव अधिक नहीं है। वे यहां की प्रकृति और लोक के मिथकों पर सृजी प्रतीत होती है। यही गढ़वाली लोककथा की अन्य भारतीय लोककथाओं से भिन्नता है। यहां अतिशयोक्ति या अतिक्रान्त प्रयोग वीरों की कथाओं में उनके शौर्य के रूप वर्णन में देखा जा सकता है। गढ़वाली कथाओं का भी हमारे साहित्य में वही आदर है जो लोकगाथाओं या लोकगीतों का है। अतः प्रचुर मात्रा में लोककथाएं सृजी गई है। गढ़वाल में लोककथा के लिए कथा-कहानी और बारता इन तीनों शब्दों का व्यवहार होता है। डा. चातक के अनुसार, 'बारता मुख्यतः देवी-देवताओं की पौराणिक कथाओं के कहते है'। कथा काल्पनिक मानी जाती है और कानी (कहानी) जीवन कर वास्तविक घटनाओं से सम्बद्ध होती है। गढ़वाली में 'कथणों' धातु का अर्थ झूठ बनाना अथवा कल्पना करना होता है। वैसे कथा देवताओं की भी हो सकती है किन्तु बारता (वार्ता) में बात का भाव प्रधान होता है और कथातत्व गौंण कथा-कहानी और वार्ता (बारता) सुनने सुनाने को दो रूप हो सकते है। एक तो कथाएं की जाती है। इनके पीछे कोई धार्मिक प्रेरणाएं होती है और वे अनुष्ठान के रूप में की जाती है। सत्यनारायण की कथा, भागवत की कथा, महाभारत, रामायण की कथाएं इसके उदाहरण है।

इनका लोकगाथाओं से इस प्रसंग में सीधा सम्बन्ध नहीं है क्योकि ये पढ़कर सुनाई जाती है और जन साधारण उनके प्रति कथा का भाव नहीं रखता। वास्तविक कथाएं तो वे होती है जो बड़ी-बूढ़ियां विश्राम के क्षणों में बच्चों को सुनाया करती है या स्वयं पशु चराते हुए, परस्पर सुनते सुनाते है। वार्ता केवल देवी-देवताओं के जागर में नृत्यमयी उपासना के बीच सुनाई जाती है। प्रायः रात्रि ही उसके लिए उपयुक्त होती है। रात में देवता का नृत्य देखने के लिए एकत्र हुए लोगों मनोरंजन के लिए कभी वार्ताएं आवश्यक समझी जाती थी। इस अवस्था में वार्ता का ज्ञाता कोई भी व्यक्ति समूह के बीच से उठ खड़ा होता है और दोनों कानों में उंगली डालकर संगीत के स्वरों में कोई वार्ता छेड़ देता है। वार्ता के आमुख के रूप में वह ढोल बजाने वाते 'औजी' को सम्बोधित करता है। गढ़वाल में देवी-देवताओं की वार्ताओं के समान अनिष्टकारिणी शक्तियों (भूत-आछरी) का मनौती के लिए नृत्य के साथ जो गीत गाए जाते है उनमें कथा का अंश बहुत होता है और उनकों रांसों कहा जाता है। गोविन्द चातक सम्भावना करते है कि कहीं यह शब्द रासो से मिलाजुला भाव लिए न हो, वैसे बोलचाल में रासो का अर्थ कथा ही होता है। गढ़वाली कानी (कहानी) का अथ मनोरंजन से है। कहानी प्रायः गद्य में ही होती है। कथाएं भी अधिकांशतः गद्य के माध्यम से सार्वजनिक की जाती है । गीत के रूप में जागर, पवाड़े, चैती

आदि अनेक कथा गीति अथवा गीत कथाएं मिलती है। गढ़वाली लोकगाथाओं का शिल्प भी बड़ा सुगढ़ है। वे कथासंवादों के द्वारा आगे बढ़ती है। वर्णन की बारीकी और काव्यात्मक विवरण के लिए उनमें अधिक स्थान नहीं होता। पात्रों का चरित्र-चित्रण घटनाओं के आधार पर के अल कहानीकार या वाचक के मुख से होता है। मानव इन लोक कथाओं में अपने सब गुण-दोषों के साथ उपस्थित मिलता है। उसमें भले-बुरे सभी तरह के पात्र होते है। वे अपनी सहज प्रवृत्तियों से प्रेरित मिलते है। प्रेम की अश्लीलता अभिव्यक्ति इन लोककथाओं में नहीं मिलती हैं।

वीरगाथाओं के नायक भड़ होते हैं। वे ऐतिहासिक चरित्र होते हैं। कुमांऊ और गढ़वाल, सिरमौर पर दिल्ली के बादशाहों के अनेक आक्रमण हुए हैं। माधो सिंह भण्डारी, लोदी रिखोला, कफ्फू चौहान, भानू, रणूरौत आदि की गाथाएं तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक परिवेश एवं घटनाओं को इन कथाओं से संकेतिक करती है। इनमें श्रृंगार और प्रेम के प्रसंग जुड़े होते है। मालू राजुला इसी कोटि की कथा है। भड़ों की स्त्रियां अपने सतीत्व की रक्षा करती मिलती है।

देवी-देवताओं, परियों, भूतों, राक्षसों, चमत्कारों तथा आलौकिक शक्तियों की कथाएं आदिम मानव के भावों (मिथकों) अर्थात विश्वासों की इन्हीं कथाओं में आज तक जीवित हैं। प्रागैतिहासिक काल की अनेक सांस्कृतिक बातें जैसे- राक्षसों की कन्याओं से विवाह, नाग और हूण कन्याओं पर भड़ों की आसक्ति, उनका रूपवती होना , यक्षों का पिशाचों की दैवीय शक्तियों से युक्त होना आदि विश्वास के आधार पर गढ़वाली लोकमानस आज भी उन्हें पूज रहा है और उनकी लोककथाओं को अपने समाज में जीवित रखकर बांच रहा है।

12.3.1 गढ़वाली लोककथाएं और उनके भेद (वर्गीकरण)

डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' के अनुसार गढ़वाल में मुख्यतः जो लोककथाएं प्रचलित है उनके दस प्रकार हैं-

1. देवी-देवताओं की कथाएं
2. पशु-पक्षियों की कथाएं
3. भूत-प्रेत और जग्सो (यक्षों-राक्षसों) की कथाएं
4. परियो (मात्रियों और आछरियों) की कथाएं
5. वीर बहादुरों की कथाएं
6. हास्य कथाएं
7. राजा, रानियों और राजकुमारो-राजकुमारियों की कथाएं
8. जीव-जन्तुओं की कथाएं

9. तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोना की कथाएं

मोहनलाल बाबुलकर ने अपनी पुस्तक 'गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना' में गढ़वाली लोककथाओं का वर्गीकरण, यहां की कथाओं की उपयोगिता और उनके विषयों के आधार पर निम्नवत् किया है-

1. देवकथाएं
2. कथा
3. व्रत कथा
4. उपदेशात्मक कथाएं
5. पक्षियों की कथाएं
6. पशुओं की कथाएं
7. ज्ञान की कथाएं
8. मनोरंजन की कथाएं
9. भूतों की कथाएं
10. परियों की कथाएं
11. समाधान मूलक कथाएं
12. अन्य कथाएं

यहां ज्ञातव्य है कि डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' और मोहनलाल बाबुलकर के वर्गीकरण में प्रायः एकरूपता है, बाबुलकर जी ने राजा-रानी और राजकुमार-राजकुमारियों की कहानियों का तथा तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोना वाली लोककथाओं, व हास्य लोककथाओं को अपने वर्गीकरण में छोड़ दिया है। अब डा. गोविन्द चातक द्वारा किए गए गढ़वाली लोककथाओं के वर्गीकरण को देखिए -

1. देवी-देवताओं की कथाएं
2. परियों, भूतों, चमत्कारों की आश्चर्य तथा उत्साहवर्धक कथाएं

3. वीर कथाएं

4. प्रेम गाथाएं

5. पशु-पक्षियों की कथाएं

6. जन्मान्तर और परजन्म की कथाएं

7. कारण-निर्देशक कथाएं

8. लोकोक्ति मूलक कथाएं

9. हास्य (मौर्ख्य) कथाएं

10. रूपक अथवा प्रतीक कथाएं

11. नीति अथवा निष्कर्ष गर्भित कथाएं

12. बाल कथाएं

सर्वप्रथम तारादत्त गैरोला ने गढ़वाली लोक कथाओं का विभाजन इस प्रकार किया था-

1. वीर गाथाएं

2. परियों की कथाएं

3. पशु-पक्षियों की कथाएं

4. जादू-टोना की कथाएं

बाद में डा. चातक ने इन्हें युक्ति संगत न मानते हुए तारादत्त गैरोला के विभाजन को और भी बुद्धिगत करके लोककथाओं की 12 भागों में विभाजन प्रस्तुत किया तथा वार्ता और कानी (कहानी) का अन्तर भी स्पष्ट किया। उन्होंने अधिकांश देवकथाएं एवं वीर गाथाएं प्रायः वार्ता के अन्तर्गत परिगणित की है। निष्कर्षतः इन चारों विद्वानों तारादत्त गैरोला, डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', मोहनलाल बाबुलकर और डा. गोविन्द चातक के द्वारा कृत गढ़वाली लोककथाओं के वर्गीकरण में निम्न लोक कथाएं प्रमुखता में परिगणित की गई है।

1. वीरपुरुषों की कथाएं 2. प्रणय सम्बन्धी कथाएं 3. भूत-प्रेत, यक्षों की कथाएं 4. पशु-पक्षियों पर आधारित 5. आछरियों पर आधारित 6. राजा-रानियों, राजकुमारों से सम्बन्धित 7. हास्यानुप्रणित लोककथाएं, बाल कथाएं, नीतिकथाएं और देवी-देवताओं पर आधारित कथाएं।

12.3.2 गढ़वाली लोककथाओं की उल्लेखनीय प्रवृत्तियां

गढ़वाली लोककथाओं के वर्गीकरण के बाद अब आपको गढ़वाली लोककथाओं की उल्लेखनीय प्रवृत्तियों की जानकारी पाना अत्यावश्यक है। अतः हम सर्वप्रथम विद्वान लेखक मोहनलाल बाबुलकर द्वारा बताई गई गढ़वाली लोककथाओं की उल्लेखनीय प्रवृत्तियों का अवलोकन करेंगे। बाबुलकर जी ने 43 प्रवृत्तियों का उल्लेख अपनी पुस्तक गढ़वाल लोकसाहित्य की प्रस्तावना में किया है। ये प्रवृत्तियों अग्रांकित है- 1. कर्मयोग के लिए जन्म की प्रधानता का विश्वास 2. प्राणों की अन्यत्र प्रतिष्ठा मिलना 3. मन्त्रबल से शरीरान्तरण की प्रवृत्ति 4. शरीर छोड़ प्राणों की दूसरे जीव में स्थिति 5. चमत्कारी गुण 6. पशु-पक्षियों की भाषा 7. सहानुभूति और सहायता 8. भगवान और उसकी शक्ति पर विश्वास 9. धर्म साक्षी 10. प्रकृति की सहानुभूति 11. जादू द्वारा अनहोनी बातें 12. स्त्री पात्रों की सदृश्यता 13. पुरुषों की अपने आपकों नायिकाओं को सौपंने की प्रवृत्ति 14. पछताने की प्रवृत्ति 15. समस्यामूलक उक्तियों द्वारा समाधान की प्रवृत्ति 16. व्रत रखने की प्रवृत्ति 17. प्रेम की प्रधानता 18. स्वप्नावस्था में देखी राजकुमारी को नापे की होड़ 19. सभी कथाओं में लगभग एक ही प्रकार की घटनाएं 20. बहिन तथा पत्नी का स्वार्थी होना 21. सौतियां मां का क्रूर व्यवहार होना 22. सास-बहू का झगड़ा 23. पुरुष बलि 24. भूत-प्रेतों की बाहुल्यता 25. जादू की सहायता से दुश्मनों को परास्त करना 26. छोटी डिबिया से बावन व्यंजन तैयार करना 27. रानी या राजकुमारी के पेट से सिलोड़ा सा सर्प निकालना 28. स्त्री का पुरुष से प्रेम और अपने पति को मारने की साजिश 29. स्त्रियों का पति की मांसभक्षी से फायदा उठाना 30. जानवरों से असमान विवाह की प्रवृत्ति जैसे- स्याल का विवाह बाधीण से 31. विधवा को नासमझ, मक्कार, जाली, और कुकर्मी समझने की प्रवृत्ति 32. उपदेशात्मक के साथ मनोरंजकता की प्रवृत्ति 33. लोककथाओं में तीन सौ से, चार हजार रूपये, सात भाई एक बहिन, सात समुन्दर, सात परियां तात्पर्य है कि सात नम्बरों की बार-बार पुनरावृत्ति। 34. मामा-मामी का रिश्ता नायकों के प्राण बचाता है। 35. राजकुमारियों की तुलना फूलों से करने की प्रवृत्ति 36. राजकुमारी के मुंह से प्रसन्नता में सफेद फूलों का झड़ना और दुख में कोयले झाड़ना 37. आदमी का कड़ावा में पकना, झझर छूने पर जीवित होना 38. निल्लाद तथा अमृत ताड़ा द्वारा जीवित होना 39. आत्मिक असन्तोष के कारण पक्षी बनने की प्रवृत्ति 40. पंखों को जलाकर एवं मूंछों को रगड़कर राक्षसों की रक्षा करना 41. राह चलते लोगों को गद्दी का मालिक बनाने की प्रवृत्ति 42. पशु-पक्षियों का कथानायकों एवं नायिकाओं का सहायक होना 43. स्त्रियों द्वारा अपने सतीत्व की रक्षा, तथा पुरुषों द्वरार मां के दूध का वास्ता देकर कठिन कार्यों पर विजय प्राप्त करने की उल्लेखनीय प्रवृत्ति का पाया जाना।

मोहनलाल बाबुलकर जी ने गढ़वाली लोककथाओं की जो 43 प्रवृत्तियां बताई है भिन्न-भिन्न गढ़ववाली लोककथाओं की अर्न्तवस्तु के अनुसार निर्धारित की गई है। डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' का गढ़वाली लोककथाओं की प्रमुख प्रवृत्तियों के विषय में कहना है कि ''गढ़वाली

लोककथाओं में गढ़-जनजीवन के चिर-परिचित रूप चित्र मिलते हैं । इनमें युग-युग की भाव धाराओं, सामाजिक भाव-कल्पनाओं तथा सांस्कृतिक गीत विधियों का यथार्थ निरूपण मिलता है। समाज की विभिन्न समस्याओं की सुन्दर व्याख्या और मानव के सुख-दुःख की जीवन रूप मिलता है। उनके द्वारा प्रदर्शित गढ़वाली लोककथाओं की प्रमुख प्रवृत्तियां है-

(क) शाप का प्रचुर प्रयोग- प्राचीन साहित्य की तरह इन लोककथाओं में भी शाप का प्रचुर प्रयोग मिलता है। शाप के कारण मनुष्य का पशु-पक्षी, पत्थर, बेल, पेड़, सांप, चूहा, बिल्ली आदि बन जाना, चेहरा विकृत होना, अंग-भंग होना, इन सबके पर्याप्त उदहारण इन लोक कथाओं में मिलते है।

(ख) कर्मानुसार फल- अपने-अपने कर्मों के अनुसार फल पाना, यह भी उल्लेखनीय प्रवृत्ति है। 'सरण दादू पाणी दे' कथा में लड़की को अपनी करनी का फल भोगना पड़ता है। प्यासे बैल की तरह वह भी जीवन भर चिड़िया के रूप में पानी के लिए तरसती रहती है। 'गुरु और चेला' लोककथा में अपने गुरु को धोखा देने के कारण चेले को अपनी जान गंवानी पड़ती है। 'सियार और भगवान' कर कथा में सियार को अपनी करनी का फल मौत मिलती है।

(ग) मनुष्यों का पशु-पक्षियों की और पशु-पक्षियों को मनुष्यो की भाषा समझना - कई गढ़वाली लोककथाओं में मनुष्य-सियार, चूहा, बाघ, हिरन, रीछ, कौआ आदि से बात करता है। पंचतन्त्र और कथा सरितसागर की कथाओं का इन लोककथाओं पर पर्याप्त प्रभाव मिलता है। 'सियार और रीछ' की कथा में सियार गांव वालों को भैंस के मारने के विषय में बताता है तब गांव वाले सियार के कथनानुसार जंगल चले जाते हैं । 'भट्ट कुटक' कथा में पति चिड़िया बनी हुई और चिड़िया की तरह बोलती अपनी पत्नी की भाषा समझता है।

(घ) तन्त्र-मन्त्र और जादू टोने कर प्रयोग - 'मार-मार सोटा, बांध-बांध डोर' में मन्त्र के प्रभाव से रस्सी दुश्मन को बांध देती है और डन्डा पीटने लग जाता है। तन्त्र-मन्त्र के प्रभाव से प्राणियों की झील बन जाना, पत्थर के रूप में बदल जाना, 'राजकुमारियों और जग्सै नौनि' कथा में राजकुमारी का अपनी तलवार से सात परियों को मारना बताया गया है। सात परियां सुन्दर, झील-बाग, सुहावना मौसम, सोने का सिंहासन, मोतियों के पेड़ और जेवरों के फल-फूल के रूप में बदल जाती है। छोटी सी डिबिया में सौ मन भोजन तैयार होना, छोटी सी हंडियां में छत्तीस प्रकार के बावन व्यंजन पकना, जलती आग में कूद जाना, उफनती नदी-नालों को पार करना, दुर्गम चोटियों पर चढ़ना, पक्षियों की भांति उड़ना, रूप बदलना, यह सब तन्त्र-मन्त्र और जादू टोनों से आदमी के बाएं हाथ का खेल हो जाता है।

(ड़) प्राणों की अन्यत्र स्थिति- जग्सौं (राक्षसों) के प्राण सात समुद्र पर ऊँचे पेड़ पर लटके पिंजरे के अन्दर बन्द तोते के रूप में मिलते है। तोते का गला घोटनें से राक्षस का गला घुट जाता

है, टांगे तोड़ने से राक्षस की टांगे टूट जाती है। इसी प्रकार के प्राण मैना के किसी पत्थर की मूर्ति में, किसी पेड़ में मिलते है।

(च) भूत-प्रेतों की भयभीत कर देने वाली घटनाओं का चित्रण- भुतहे मकान में रात में भूतों का नाच और हल्ला-गुल्ला करना, मकान में रहने वालों का बेहोश होकर मर जाना, भूतों की अनोखी करामातें जैसे- आदमियों का पीछा करना, कभी-कभी स्त्रियों का सहायता करना, रूपया-पैसा देना, सौ-सौ गज की दूरी पर चीज उठाना, पहरा देना आदि बातों का उल्लेख मिलता है।

(छ) प्रेम, रूप और सौन्दर्य कर अद्भुत वर्णन - सौन्दर्य के वशीभूत होकर पुरुष परियों और यात्रियों को अपना जीवन समर्पित कर देता है। प्रेम के प्रभाव से सब कुछ करने को तैयार रहता है, इसी प्रकार राजकुमारियां, अप्सराएं और रानियां भी प्रेम और रूप के वशीभूत होकर सब कुछ करने को तैयार रहती है।

(ज) मनुष्यों और पशुओं की बलि - माधो सिंह की लोककथा में माधो सिंह को सपना आता है कि जब वह अपने लड़के का बलि चढ़ाएगा, तभी नहर में पानी आ सकेगा। इस बात को ज बवह दुःखी होकर अपनी स्त्री को सुनाता है तो किसी प्रकार मां-बाप की बात, बेटा सुन लेता है और तब वह बलि चढ़ाने के लिए जोर देता है। बलि चढ़ने पर नहर में पानी आ जाता है। अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए बकरों और भैसों की बलि चढ़ाकर देवी-देवताओं को प्रसन्न करने का गढ़वाल के प्रायः सभी गावों में प्रचलन है।

(झ) पशु-पक्षियों का सहायक होना - इन कथाओं में पशु-पक्षी मनुष्य के सहायक के रूप में उसकी मदद करते है। जैसे-कौआ द्वारा खतरे की सूचना पाना, हंसों द्वारा पंखों पर बिठाकर सात समुन्दर पार कराना, नेवते द्वारा सांप के टुकड़े-टुकड़े किए जाना आदि घटनाओं से यह प्रवृत्ति मिलती है कि ये सब मनुष्य की सहायता के लिए सदा तत्पर रहते है।

गढ़वाली लोककथा में इनके अतिरिक्त हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' जी ने 8 और प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है -

1. ईश्वर-धर्म और भाग्य पर अटूट विश्वास
2. सास का बहू पर घोर अत्याचार
3. सौतेली मां का दुर्व्यवहार
4. बहन और पत्नी का स्वार्थी रूप
5. बोक्सा विद्या द्वारा परिस्थिति के अनुसार शरीर (चोला) का परिवर्तन

6. साधु-सन्यासियों के कथन में विशेष अनुभव की स्थिति

7. सपनों की अजीब सृष्टि

8. स्त्रियों में सतीत्व की रक्षा के लिए साहसिक कार्य करने की प्रवृत्ति

इस इकाई का अध्ययन करके आप, गढ़वाली लोककथाओं की उल्लेखनीय प्रवृत्तियों, तथा उनके स्वरूप और साहित्य से अवगत हो चुके है। आगे आपकों गढ़वाली लोककथाओं की शैली और शिल्प से अवगत होना है। अतः आपकों अब शैली और शिल्प की जानकारी दी जा रही है।

12.3.3 गढ़वाली लोककथाएं : शैली एवं शिल्प

शैली अंग्रेली शब्द 'स्टाइल' का हिन्दी रूपान्तरण है। भारतीय विद्वान शैली शब्द के मूल में 'शील' रूप को मानते हैं। शकटायन के उणादि सूत्र के अनुसार विद्वान इसे शा (शीड्) धातु में लक् प्रत्यय के योग से बना मानते हैं। जिसका अर्थ विद्वानों ने स्वभाव से लिया है। यास्क के निरुक्त में 'शील' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'अभ्यासे भूयां समर्थ मन्यते। यथा अद्ये दर्शनीया, अद्ये दर्शनीया इति', 'तत् परुच्छेपस्य शीलम' अर्थात इस प्रकार के कथन वाली यह परुच्छेप ऋषि की शैली है। आचार्य पंतजलि ने भी महाभाष्य में शैली शब्द का प्रयोग किया है। 'एषा हि आचार्यस्य शैली लक्ष्यते। 'ग्यारहवीं सदी में उत्पन्न प्रदीपकार 'कैयट' ने 'शीले स्वभावे भावा वृत्तिः शैली' कहा तथा अमरकोष में शैली कर परिभाषा दी है, 'शुचौ तु चरिते शीलम्'। जो कि स्वभाव को इंगित करता है। संस्कृत काव्य शास्त्र में शैली के लिए रीति शब्द प्रयुक्त किया गया है। आचार्य वामन ने 'रीतिरात्मा काव्यस्य' विशिष्ट पद रचना रीति सूत्र में इसे काव्य की आत्मा (पद रचना अर्थात रीति) माना है। रीति का भाव शैली में आ गया है। भले ही रीति शब्द से केवल रचना वैशिष्ट्य भाव समाहित रहता था। पाश्चात्य् समीक्षक शीरों के अनुसार, 'शैली व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है' यह परिभाषा, शैली के पूर्व वर्णित 'शुचों तु चरिते शीलम्, शीले स्वभावे भावा वृत्ति' आदि सूत्रों की पुष्टि करती है। डा. नगेन्द्र के अनुसार, 'शैली विशेष भाषिक संरचना है'। अब 'शिल्प' क्या है ? इस पर विचार करते है। शिल्प का सम्बन्ध अभिव्यक्ति एवं रूप रचना की समस्त प्रक्रियाओं से होता है। इसीलिए किसी साहित्यिक कृति की शिल्प विधि का पता लगाने के लिए हमें उसकी रचना में काम आने वाली विभिन्न विधियों और रीतियों की ओर ध्यान देना पड़ता है, लेकिन शैली का सम्बन्ध अभिव्यक्ति या रूप रचना की प्रक्रिया से न होकर अभिव्यक्ति के प्रकार विशिष्ट से होता है। अभिव्यक्ति के दो पक्ष होते हैं - बाह्य और आन्तरिक। बाह्य का सम्बन्ध केवल रूप रचना से होता है अर्थात् दृष्टि इस ओर रहती है कि विषय-वस्तु की किस रूप में संयोजना की गई है। आन्तरिक पक्ष के अन्तर्गत मनोभावों का विश्लेषण, अर्न्तद्वन्द्व, कुंठाएं, संवेग तथा वृत्यात्मकता का अधिकांशः निरूपण करना पड़ता है क्योकि यह पक्ष व्यक्तित्व का भी खुलासा करता है। शैली के अन्तर्गत अन्तः प्रेरणाओं,

अर्न्तद्वन्द्वों, मनोभावों का विश्लेषण करना होता है। इसमें मूलतः भाव पक्ष का विवेचन किया जाता है और शिल्प में कला पक्ष समाहित रहता है। निष्कर्षतः शैली आत्मनिष्ठ होती है अर्थात शैली में किसी व्यक्ति की अदा, भंगिमा, रुझान तथा रुचि का पता चलता है। इस अर्थ में रीति शब्द जिसकी आप पहले विवेचना देख चुके है उसमें यह व्यापकता नहीं है।

रीति तो परिपाटी, पंथ, चलन या परम्परागत लेखन अथवा रचनागत वैशिष्ट्य की बोधक होती है जबकि शैली से लेखक के व्यक्तित्व की भी पहचान की जा सकती है। गढ़वाली लोक साहित्य में कथागत शिल्प, काव्यगत शिल्प, नाटक-कहानियों का शिल्प भिन्न-भिन्न है और शैली भी भिन्न-भिन्न है। पवाड़े और जागर, पंडवार्ता की शैली अलग है। लोकगीतों में श्रृंगार और करुणा से युक्त वर्णानात्मक शिल्प की प्रचुरता है। अब हम आपसे गढ़वाली लोककथाओं के शिल्प के विषय में चर्चा करेंगे।

12.3.4 गढ़वाली लोककथाओं में शिल्प एवं संवेदना

डा. गोविन्द चातक का कथन है कि, 'जहां तक गढ़वाली लोककथाओं के शिल्प का प्रश्न है, वे सीधी प्रारम्भ होती हैं। पारिचारिक परिचय उनमें मुख्य रूप से आता है। सात भाई, सात रानी, सात कुत्ते, सात बिल्ली। इस प्रकार संख्या में सात को प्रायः प्रयुक्त किसा जाता है। कथा संवादों के द्वारा आगे बढ़ती है। वर्णन की बारीकी और काव्यात्मक वर्णन के लिए उसमें अधिक स्थान नहीं होता। रूप, स्थान आदि का चित्र उतारने के लिए, पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी घटनाओं का आधार केवल कथक (कथा करने वाले) के मुख से होता है। मानव वहां अपने गुण-दोषों के साथ उपस्थित मिलता है। उनमें भले-बुरे सभी तरह के पात्र होते हैं वे अपनी सहज प्रवृत्तियों से प्रेरित मिलते हैं । प्रेम की अश्लील अभिव्यक्ति लोककथाओं में नहीं मिलती। केवल भाषा के सांकेतिक रूप से मर्यादा की रक्षा की जाती है। बीच में ऐसी घटनाएं प्रायः आ जाती है जो आलौकिक होती है। किन्तु वे उत्सुकता को जागरित करने में समर्थ होती है। कथा का अन्त प्रायः सुखान्त होता है और साथ ही उसके साथ नीति वाक्य सम्बद्ध होता है। गढ़वली लोककथाओं के अन्तर्गत वीरगाथाओं का अध्ययन लुप्त इतिहास की श्रृंखला को जोड़ने और उसे पुनःस्मरण कराने का काय करता है।

गढ़वाली लोककथा साहित्य में कहीं नाटकीय संवाद शैली भी दिखती है। जैसे- उदाहरण के लिए यहां हम 'मूर्ख की कथा' का हिन्दी रूपान्तरण दे रहे हैं -

".....इतने में मूर्ख की ससुराल आ गई। उसकी सास ने उससे पूछा-'तुम राजी-खुशी हो' ? मूर्ख बोला 'हाँ'

'क्या मेरी लड़की ठीक है' ?

वह बोला 'ना'

क्या वह बीमार है ? उसने जवाब दिया 'हाँ'

क्या वह ठीक नहीं हो रही है ?

उसने कहा 'ना'

क्या वह मर गई है ?

मूर्ख बोला 'हाँ'।

मूर्ख की बात सुनकर घर मे सब रोने लगे, जब कि उसकी स्त्री घर में राजी-खुशी थी"।

इसी तरह लोककथाओं में कहीं मुहावरों का प्रयोग तो कहीं काव्यात्मक भाषा, और बिम्ब तथा प्रतीकों के माध्यम से कथा को रोचक ढ़ंग से प्रस्तुत करने का विधान देखने में आता है। यही कारण है कि वर्णात्मक, मनोविश्लेषण, अर्न्तद्वन्द्व और मानवीय संवेदनाओं से गढ़वाली लोककथा साहित्य ओत-प्रोत है। रहस्य, रोमान्च और हिन्दी के अयारी कथा साहित्य की हल्की प्रतिछाया भी यहां के लोककथा साहित्य पर पड़ी दिखती है।

संस्कृत के पंचतन्त्र और हितोपदेश के प्रभाव और शैली शिल्प को भी गढ़वली लोक कथाकारों ने अपनी शैली में ढालने का प्रयास किया है। काव्य बिम्ब 'इमेज' भी इन कथाओं में यत्र-तत्र झलक जाती है। क्योकि पुराने कथाकारों ने जब लोक में इन लोककथाओं को सृजा या लिखा होगा तब अपनी अनुभूति को तीव्रता देने के लिए उन्होंने भाव और ऐन्द्रिय बिम्बों को भी अपनी कहानी में स्थान दिया होगा। प्रतीकों की भी ये लोककथाकार कैसे अवहेलना कर सकते है। अतः सियार, बाघ, बकरी, आंछरी आदि तब प्रतीक के रूप में इन लोककथाकारों के साहित्य में स्वतः ही अवतरित हुई होगी और अपनी भाषा को व संवेदन को अर्थ देने के लिए उन्हें काव्य बिम्बों और प्रतीकों की मदद लेनी पड़ी होगी। इन्हीं से उनका शिल्प और उनकी शैली सज्जित हुई होगी। कथागत पात्रों के उपदेशों व सन्देशों को लोक तक पहुंचाने में वे सफल रहे होंगे। क्योकि लोककथाओं में यह अनगढ़पन भी लोक को अभिव्यक्ति देता है। यदि इस अनगढ़पन (ग्राम्यत्व) को शिल्प का सहारा दे दिया जाए तो अब भी कथा साहित्य को यथार्थ और कल्पना के पंखों पर उड़ान भरने के लिए तैयार किया जा सकता है।

12.3.5 गढ़वाली लोक कथाओं की विशेषताएं

गढ़वाली लोककथाओं में गढ़वाल का लोकमानस बोलता है, उनमें उसक संवेदना और अनुभूतियां बोलती है, यहां के आदिम विश्वास (मिथ) तथा समाज बोलता है। इन कथाओं में लोगों के भावात्मक पक्ष के साथ-साथ उनकी सामाजिक स्थिति, रीति रिवाज और मर्यादाओं का परिचय मिलता है। इनमें कुछ लोककथाएं संवेदना के स्तर पर अत्यधिक उच्चकोटि की है। कुड गढ़वाली लोककथाएं ससुराल के जीवन कर यातनाएं और मायके में विषमता के अन्यायों

का बड़ा मार्मिक चित्रण करती है। भाई-बहिन के एक दूसरे के लिए किए गए त्याग, पत्नी का सतीत्व और यौन सम्बन्धों पद इन कथाओं से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इनमें उत्पाथित चचरित्र समाज की बद्ध धारणाओं की ओर संकेत करते है। प्रायः चरित्र व्यक्तिगत कम और वर्गगत अधिक है। ननद और भाभी परस्पर प्रतिद्वन्दी और ईर्ष्यालु दिखाई देती है। भाई-बहिन का स्नेह, आदर्शरूप में इन लोककथाओं में आया है। जैसे- सदेई भाई के दर्शन के लिए पुत्रों की बलि तक दे देती है। इन लोककथाओं मे मां का रूप अन्यमतम है। प्रायः सास-बहू के झगड़े का कारण पुत्र पत्नी का पक्ष लेते मिलते है, किन्तु माता फिर भी स्नेह को नहीं छोड़ती। मां की यह ममता एक कथा में बड़े सुन्दर शब्दों में व्यक्त की गई है। एक पुत्र पत्नी के कारण अपनी माता को मार देता है और रात को उसे गाड़ने के लिए ले जाता है। गड्ढा खोदकर मां को उसमें रखने लगता है तभी भयंकर वर्षा होने का आभास होता है। माता का शव गड्ढे से बोल उठता है- ''हे आकाश! अभी न बरस, मेरे बेटे करे घर जाने दे, तब बरसना''। माता का यह रूप लोककथाओं में अनेक प्रकार से आया है। विमाता (सौतेली मां) बहुत अन्यायी और आततायी मिलती है। सौतिया डाह के अनेक प्रसंग षडयन्त्रों से भरे पड़े है। पत्नी के रूप में नारी को साध्वी और पतिव्रता दिखाया गया है किन्तु पुरुष सदैव ईर्ष्यालु लगता है। सरु और फ्यूंली रौतेली की कथाएं प्रेम के ईष्या समन्वित अवसान को चित्रित करती है। स्त्रियां पति के साथ सती होती इिखाई गई है और विपत्ति में उनके साथ सत से औलोकिक घटनाएं घटित होती होने का उल्लेचा हुए है। चन्द्रावती के सत से उंगली से ही दूध निकलने लगता है और पांच दिन का बालक कुछ ही दिन में युवक हो जाता है। इन गढ़वाली लोककथाओं में मृत पतियों को सत से जिलाने के अनेक उदहारण मिलते है। मातृत्व को प्रतिष्ठित माना गया है। प्रेम-प्रसंगों में कन्याएं बड़ी साहसी होती है। वे अपने परिवार की चिन्ता न कर प्रेमी का अनुसरण करती है। राक्षस कन्याएं तो अपने मानव प्रेमियों को अपने पिताओं को मारने की युक्तियां तक सुझाती है जिससे वे उनके साथ जा सके। ये कथाएं हिडिम्बा और बक जैसी कथा से प्रभावित है। हिडिम्बा भीम से प्रेम करती है और अपने भाई हिडिम्ब को मारने की युक्ति भीम को बताती है। गढ़वाल और जौनसार क्षेत्र में पाण्डवों से प्रभावित सांस्कृतिक एकता मिलती है। यही कारण है कि गढ़वाली लोककथाओं पर पाण्डवों पर घटित हुई कतिपय घटनाओं का वर्णात्मक प्रतिछाया प्राप्त होती है। पाण्डवों की तरह महादेव-पार्वती का उल्लेख गढ़वाल की लोककथाओं में बहुत आया है, उनका निवास किसी पेड़ पर बताया गया है। किसी को विपत्ति में देखकर पार्वती द्रवित हो जाती है। इस कथा के द्वारा नारी की उदारता बताई है। महादेव दया तो कर देते है किन्तु पार्वती की इस दरियादिली करने के लिए गुरु गोरखनाथ की बोक्साडी विद्या (यक्ष विद्या-यक्षिणी) का उल्लेख आया है। महादेव और पार्वती के समान ही गुरु गोरखनाथ भी पात्र की भांति गढ़वाल की लोककथाओं में आए है। चमत्कारों के लिए भूत और अप्सराएं भी उल्लेखनीय है। प्रायः इनकों अनिष्टकारी माना जाता है। किन्तु वे कहीं मानव का हित करते भी मिलते है। पशुओं में शेर, हाथी, लोमड़ी, सियार, भालू, चूहा, और पक्षियों में टिहीवा, कौआ, फाख्ता, कोयल, तीतर विशेष चरित्र है। बिल्ली, चूहा, कौआ, लोमड़ी को बड़ा चतुर माना गया है। चूहा महत्वाकांक्षी और मनुष्य के सहायक के रूप में आया

है। बकरी की दुर्बलता और छिपकली का आलस्य प्रसिद्ध है। शेर को गढ़वाल की लोककथाओं में मूर्ख सिद्ध किया गया है।

गढ़वाली लोक कथाओं का साहित्य

(क) फुलदे राणि - एक बुढ़िया को एक नोन्याल छयो वे अपणि ब्बै मु बोले, ब्वै ई तरह हम भूखा कब तक रौला। मैं कखि परदेश जौलो। वैकी ब्वैन बोले कि परदेश जाईक अब ल्योंदि तू फुलदे राणि। कीक जांदी कखि यख अपनी कोणों त छैच मरण। वे लड़का न पूछे कख छ मां वा फुलदे राणि ? अरि कनि छ वा। मां न बोले बेटा, एक राजा की लड़की छ। वा बड़ी खूबसूरत छ। लेकिन आदमियों की गन्ध समझदी। लड़का न बोले अच्छो मां, मैं परदेश जांदू। मां का समझोण-बुझोण पर भी वैन एक भी नि मनी, चल दिने। चलदो-चलदो वे सणी कई दिन बीति गैन। भूको-प्यासों।

एक दिन रास्ता मा वे सणि चार जोगी आपस मा झगड़ा कर्दा मिलेन। वैन पूछेन - 'भाई तुम क्योंकु छया झगड़ना' ? जोंग्योन बोले ' हम चार गुरुभाई छवां, हमारा गुरु को देहांत होये, अर अब गददी का खातिर झगड़ा पड़िगे। एक बोलदों मैं बैठुलो, दूसरों बोलदो मैं। ये वास्ता तुम यो फैसला किरया'। लड़का न बोले- 'तुम अपणी-अपणी सिद्धि का मन्त्र बता। तब मैं तोलो, जैकों ज्यादा ताकतवर मन्त्र होलो, ओ गददी का मालिक होलो'। पहलो जोगी बोलदो। 'भाई, मन्त्र बतौण लायक त नी छ, पर जब तुम पंच बणाया, तब बोलण ही पड़दी'। एक ने बोले 'मेरा मन्त्र छः- चल मेरी उडण खटोली देश' ! दूसरा न बोलों-'पक-पक' डिबिया भोजन अर सोर करीछि भात'। तीसर न बोलेः 'मार सोटा बांध दो पूड़ी'। चौथन बोलेः-' झड दो खंता सोने चांदी' ।

लड़का न मन्त्र याद करियाले और बोले-'चल मेरी उडण खटोली, फुलदे राणी का देश' लड़का एकदम फुलदे राणी का देश पहुंच गए अर जोगी खौल्या देखण लेग्या। लड़का शहर मा पंहुच्यों। वैन सबसे पहलि 'झड खन्ता' पढ़े, वख मू काफी रुपया झडि गैन। कपड़ा-लत्ता बणाइन लड़का त अब राजाओं की तरह सीजे। काफी रात मा वैन अपणी खटोली याद करे अर फुलदे राणी का महल मा गए, राणी का कमरा मा गए। वैन राणि पर द्वी चपत लगाई। हे तरह ओ काफी दिन चपत मारदो रये। वा लड़की कमजोर बणिगे। एक दिन राजा ने पूछे कि बेटी तु किले सुखणील छे। वीन सारी बात राजा का पास लगाये। राजा न सोचे आज रात मैं भी देखिल्यू, भोल गोलि से मारे जालो। फिर रात लड़का आये और वीकी पलंग सहित उड उईक ल्हीगे। आखिर वी सणी अपण देश ल्ही जान्दो अर अपणी राणी बणोदो।

(ख) देवी-देवताओ पर आधारित लोककथाएं- गंगू रमौला-

टिहरी गढ़वाल की गात है। रमोली गढ़ में गंगू नामक एक प्रसिद्ध जागीरदार था। कुबेर उसका खजांची था और अन्नपूर्णा उसके भण्डार की देखरेख करने वाली थी। इतनी धन-दौलत होते हुए भी वह बहुत परेशान सा रहता था। एक सौ वर्ष की अवस्था में बूढ़ा शरीर, किन्तु सन्तान एक भी

नहीं। रानी मीनावती के बार-बार कहने पर भी गंगू को देवी-देवताओं पर भी कोई विश्वास नहीं जमा। उसे अपनेपन का अभिमान था। जीवन में कभी किसी के लिए आदर प्रदर्शित करना उसने कभी सीखा ही नहीं था। भयंकरता में वह चरम सीमा को पार कर चुका था। अपनी प्रजा की भेड़-बकरियों को जबरदस्ती लूट-खासोट क रवह खाया करता था। यहां तक कि अविवाहित लड़कियों और बांझ भैसों पर भी उसने कर लगा दिया था। लोग उसका नाम सुनते ही कांपने लगते थे। उसके आतंक से सभी दुखी थे। किन्तु कोई चारा न था।

जब कृष्ण को पता लगा तो उन्होंने असके पास सन्देश भेजे और अपनी बात मनवाने के लिए जोर डाला किन्तु गंगू टस से मस न हुआ। अन्त में कृष्ण को द्वारिका छोड़कर ब्राह्मण का वेश बनाकर रमोली हाट जाना पड़ा। गंगू अपनी भेड़-बकरियों को लेकर हरियाली गया हुआ था। हरियाली एक ऐसा चरागाह था जहां नाना प्रकार की औषधियां और जड़ी-बूटियां थी। मीनावती तथा दूसरे लोगों ने जब ब्राह्मण का दिव्य रुप देखा तो सब हैरान रह गए। बाप-रे-बाप ऐसा सौन्दर्य ? रानी के पूछने पर कृष्ण ने बताया कि वह उनका खानदानी ज्योतिषी है और इस समय गंगू की जन्मपत्री देखने आया है कि उसके भाग्य में पुत्र है या नहीं। ब्राह्मण ने जल्दी-जल्दी गंगू के ग्रह देखे, कुछ कहा और फिर अचानक अन्तर्धान हो गया। गंगू जब घर लौटा तो उसकी रानी ने ब्राह्मण की बात सुनाई, किन्तु गंगू ने अपनी रानी को बुरा-भला कहा और ज्योतिषी की बात पर कोई विश्वास नहीं किया। कुछ देर बाद ही उसकी पीठ में भंयकर दर्द होने लगा। देखते ही देखते उसकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो गई और सारे अनाज को चीटियाँ चट कर गई। उसकी भेड़-बकरियां एक-एक कर मरने लगी और सारी फसल सूख कर समाप्त हो गई। गंगू ने अपने दुर्भाग्य और अकाल ताण्डव के बारे में अपनी रानी से पूछा कि इसका क्या कारण हो सकता है। रानी ने बताया कि इसका ब्राह्मण का कोप ही हो सकता है।

गंगू का सारा परिवार त्राहि-त्राहि कर रहा थाख् लेकिन उसकी हठ ज्यों की त्यों थी कुछ दिन बाद गंगू ने विचित्र स्वप्न देखा। कृष्ण ने गंगू को काल्या पहाड़ की चोटी पर आने को कहा। गंगू ने कृष्ण से पूछा कि 'तुम कौन हो' ? मैं तुम्हारा ईष्ट देवता हूं, कृष्ण ने उत्तर दिया। 'यदि तुम वारणी सीमा में मेरा एक मन्दिर बनवा दोगे तो तुम्हारी सारी धन-दौलत वैसी की वैसी मिल जायेगी' किन्तु गंगू को इस पर विश्वास न हुआ। कहने लगा कि शायद तुम लोगों ने सुना होगा कि मेरी सम्पत्ति समाप्त हो गई। मैं तुम पर तब विश्वास करुंगा जब तुम हिडिम्बा नाम की डायन को मारोगे। कृष्ण ने अपनी मुरली बजाई। मुरली की तानसुनते ही हिडिम्बा दौड़ी-दौड़ी कृष्ण के पास आई और सुन्दर-स्वस्थ कृष्ण को देखकर कहने लगी कि 'ओह, मैं कितने दिन से भूखी थी आज अच्छे मौके पर मुझे खाना मिला'। कृष्ण ने कहा 'पहले हम दोनों अपनी-अपनी ताकत दिखाएं। सामने यह झूला है बारी-बारी से एक दूसरे को झुलाए। देखें कौन ज्यादा झुला सकता है ?। हिडिम्बा तैयार हो गई। पहले कृष्ण झूले पर बैठे। हिडिम्बा ने अपना पूरा जोर लगाया किन्तु वह झूले को हिला तक सकी। अब हिडिम्बा के बैठने की बारी थी। जैसे ही वह झूले पर बैठी, कृष्ण ने उसे इतना उपर उठा दिया कि वह धड़ाम से धरती पर गिर पड़ी। उसके टुकड़े-टुकड़े हो

गए। उस समय सारा रमोली गढ़ कांप उठा। जैसे कोई भयंकर भूकम्प आ गया हो। यह देख गंगू ने दो गूंगे कृष्ण के पास भेजे कि देखों की क्या हुआ ?

गूंगे कृष्ण के पास पहुंचते ही बोलने लगे और लौटकर गंगू के पास आये तो उन्होंने सारी कहानी सुनाई फिर भी गंगू को विश्वास नहीं हुआ। अन्त में कृष्ण स्वयं साधु का वेश बनाकर गंगू के यहां गए और खाने के लिए दूध-दही मांगा। गंगू ने उन्हें धक्का देकर निकाल दिया किन्तु मीनावती ने उन्हें खूब दूध-दही खिलाया। साधु ने मीनावती को आर्शीवाद दिया और गंगू को कोढ़ी हो जाने का शाप दिया। कोढ़ी हो जाने पर गंगू टस-से-मस नहीं हुआ। उसने अपनी जिद नहीं छोड़ी। जब गंगू पर इन सब बातों का कोई असर नहीं हुआ तब कृष्ण स्वयं नाग का रुप धारण कर उसकी बिस्तर पर बैठ गए। गंगू चालाक था, उसको नाग का कुछ आभास सा हो गया और वह उस रात चुपचाप बाहर बैठा रहा। अन्त में कृष्ण ने रमोली गढ़ के पानी के सारे स्रोत सुखा दिए। कहीं पानी की एक बूंद भी नहीं रही। पशु-पक्षी सब प्यास के मारे मरते जा रह थे। गंगू गंगा का पानी पीने गया लेकिन वह खून में बदल गया। अब गंगू भी कुछ परेशान सा हो गया। लौटने पर उसने अपनी रानी से पूछा। रानी ने कहा कि किसी पंडित से पूछ लो कि यह सब क्यूं हो रहा है! कोई चारा न था। गंगू ने ज्योतिषियों से पूछा। उन्होंने बताया कि कृष्ण नाराज हो गए है। उनकों मनाने के लिए तुम्हें भूखा-प्यासा रहना होगा। गंगू ने द्वारिका के लिए प्रस्थान किया और वहां पहुंचकर भगवान के चरणों में पड़ गया। कृष्ण ने उसे क्षमा कर 'सद्या' और 'सेम' में मन्दिर बनाने को कहा। गंगू ने सेम में मन्दिर बनवाया, किन्तु मन्दिर पूरा होते ही धरती में समा गया। अब गंगू ने अपने सारे इलाके में जगह-जगह कृष्ण के मन्दिर बनवाए। थोड़े ही दिनों में उसकी सारी खोई सम्पत्ति वापस मिल गई। वह ठीक हो गया और श्रीकृष्ण की कृपा से उसके 'सिदवा' और 'विदवा' दो पुत्र भी हो गए।

12.6 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपको यह ज्ञात हो गया होगा कि -

1. लोक कथाएं यहां के लोक को कहां तक अपने में आत्मसात् कर पाई है। इन लोक कथाओं और अन्य प्रदेशों की लोककथाओं में क्या अन्तर है।
2. गढ़वाली की ये लोक कथाएं लोक को क्या संदेश देती है इनका भाषा स्वरूप तथा कथ्य क्या होता है।
3. गढ़वाली लोक साहित्य कितना पुराना है तथा उसका वर्तमान स्वरूप क्या है।
4. इन लोककथाओं के मूल में कल्पना तत्व के साथ यहां की प्रकृति, मिथ, और इतिहास का कितना धाल-मेल हुआ है।
5. इन लोक कथाओं की मूल प्रवृत्तियां तथा शिल्प की क्या विशेषता है।

12.7 शब्दावली

रमौली गढ़ -		उत्तराखण्ड के टिहरी जनपद में है। यहां श्रीकृष्ण का सेम-मुखेम नामक प्रख्यात मन्दिर है। प्राचीन साहित्य में इसे रमणक द्वीप भी कहा गया है।
खरसाली -		यह स्थान उत्तराखण्ड में यमुनोत्री मार्ग पर है।
साबर की विद्या	-	सम्मोहन की विद्या।
कन्दूणियें -		कान
खुरसानी चीरा	-	कनफट
पंद्यारा	-	पानी की धारा

12.8 अभ्यास प्रश्न

1. लोककथा से क्या तात्पर्य है ? गढ़वाली लोक कथाओं में किसी एक गढ़वाली लोककथा को हिन्दी भाषा में लिखों।
2. गढ़वाली लोककथाओं की कोई तीन प्रमुख प्रवृत्ति बताइएं।

3. शिल्प से आप क्या समझते है ? शिल्प और शैली में अन्तर बताइए।

4. 'मूर्ख की कथा' के संवाद गढ़वाली में लिखिए।

5. तारादत्त गैरोला ने लोककथाओं का जो विभाजन किया है उसका उल्लेख कीजिए।

6. डा. चातक द्वारा उल्लिखित गढ़वाली लोककथा का वर्गीकरण क्या है ?

7. निम्न लिखित पर संक्षिप्त में टिप्पणी लिखिए- बारता, जातककथाएं, सरगदादू पाणि दे, तन्त्र-मन्त्र और जादू टोना वाली कोई एक गढ़वाली लोककथा का सारांश।

8. निम्नलिखित पुस्तकों के लेखकों के नाम बताइये-

   (क) गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना

   (ख) उत्तराखण्ड की लोक कथाएं

   (ग) गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य

   (घ) गढ़वाली लोक कथाएं

   (ड़) गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य

   (च) गढ़वाली लोकगीत विविधा

9. डा. हरिदत्त भट्ट द्वारा उल्लिखित गढ़वाली लोककथाओं की अन्य आठ प्रवृत्तियां कौन सी है ? क्रमश उल्लेख करों।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न-2 का उत्तर- गढ़वाली लोककथाओं की प्रमुख तीन प्रवृत्तियां है-

   (क) कर्मभोग के लिए जन्म की प्रधानता का विश्वास

   (ख) प्राणों की अन्यत्र प्रतिष्ठा मिलना

   (ग) पछताने की प्रवृत्ति

प्रश्न-3 का उत्तर- शिल्प के अन्तर्गत कला पक्ष समाहित रहता है। यह कथा की या काव्य की बाह्य रूप रचना का कार्य करता है। अन्तरंग तत्व शैली है। शैली के अन्तर्गत जहां अन्तःप्रेरणाओं, अर्न्तद्वन्द्वों और मनोभावों का विवेचन किया जाता है वहीं शिल्प के अन्तर्गत कथ्यसंवादों की रोचकता, सहजता, प्रभावोत्पादकता और अलंकृत वाक्य विन्यास आता है।

शिल्प अपनी विशेषता लिए रहता है। जैसे- गढ़वाली लोककथाओं में सात भाई, सात समुन्द्र, सात कुत्ते, सात बिल्ली। यह सात शब्द (अंक) शिल्प विशेष या (रुढ़ि परम्परा निर्वाह) के कारण प्रयुक्त करना होता है। हम आपको पहले भी निर्दृष्ट कर चुके है कि अभिव्यक्ति के दो पक्ष होते है- एक आन्तरिक, दूसरा बाह्य। यह आन्तरिक पक्ष शैली है और बाह्य पक्ष शिल्प, जिसे सामान्यतः भाषा में आप कला पक्ष कहते है। यही शैली और शिल्प में अन्तर है।

प्रश्न-4 का उत्तर 'मूर्ख की कथा' गढ़वाली भाषा में-

एकदा एक मूरख अपण ससुराल पैट। चलदा-चलदा वे कु ससुराल दिखैण बौढ़िग्या। उ खुश ह्वे ग्या, सासुजी तैं मिलण का बाद सासुल पूछ- हे बाबा तुम राजि खुशी छौ ?

मूरखल ब्वाल- 'हाँ' सासू।

सासुल पूछ-क्य मोरि नौनि खूब च ?

बैल-ब्वाल 'ना'

क्य व विभार चा ?

वैल जबाप द्या- 'हाँ'

क्य व ठीक नि हूणी चा ?

मूर्ख ल ब्वाल- 'ना'

अरे वय व मोरि ग्याई ?

वैल ब्वाल- 'हाँ'

जबकि घरमा वे कि औरत ठीक-ठाक छाई।

प्रश्न-5 का उत्तर- तारादत्त गैरोला ने लोककथाओं का निम्न विभाजन स्वीकार किया है-

1. वीर गाथाएं
2. परियों की कथाएं
3. पशु-पक्षियों की कथाएं 4. जादू-टोना की कथाएं

प्रश्न-6 का उत्तर- डा. गोविन्द चातक के द्वारा किया गया गढ़वाली लोककथाओं का वर्गीकरण निम्नलिखित है-

1. देवी-देवताओं की कथाएं
2. परियो, भूतों, चमत्कारों की आश्चर्य व उत्साहवर्धक कथाएं
3. वीरगाथाएं
4. प्रेम कथाएं
5. पशु-पक्षियों की कथाएं
6. जन्मान्तर और परजन्म की कथाएं
7. कारण-निर्देशन की कथाएं
8. लोकोक्ति मूलक कथाएं
9. हास्य (मौर्ख्य) कर कथाएं
10. रूपक अथवा प्रतीक कथाएं
11. नीति अथवा निष्कर्ष गर्भित कथाएं
12. बाल कथाएं

प्रश्न-8 के उत्तर-

(क) गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना-मोहनलाल बाबुलकर

(ख) उत्तराखण्ड की लोककथाएं- डा. गोविन्द चातक

(ग) गढ़वाली भाषा औा उसका साहित्य- डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'

(घ) गढ़वाली लोक कथाएं- डा. गोविन्द चातक

(ड़) गढ़वाली काव्य का उद्भव और विकास एवं वैशिष्ट्य- डा. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला

(च) गढ़वाली लोक गीत विविधा- डा. गोविन्द चातक

प्रश्न-9 का उत्तर- डा. हरिदत्त भट्ट उल्लिखित गढ़वाली लोककथाओं की अन्य आठ प्रवृत्तियां निम्नलिखित हैं।

1. ईश्वर, धर्म और भाग्य पर अटूट विश्वास।
2. सास का बहू पर घोर अत्याचार।
3. सौतेली मां का दुर्व्यवहार
4. बहन और पत्नी का स्वार्थी रूप।
5. बोक्सा विद्या द्वारा परिस्थिति के अनुसार शरीर (चोला) का परिवर्तन।
6. साधु-सन्यासियों के कथन में विशेष अनुभव की स्थिति।
7. सपनों की अजीब सृष्टि।
8. स्त्रियों में सतीत्व रक्षा के लिए साहसिक कार्य करने की प्रवृत्ति।

12.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गढ़वाली लोककथाएं- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 1996, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
2. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य- डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
3. उत्तराखण्ड की लोककथाएं- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
4. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना- मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।
5. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य- डा. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।
6. गढ़वाली लोक गीत विविधा- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
7. धुंयाल, अबोध बन्धु बहुगुणा, गढ़वाली भाषा परिषद, देहरादून, संस्करण अगस्त 1983

12.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लोककथाओ से आप क्या समझते हैं? गढ़वाली लोक कथाओं के स्वरूप पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।
2. गढ़वाली लोककथाओं का वर्गीकरण करते हुए उनकी प्रमुख प्रवृत्तियों का विश्लेषण कीजिए।

इकाई 13 गढ़वाली लोक साहित्यः अन्य प्रवृत्तियां

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 गढ़वाली लोक साहित्य की अन्य प्रवृत्तियां
13.3.1 गढ़वाली लोक साहित्य की अन्य प्रवृत्तियां
13.3.2 गढ़वाली लोकगीतों अन्य प्रवृत्तियां
13.4 सारांश
13.5 अभ्यास प्रश्न
13.6 शब्दावली
13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
13.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

गढ़वाली लोक साहित्य अब लगातार अनुसंधान और विवेचना का विषय बनता जा रहा है। उत्तराखण्ड भाषा संस्थान की स्थापना के बाद उत्तराखण्डी साहित्य का प्रकाशन एवं उस पर विचार चर्चा और शोध समीक्षण का कार्य लगातार चल रहा है। नए लेखक नई तरह से लोक साहित्य पर अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं। अन्य प्रान्तीय भाषाओं (लोक भाषाओं) का तुलनात्मक अध्ययन भी जोरों पर है। भाषिक तत्वों तथा लोकतत्वों और सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि से भी लोक साहित्य की विवेचना की जाने लगी है। अब लोक गाथा, लोक गीत, और लोक में व्याप्त मिथक (लोक विश्वास) पर नए मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से विश्लेषण करने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है। इस प्रकार के अध्ययन से गढ़वाल क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत, उसके प्रभाव और विकास का पता चलता है। गढ़वाली लोक साहित्य की प्रवृत्तियां का पूर्व के पाठों और इकाईयों में भी दिक् दर्शन किया जा चुका है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई का विधिवत् अध्ययन करने के पश्चात आप

1. खण्डकाव्य एवं महाकाव्य की अधुनातन नूतन प्रवृत्तियां जान सकेंगे

2. गीतिकाव्य एवं संवाद काव्यों की अन्य प्रवृत्तियां जान सकेगें

3. नाटक साहित्य की अन्य प्रवृत्तियां, तथा पुराने नाटक साहित्य की प्रवृत्तियों में मूलभूत अन्तर की पहचान कर सकेंगे।

4. कथा (कहानी) की अन्य प्रवृत्तियां पहचान सकेंगे।

5. लोकगीत एवं गाथागीतों की अन्य प्रवृत्तियां जान सकेंगे।

6. प्राचीन लोक साहित्य विशेषकर आधुनिक काव्य में कलापक्ष एवं भाव पक्ष में हुए परिवर्तन को जान सकेंगे।

13.3 गढ़वाली लोक साहित्य की अन्य प्रवृत्तियां

19.3.1 गढ़वाली लोक साहित्य की अन्य प्रवृत्तियां

गढ़वाली लोक साहित्य की विधाओं की पृथक-पृथक प्रवृत्तियों का आप पूर्व में भी अध्ययन कर चुके हैं। गढ़वाली लोक साहित्य की कुछ अन्य प्रवृत्तियां निम्नवत हैं-

1. काव्य तत्वों में रस की प्रधानता जैसे- गढ़वाली वीरगाथाओं (पवाड़ो) में वीर, श्रृंगार और करुणा तथा अद्भुत रस की प्रमुखता है। रणू रौत का पवाड़ा उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

वीर रस - राजा को आदेस् पैक रौत चलीगे, माल की दूण कुई माल बोदा-

ये तैं चुखनी चुण्डला आंगूली मारला। तब छेत्री को हंकार चढ़े रौत,

मारे तैन मछुली-सी उफाट, छोड़े उड़ाल तरवार।

तैन मुण्डू का चौंरा लगैन, तैन खूनन घट्ट रिंगैन मरदो,

तै माई मर्द का चेलान मरदो। सी केला सी कच्चैन, गोदड़ा सी फाडीन।

बैरी को नी रखं एक, ऋणना को-सी शेष।

श्रृंगार रस - झंकरु होतो मातो उदमातो, राणियों को रौसियों होलो वो, फूलू को हौसिया

रणू रौत की बौराणी भिमला पर, वैकी लगी छै आंखी।

रणू तै जुद्ध मा जायूं सुणीक, वो चली आये भिमला का पास।

करुण रस- करुण रस का यह निम्नोक्त उदाहरण कालू भण्डारी के पवाड़े से उद्धृत किया जा रहा है।

रोये बराये तब राणी ध्यानमाला, भटके जने ऊखडुं सी माछी।

मैं क तैं पायूं सोहाग हरचें, मैंक तैं मांगी भीख खतेण

कनो मैंक तैं मांगी तई दैव रुठे ? रखे दैणी जंगा पर वींन कालू को सिर

बाई जांग पर धरे वो रुपू गैंगसारो। रौंदी बरांदी चढ़े चिता ऐंच

सती होई गए तब ध्यानमाला!

2. मानवीकरण की प्रवृत्ति- हाथी, शेर, गीदड़ भी मनुष्य जैसे बोलते और आचरण करते दिखाए गए हैं।

3. अलंकार- रुपक और उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग रुपाकृति वर्णन में अतिशयोक्ति की अतिरंजना, वीर भड़ों के शारीरिक सौष्ठव एवं पराक्रम वर्णन में, सुन्दरियों के देहाकर्षण में सर्वत्र दृश्यमान है। उदाहरणार्थ- कवि कन्हैयालाल डंडरियाल के अॅज्वाल कविता संग्रह की उल्यरु जिकुडी कविता में आये अलंकारों के विविध बिम्ब-प्रतिबिम्ब प्रस्तुत है-

स्यूंद सी सैण मा की कूल, स्वाति की बूंद सी ढ्वलीने

झुमकि सी तुड़तुड़ी मंगरि, मखमलि हरि सी अंगडि

फील्वर्यू हलकदी धौपंली, घुंगटी सी लौकदि कुयेड़ी

उपर्युक्त पद्य में समतल खेतों की गूल को मांग के सदृश, आंसू को स्वाति के बूंद, पानी को पतली धारा को झुमकों, हरे मैदानों को अंगड़ी, और उड़ते कोहरे की चादर को घूघंट के समान बताकर कवि ने प्रकृति का चित्रण किया है। भूम्याल महाकाव्य में कविवर नागेन्द्र बहुगुणा 'अबोध बन्धु' की उपमाएं उनके अलंकृत कवि होने के प्रमाण है।

डांडा को क्वी तरुण हाथी सी लग्यूं मस्त बाटा

हर तर्प बटि सुन्दरता ह्रदय मा, बौला को पाणि सी कगार कटणि

हिरणी की बच्ची सी कुंगलि चिफली भरी नि सकणि हो चौकड़ी ज्वा

म्वारी सी माधुर्य भरीं च गूंगी चखुली सी ज्वा टुपरि उड़ नि सकदी

इन पंक्तियों में रास्ते में चलते तरुण हाथी के समान जीतू के मन में, भरणा की सुन्दरता ऐसे समा रही है जैसे गूल के किनारों की मिट्टी काटती बारीक पानी की धारा, जीतू की गोद में समर्पित भरणा हिरणी की कोमल बच्ची, मधुभरी मधुमक्खी, या आकर्षक चिड़िया के समान दिखाई दे रही है। उक्त पद्य में मालोपमा अलंकार है। उमाल के कवि प्रेमलाल भट्ट ने भी कुछ ऐसी ही उपमाओं को काव्य में अपनाया है।

मिथे उर्ख्यला की धाण सी, क्वी धौलि गै क्वी कूटि गै

निनि बोतल को नशा सी मैं, कखि कोणा लमड्यूं रैगयूं

कखि प्रीत क्वी मिलि छई, नौनो का बांठा कि भत्ति सी,

फुंड फेकि द्यो ये समाज न, मि फुकीं चिलम को तमाखु सी

इन पंक्तियों में कवि ने सामाजिक ज्यादतियों को ओखली में कूटे जाने के समान, खाली बोतल या जले हुए तम्बाकू की चुटकी के समान निरर्थक तथा प्रीत को बच्चे के हिस्से की खीर के समान नई उपमाएं दी है।

4. नए प्रतीकों के प्रयोग की प्रवृत्ति - आधुनिक समय के सुप्रसिद्ध गीतकार नरेन्द्र सिंह नेगी ने अपने गीतों में प्रतीकों को चुना है। उन्होंने जिन प्रतीकों को चुना वें लोक जीवन अथवा लोकभाषा में प्रचलित है। जैसे- उकाल-उंदार गीत में उकाल जीवन संघर्ष और उंदार आसान या पतनोत्मुख जीवन के प्रतीक है। 'हौसिया-गीत' में बसगल्या न्यार, पोडमा को पाणी, धार मा को बथौं, इयूतू तेरी जमादरी में इयूतू शक्ति या राजसत्ता का प्रतीक, अंगूठा घिसै- अनपढ़ तथा लटुली फूली गैनि गीत में पके हुए बाल समय गुजर जाने के प्रतीक है। कवि के गीत संग्रह गाण्यूं की गंगा-स्याण्यूं का समोदर की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत है जिनमें गढ़वाली प्रतीकों के प्रयोग की प्रवृत्ति दिखाई देती है-

खैरि का अंधेरों मा खुज्ययुं बाटु

सुख का उज्याला मा बिरड़ि गयूं

आंखा बूजिकि खुलदिन गेड़

आंखा खोलिकि अलझि गयूं

उमर भप्ये की बादल बणिगें

उड़दा बादल हेर्दि रयूं।

ज्वानि मा जर सी हैंसी खते छै

उमर भर आंसू टिप्दि रयूं

रुप का फेंण मा सिंवाल नि देखी

खस्स रौड़ू अर रडद्वदि गयूं

इन पंक्तियों में अंधेरा- परेशानी का, उजाला सुख का, गेड-मानसिक गुत्थी का, उलझना- परेशानी में पड़ना, बादल- बुढ़ापा का, हंसी- खुशी का, आंसू-दुख का, फेण- रुप की चमक तथा सिंवालु- (कायी) आकर्षण मन्द पड़ने का प्रतीक है।

5. हिन्दी साहित्य के अनुसरण की प्रवृत्ति- गढ़वाली लोक साहित्य हिन्दी साहित्य से प्रभावित हुआ है। पवाड़ों में और गढ़वाली वीरगाथाओं में हिन्दी का प्रभाव दिखाई देता है। हिन्दी वीरगाथा काव्य के कवियों ने राजाओं की वंशावलियों और युद्धों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। तो गढ़वाली पवाड़ों में भी लोक नायकों/भड़ों की वीरता का लोमहर्षक वर्णन मिलता है। जगदेव पंवार, गढू सुम्याल, सूरिजनाग, कालू भण्डारी, रिखोला लोदी, माधो सिंह भण्डारी, तीलू रौतेली आदि अनेक पवाड़ों के गाथा तत्व हिन्दी वीरगाथाओं से मिलते है। गढ़वाली की प्रणय गाथाओं/जीतू बगड़वाल, फ्यूंली रौतेली, राजुला मालूसाही, गजू मलारी आदि में हिन्दी प्रेम आख्यान परम्परा की प्रवृत्ति दिखाई दे

पुरानी गढ़वाली लोक गीत कर बानगी बदली सी प्रतीत होने लगी है। यह उर्दू गीति विद्या की भी प्रभाव मानी जा सकती है।

6. प्रकृति चेतना और पर्यावरणीय चिन्ताओं के वर्णन की प्रवृत्ति- गढ़वाली लोक साहित्य के कवियों ने प्राकृतिक वनस्पतियों एवं रमणीय स्थलों की सुरक्षा, नदियों की पवित्रता बनाए रखने और प्राकृतिक संसाधानो के बेतहाशा दोहन का कविता लिख करके विरोध जताया है। कवि भजन सिंह 'सिंह' ने सिंह सतसई में पंचायती न वृक्षारोपण कविताओं में सरकारी नियंत्रण का विरोध जतलाया है। कवि हीरालाल उनियाल, सायर सुरेन्द्र (चिन्मय सायर), और गीतकार नरेन्द्र सिंह नेगी की कविताओं में पर्यावरणीय चिन्ताएं दृष्टिगत होती है। नरेन्द्र सिंह नेगी के डाल्यूना काटा, डांड्यू की विपदा, जिदेरी घसेरी, डाली रोया, गंगाजी और डाम का खातिर गीतों में प्रकृति वेदना तथा जन पीड़ाओं और समस्याओं के स्वर सार्वजनिक होते है। उनके डाम का खातिर गीत पर सरकार द्वारा प्रतिबन्ध भी लगाया गया था।। इस गीत का एक बन्ध आपके अध्ययन हेतु उद्धृत किया गया है-

अबारी दा तू लम्बी छुटटी लेकी ऐई, ऐगी बगत आखीर

टीरी डूबण लग्यूं छ बेटा, डाम का खातिर।

गीतकार नरेन्द सिंह नेगी के गीत श्रोता और पाठकों के मन में आह्लादक बिन्दु प्रस्तुत करते है। उनके गीत बसन्त ऐगे में प्रकृति के मानवीकरण के साथ-साथ जीवन के उल्लास का सजीव चित्रण निम्नवत् किया गया है-

रुणुक-झुणुक ऋतु बसन्ति गीत लगांदि ऐगे,

बसंत ऐगे हमार डांडा सार्यू मा

ठुमुक-ठुमुक गुंदक्यली खुट्यून हिटी की ऐगे,

बसन्त ऐगे लिपीं पोतीं डिंडल्यूं मा।

मुखड्यूं मा हैसणू च पिंगलू मौल्यार,

गल्वड्यूं मा सुलगै गे ललंगा अंगार

आंख्यूं मा चूमाण सुपिन्या बसन्ती

उल्रया जिकुड्यूं मा छलकेणू प्यार

सिंणका सूत कुंगलि कंदुड़ि- नकुड्यूं मा पैरेगे

बसन्त ऐगे हमार गांदी चौठ्यू मा।

अर्थात - बसन्त रुणक-झुणक की अदा के साथ गीत गाता आ रहा है। वह डांडा की सारियों में ठुमक-ठुमक का गोल मटोल गुदगुदे पैरों से चलकर आ रहा है, गांव के लिपे-पुते साफ-सुथरे घर द्वार में असन्त पहुंच गया है। वह सुन्दरियों के गोरे मुखों और लाल गालों पर छा गया है। उनकी आंखों से बसन्ती सपने टपकने लगे है। उल्लसित हृदयों में प्यार उमड़ आया है। बसन्त नव कोमल किशोरियों के नाक कानों को गोदकर सिणके और सूत के रुप में विराजमान है। प्रकृति को आधार बनाकर गिरीश सुन्दरियाल ने भी अनेक गीतों की रचना की है। उनके प्रसिद्ध प्रयाण गीत में प्रकृति का सौन्दर्य निम्नवत् प्रस्तुत किया गया है-

झल-उज्यालों झप- अंध्यारों कब तै रैंण सारै-सार,

चल भुला अब मार फाल क्या जग्वल्दी उदंकार।

बाटो यो क्वी सौंगू नी द तू भी इतना जाणि ले

जिन्दगी छ खड़ि उकाल यीं उकाल ताणि ले

जिन्दगी की असलियत तैं धार पैंछी देखि ले

यीं तरफ छ दुःख अथाह अर वीं तरफ सुख जाणि ले।

नये प्रतीकों के माध्यम से अपने भावों को व्यक्त करने वाले दूसरे प्रमुख कवि चिन्मय सायर है। उनकी कविताओं का शिल्प कथन भंगिमा, और प्रतीक अन्य कवियों से भिन्न है। सायर के काव्य की कृछ प्रतीक प्रस्तुत किए जा रहे है।

- मेरि कविता/निल्ल-चिल्ल भ्यटग्यां दुखों की/नौणी शिलाजीत
- मेरि कविता/सड़की तीर/खड्डु सिगनल
- बिन फूलौं फल नी हूंद/पर तू ह्वेगे/तिमला फूल
- बेथ भी जिन्दगी/हाथ भर दुःख

कमेड़ा आखर कविता संग्रह की रचियता बीना बेंजवाल की रचनाओं में पर्वतीय पारी के प्रतीक बांजा-पुंगड़ा (पर्वतीय कृषि की उपेक्षा का प्रतीक), भमाण पाखा (जीवन के नीरस दिन), माला-पोथी (अबोध बालिका का प्रतीक) और कुंगला पंखुड़ (कोमलइ भावनाओं का प्रतीक) है। दैसत काव्य के रचियता अबोध बन्धु की कविताएं प्रतीकात्मक है। जिसमें कवि ने राजनीतिक षडयन्त्र, शोषण और काले कारनामों वाले नेताओं के द्वारा संचालित लोकतन्त्र का मखौल प्रतीकात्मक भाषा में किया है। एक उदाहरण दृष्ट्व्य है -

हे सर्प-पुत्र ! असल संपैणी का बच्चा

हे तड़कौण्यां डंड्वाक ! कंठ जहर की कुटरी वाला।

औ ये सिंहासन मा बिराज, हम पर राज चलौ

हम पीढ्यूंक का गुलाम त्यारा ताबेदार छवां

हां हम लूला-लंगड़ा, काणा, पड़मुताड़ छवां

उजर नि करदा, सेवा धर्म निभाणां जणदां

पैलि कखड़ी की राली रज्जा का नौ की

बणी रओ या मरजाद हमारा गौं की।

7. गढ़वाली और हिन्दी मिश्रित भाषा प्रयोग की प्रवृत्ति- गढ़वाली के महाकवि कन्हैयालाल डंडरियाल की कविताओं में यह प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। इससे उनकी हास्य-

व्यगूंय रचनाएं और अधिक पैनी और धारदार बन गई है। डंडरियाल जी की कबि पाड़ नि जौं कविता उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा रही है-

छिन दीवा का सौं कबि पाड़ नि जौं,

मैं तो कांड्यों के बीच उलझ जाऊंगी।

कबि उकलि उबैं, कबि उंधरि उदैं

मेरि खुट्टि रड़ैगी लगड़ जाऊंगी।

अर्थात - मुझे दीवा-देवी की सौगन्ध है मैं कभी भी पहाड़ में नहीं जाऊंगी। यदि गई तो मैं वहां उगे कांटों के बीच में फंस जाउंगी। उस पहाड़ में तो कभी ऊपर और कभी नीचे चलना पड़ता है। यदि कहीं मेरे पैर फिसल गए तो मैं गिर जाऊंगी।

8. गढ़वाली लोकगाथाएं अन्य प्रवृत्तियां

इन लोकगाथाओं का अध्ययन करने से गढ़वाली लोकमानस की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियों का पता चलता है, कि यथार्थ जीवन से संवद्ध होने पर भी इनमें अमिानव और अतिप्राकृत तत्वों की भरमार है। जो कि तत्कालीन लोक में प्रचलित अंधविश्वासों, अनुष्ठानों, मनःस्थितियों और कथानक कर रुढ़ि पर निर्भर करता है। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरुप गढ़वाली पवाड़ों में देवताओं, अप्सराओं, पशुओं तथा विभिन्न क्रिया व्यापारों के प्रति अति प्राकृत धारणाएं मिलती है। जिसमें पिता की संतान नहीं होती वह देवताओं की कृपा से संतान पाता है। वीर का पुत्र वीर ही होता है। ‘‘जिसके पिता ने तलवार मारी है उसका पुत्र भी तलवार मारेगा’’ यह लोकविश्वास इन गाथाओं में चरम पर है, भड़ों की जीवन युद्धों में बीतता है। ये राजा के आदेश का पालन करते दिखते है। भड़ और उसकी सेना दोनों एक साथ मिलकर शत्रु पर टूटते है। भड़ की मां और पत्नी को अपने महल या भड़ के युद्ध में घायल होने, मारे जाने एवं बन्दी बनाए जाने वाले अनिष्ट का पूर्व ही भान हो जाता है। मां के स्तनों से दूध बहने लगता है, पत्नी को अशुभ स्वप्न होता है या संकेत मिलते है। सतीत्व पर जोर मिलता है। सतीत्व रक्षा की वृत्ति पंवाड़ो में रुढ़ि से आई है।

कालू भण्डारी के पंवाड़ें में युद्ध में जाते हुए पुत्र आनी माता से पूछता है कि मां सच-सच बता कि मैं अपने पिता की ही पुत्र हूं। तभी युद्ध में जाउंगा। ‘‘दो की जाई और एक की जाई होना’’ अर्थात एक ही व्यक्ति की पति के रुप में स्वीकारने वाली ‘‘दो पुत्रों की माता’’ होना सती स्त्री का लक्षण माना जाता था। अपने सत (सतीत्व) का स्मरण कराकर माताएं अपने पुत्रों को युद्ध में भेजती थी। उदहारणार्थ - विरमा डोटियाली अपने पिता को पुत्री होने को विजय से जोड़ती है, वह कहती है ‘‘यदि हम सातों बहिने आपकी पुत्री होंगी तो हमें युद्ध में विजय मिलेगी। इन बातों से यह संकेत मिलता है कि जारज सन्तान युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होगी। वीर माताएं अपने सत के कारण अपने पुत्रों की अभीष्ट प्राप्ति (इच्छा सिद्धि) में सहायक होती थी। गढ़ू

सुमरियाल की वीरगाथा में उसकी माता इसी प्रकार उसकी सहायक होती है। माताओं के साथ गाथाओं की एक और प्रवृत्ति यह भी है कि पत्नी अपने सत (पतिव्रत्य) के बल पर मृत पति को जीवित करती हई दिखाई गई है। इन गाथाओं में असम्भव की सिद्धि के लिए सत्य को ललकारा गया है। सत्य ही अपनी सम्पूर्ण शक्ति से प्रकट होकर असम्भव को सम्भव बनाकर चमत्कृत कर डालता है। कभी-कभी इष्ट देवी स्वप्न में आकर बाधाएं दूर करती है और प्रेमी वीर पुरुष अपनी प्रमिका की डोली लेकर सारी बाधाएं पार करके अपने घर लौटते है सा स्नान कराते हुए को शत्रु या शत्रु का सिपाही उन्हें धोखे से मार डालता है। लोदी रिखोला, कालू भण्डारी हिंडवाण आदि के साथ ऐसा ही धोखा होता है। ऐसी स्थिति में स्त्री सती हो जाती है। किसी पवाड़े में स्त्री पति और प्रेमी को दाहिनी और बाईं जांघ पर रुख कर उनके साथ सती हो जाती है। किन्तु जहां डोली घर सकुशल पहुंच जाती है वहां स्त्री (प्रेमिका) को दोहद की इच्छा होती है। फलतः पति शिकार के लिए जंगल में जाता है और मारा जाता है। षडयन्त्र प्रायः यभी पवाड़ों में मिलता है किन्तु सतीत्व की रक्षा वर्णन प्रायः पवाड़ों में काव्यमय ढंग से किया गया मिलता है। इस सौन्दर्य वर्णन में सुन्दरियों के लिए चुन-चुनकर उपमान संजोए गए है। ध्यानमाला, शोभनी, सरुकुमैण, जोगमाला सब के अद्भुत रुप सौन्दर्य का वर्णन, उनके नाक, मुंह, आंख, कमर आदि को लेकर भुजाएं और बलिष्ठ शरीर को लेकर किया मिलता है। युद्धस्थल पर उनकी वीरता का वर्णन मुहावरों और लोकोक्तियों तथा लक्षणा शब्द शक्ति के माध्यम से किया हुआ मिलता है जैसे- उन्होंने शत्रुओं को कचालू सा काट डाला। मुंडों से चबूतरे खड़े कर दिए, लहू के घराट चला दिए। वहां उन्होंने भांग बोना शुरु कर दिया। लोकगाथा में वीर मल्ल सा भड़ ऐसा चमत्कार व पराक्रम अपनी इष्ट देवी झाली माली, ज्वाल्पा, कैलापीर आदि की कृपा से करते वर्णित किए गए है। भड़ों पर शिव-पार्वती की कृपा का भी वर्णन भी कुछ पवाड़ों में मिलता है।

तन्त्र-मन्त्र का प्रयोग भी इन लोकगाथाओं की प्रमुख प्रवृत्ति मानी जा सकती है। विशेषकर सबसे अधिक उल्लेख गुरु गोरखनाथ और उनकी बोक्साडी विद्या का हुआ है। 'धौला उड्यारी' का उल्लेख पंवाड़ों में मिलता है। कहा जाता है यहां सत्यनाथ ने और गोरख ने तपस्या की थी, देवलगड़ में सत्यनाथ का मन्दिर है और उसकों लेकर राजा अजयपाल के सम्बन्ध में अनेक कथाएं/अनुश्रुतिया मिलती है। अजयपाल स्वयं नाथपंथ में दीक्षित था। उसकी वाणी भी नाथों की वाणी और मन्त्रों में शामिल है। श्रीनगर गढ़वाल के नाथों का मौहलला अब तक मौजूद है। पवाड़ों (वीरगाथाओं) में नाथों की बभूति, धूनी, कांवर की जड़ी, चिभटा, खरुवा (राख) की झोली, गुदड़ी, खुराशानी, बाघम्बरी आसन, अमृत की तुम्बी आदि सामग्री का उल्लेख मिलता है। उनकी तन्त्र विद्या को बोक्साडी लोग जादू-टोना के रुप में आजतक जीवित रखे हुए है। बोक्सा तराई की एक जाति है। सम्भवतः कभी वें इस विद्या के जानकार रहे हो। राजुला मालूसाही में जादूगरनी स्त्रियों का भी उल्लेख मिलता है।

इन गढ़वाली लोकगाथाओं की एक और प्रवृत्ति की ओर हम आपका ध्यान ले जाना चाहेंगे, वह प्रवृत्ति है, बाल्यकाल में विवाह का तय होना और फिर उसे भूल जाना तथा अचानक कन्या द्वारा

युवावस्था में पर्दापण करने पर प्रेम का अनुभव करना, या अपने मंगेतर अथवा वाक्दत्ता को स्मरण करना उसे पाने की इच्छा करना। राजुला मालूसाही की लोकगाथा में यह प्रवृत्ति पाई जाती है। राजुला मालूसाही की गाथा हम आपकी जानकारी के लिए आगे प्रस्तुत करेंगे।। इन वीर गाथाओं में जिनमें प्रेमगाथा का भी पुट रहता है। गायक लम्बी लय में गाते है जिसे पवाड़ा लय विशेष कहा जाता है। इन में आलाप के लिए प्रायः 'हे' ध्वनि का प्लुत रुप में प्रयोग में लाया जाता है। चूंकि ये गाथाएं श्रोताओं (सुनने वालों) का सम्बोधित होती है, इसीलिए इनमें कहीं-कहीं 'मर्दो' 'महाराज' सुणदी सभाई आदि सम्बोधन प्रयुक्त होते है। आरम्भ में तो मंगलाचरण जैसी कोई चीज होती है या किसी का वंशगत परिचय होता है। कहीं भूमिका के तौर पर 'माई मर्दान का चेला, सिहणी का जाया', 'मर्द मरी जांदा, बोल रई जांदा' जैसे विरुद का प्रयोग होता है। कभी वीरगाथा सा पवाड़ा सुनाने वाला आवजी श्रोता की प्रशंसा उसकी वंशावली के साथ दान की महिमा को मंगलवार के रुप में बखान करता जाता है। अधिकांश लोकगाथात्मक पवाड़ों का अन्त स्त्री के सती होने विवरण के साथ होता है। मिलन की स्थिति में मंगल बधाई बजती है। त्रासद परिणित में हुतात्मा के शौर्य को सराहना के सज्ञथ पवाड़े का अन्त किया जाता है। ऐसी स्थिति में पवाड़े में वर्णित होता है। कि मां भड़ को अभीष्ट कार्य करने के लिए मना कर रही है लेकिन पुत्र युद्ध या अपनी इच्छा की जबरदस्ती पूर्ति के लिए मां की बात की अनसुनी करके निकल पड़ता है लेकिन फिर अपशकुन होने के कारण या तो मारा जाता है या बन्दी बना दिया जाता है। ऐसी स्थिति में यह माना जाता है कि अमुख भड़ या मल्ल ने अपनी मां का कहना नहीं माना था। इसीलिए उसके साथ अपशकुन हुआ। जीतू का गाथा इसका उदहारण है। वीरगाथाओं में आपको इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि ये गाथाएं सा पवाड़े इतिहास नहीं है। ये इतिहास सांकेतिक गाथाएं है और इस इतिहास सामग्री में भी कल्पना और पुनरावृत्ति मिलती है। लेकिन इतिहास लेखन में उनसे कहीं-कहीं सहायता मिल सकती है। इन लोकगाथाओं में मध्ययुगीन सांस्कृतिक तत्वों की बहुलता मिलती है। नारी के लिए युद्ध करना, और उसे पाने के लिए प्राणों की बाजी लगाना मृत्यु से भयभीत न होकर युद्धभूमि में या संकट में पराक्रम दिखाना पवाड़ों में दिए एक नैतिक संदेश को उजागर करता है। गढ़वाली वीरगाथाओं (पवाड़ों) के ऐतिहासिक पात्रों को मानशाह (1555 -1765) महीपत शाह (1584 -1610) और फतेहशाह (1671-1765) आदि राजाओं का इतिहास सम्मत वर्णन प्राप्त होता है। राज्य के अधिकारियों में पुरिया नैथानी, शंकर डोभाल, पांच भाई कठैत, रामा धरणी और राजमाताओं में प्रदीपशाह की संरक्षिका के शासन काल राणी राज के कालखंड की घटनाएं, गोरखा आक्रमण, मुगल आक्रमण आदि की इतिहास संकेतिक जानकारी इन वीरगाथाओं में मिलती है। वस्तुतः गढ़वाल में प्रचलित ये लोकगाथाएं गढ़वीरों व भड़ों की वीर श्रृंगार और करुण रस से भरी काव्यात्मक गेय विरुदावलियां है। जिन पर राजस्थानी शौर्य गाथाओं की भी प्रभाव दिखता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि मण्यकाल में अनेक क्षत्रिय जातियां, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र से गढ़वाल उत्तराखण्ड में आकर बसी थी। अतः अपनी संस्कृति और पूर्वजों की थाती को उन्होंने

इस प्रकार के विरुदगानों (पवाड़ों) में और जागरों में पीढ़ी दर पीढ़ी आपने 'आवजी', ढोलवादकों, जागरियों और पुजारियों के माध्यम के सुरक्षित रखने का प्रयास किया है।

19.3.2 गढ़वाली लोकगीतों अन्य प्रवृत्तियां

1. संगीतात्मक - गढ़वाल के गाथागीत गेय और छन्दबद्ध होते है। गेय होना लोक गाथा गीत की प्रमुख विशेषता है। इसके सम्बन्ध में डा. प्रयाग जोशी का कथन है कि ''गाथा की रंगत गाने में है, कहने में नहीं'' गायन की परिपाटियां (लोकधुने) लोक में पीढ़ियों से निर्धारित है। उसमें सहजता और सरलता लाना लोक गायकों का अपना व्यक्तिगत गुण है। यहां तक कि गाथा का अर्थ समझे बिना भी मात्र लय के आधार पर करुणा, श्रृंगार, वीर और अन्य भावों की स्थिति का अनुमान किया जा सकता है। गाथागायन में अधिकांशत रुप से गायक किसी न किसी वाद्य प्रयोग करता है। राग-रागिणियों की शास्त्रीय विशेषताओं से परिचित न होन पर भी गाथागायकों का स्वर सधा हुआ रहता है। ''इससे प्रतीत होता है कि रचना-विधान के लचीले होने के कारण भी लोकगाथा गीत को इच्छित राग में ढाला जा सकता है। गढ़वाल के लोकगीतों में संगीत के साथ-साथ नृत्य का भी विधान मिलता है''।

2. टेकपद की पुनरावृत्ति- लोकगाथा गीतों की सबसे बड़ी विशेषता टेकपद की पुनरावृत्ति मानी जाती है। डा. उपाध्याय का मानना है कि गीतों की जितनी बार दुहराया जाए उतना ही उनमें आनन्द आता है। इन टेक पदों की आवृत्ति से गीत अत्यधिक संगीतात्मक होकर श्रोताओं को आनन्द प्रदान करते है। उदहारण के लिए पांडव गीत गाथा का एक गाथा गीत प्रस्तुत है -

''कोंती माता सुपिन ह्वे गए, ताछुम, ताछुम

ओडू-नोडू आवा मेरा पांच पंडऊ, ताछुम, ताछुम

तुम जावा पंडऊ गैंडा की खोज, ताछुम, ताछुम

सरादक चैंद गैंडा की खाल, ताछुम, ताछुम''।

समूह में गाए जाने वाले गाथा गीतों में गायक जब एक कड़ी गाता है, तो समूह के लोग टेकपद को दुहराते हैं। पुनः पुनः टेकपद की आवृत्ति से श्रोता गीत के भाव को समग्रता के साथ ग्रहण करने में सक्षम होता है।

3. दीर्धकथानक - लोकगाथा गीत का आरम्भिक रुप चाहे जैसा भी रहा हो, कालान्तर में उनके कथानक दीर्ध होते गए, इसका कारण यह भी है ये गाथाएं अतीत में श्रुतिपरम्परा के आधार पर एक गायक ये दूसरी तथा दूसरी से तीसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होती रही हैं। हस्तान्तरण के इस क्रम में मूल गाथा गीत के रुप के स्वरुप में कितना परिवर्तन होता है। इसे कहना कठिन है। लोकगाथा द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों के साथ पौराणिक आख्यानों को जोड़कर

गाथा में प्रस्तुत कर देने से उनमें अमानवीय तथा पराप्राकृतिक तत्वों का समावेश हो गया, मूल गाथा के स्वरुप में इससे परिवर्तन तो आया ही उसका विस्तार भी हो गया। इस तरह लोकगाथा गीतों का कलेवर बढ़ता रहा है, और अतिशयोक्तियां भी इन गीतों के वर्ण्य विषयों की मूल आवश्यकता बन गई।

4. जनभाषा का प्रयोग - लोकगाथा की भाषा चिर नूतन रहती है। इसकी भाषा लोकगाथा के जीवन्त रूप का प्रतिनिधित्व करती है। लोकगाथा गीतों का प्रचार-प्रसार मौखिक परम्परा से होता है। अतः इस परम्परा में अप्रचलित शब्दों के स्थान पर गायक प्रचलित शब्दों का प्रयोग सहज भाव से करता है। गढ़वाल के लोकगाथा गीतों में गढ़वाली भाषा-बोली की मिठास गाथागायन में सर्वत्र मिलती है।

5. स्थानीय विशेषताएं - लोकगाथा गीत स्थान विशेष की संस्कृति और उसकी परम्पराओं का दिक्दर्शन भी कराते हैं। क्योकि लोकगाथाएं जीवन्त साहित्य का उत्कृष्ट रूप होती है। वे जहां-जहां पहुंचती है वहां की स्थानीय विशेषताओं को अपने में समाहित कर लेती हैं। स्थानीय वातावरण की सृष्टि करना ही लोकगाथा गीत की सबसे बड़ी विशेषता है, यदि स्थानीय वातावरण एवं देश काल की छाप लोकगाथा में नहीं है तो वह लोकप्रियता अर्जित नहीं कर पाती है। यहां आपकी जानकारी और इस मत की पुष्टि के लिए हम उदहारणार्थ गंगू रमोला की लोकगाथा को प्रस्तुत कर रहे है-

6. रमोली - द्वारिकाधीश कृष्ण को स्वप्न में गंगू का राज्य दिखाई देता है। कृष्ण ने गंगू से दो गज भूमि तपस्या के लिए मांगी, किन्तु उसने देने में आना-कानी कर दी। वह समझता था कि कृष्ण आज दो गज भूमि मांग रहा है कल पूरा राज्य मांग लेगा। गंगू की लक्ष्मी, बकरी के सिर में निवास करती थी। बकरी बाहर वीसी रेवड़ के साथ कुलानी पाताल चरने गई थी। कृष्ण ने उसी जंगल में प्रवेश किया और दिव्य बांसुरी से लक्ष्मी मोहिनी सुर बजाया, बकरी श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे खिंचती चली आई। गंगू की लक्ष्मी का हरण कर कृष्ण अपनी द्वारिका लौट गए। इस प्रसंग में 'स्थानीयता' रमोली की रमणीय भूमि कुलानी पाताल बकरियां आदि स्थानीय वातावरण को प्रस्तुत कर रही है। जिससे लोकगाथा सीधे रमोली उत्तराखण्ड गढ़वाल से सीधे जुड़ गई है। लोकभाषा के शब्द भी स्थानीयता को प्रस्तुत करने में सहायक होते है।

7. उपदेशात्मक प्रसंगों का अभाव - गढ़वाल की इन लोकगाथा गीतों में संस्कृत की नीति कथाओं का नीति श्लोकों की तरह उपदेशात्मक नहीं मिलती है। लोकगाथा में अत्याचारी को उसके दुष्कर्म के लिए दण्डित किए जाने की बात अवश्य वर्णित रहती है, त्यागी-तपस्वी और परोपकारी व्यक्ति की प्रशंसा मिलती है। गाथागायक लोकगाथाओं को सुनाते हुए धर्म की रक्षा, और अधर्म के नाश को जोर देकर श्रोताओं तक पहुंचाता है। ताकि लोक इन लोकगाथाओं से अच्छी शिक्षा ले सकें और बुरी आदतों को छोड़ सके।

8. संदिग्ध ऐतिहासिकता - गढ़वाली की लोकगाथाएं गीत रूप में भी प्राप्त होती है। इनमें अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन मिलते हैं। भले ही पात्र इतिहास और पुराणों से लिए होते हैं लेकिन उसके पराक्रम दान, ज्ञान और अन्य जीवन व्यापार इतने अतिरंजित कर वर्णित किए जाते हैं कि वें इतिहास न होकर तिलस्मी पात्र जान पड़ते हैं। अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों में इतिहास गौण पड़ जाता है और ये पूरी तरह काव्यानिक प्रतीत होने लगती हैं। इसका कारण श्रुत परम्परा से धटनाओं का विस्तृत होना माना जा सकता है। इनमें इतिहास तत्व, संकेत मात्र रह जाता है।

9. मौखिक परम्परा - लोकगाथा गीत लोकगाथा गीत के अनाम रचयिता के मुख से लोक में उतरते हैं, ये लिखित नहीं बल्कि श्रुत होते हैं अतः परम्परा से सुने जाने के कारण पीढ़ी दर पीढ़ी आगे चलते रहते हैं। इनेक लोकगाथा गीत अब भी अलिखित अवस्था में हैं और परम्परागत लोकगायकों द्वारा मौखिक रूप से गाए जा रहे हैं। इसके सम्बन्ध में विद्वानों ने यह तर्क दिया है कि लोकगाथा गीत तभी तक जीवित रहते हैं जब तक उनकी मौखिक (वाचिक) परम्परा है। लिपिबद्ध होने पर उनका विकास रूक जाता है। यद्यपि डा. गोविन्द चातक, मोहनलाल बाबुलकर, डा. प्रयाग जोशी आदि ने कुछ लोकगाथा गीतों को संग्रहीत करने का प्रयास किया है फिर भी लिपिबद्ध लोकगाथा गीतों की संख्या बहुत कम है।

10. लोकरुचि के विषय - ये गढ़वाली लोकगाथा गीत लोक रूचि के अनुसार, प्रेम, त्याग, बलिदान, भक्ति आदि धर्म के मूलतत्वों पर आधारित होने से लोकरुचि को जाग्रत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते है। इन भावनाओं को गेय और काव्यबद्ध रुप में प्रस्तुत करके लोकगाथा गायक यथावसर समाज में अपना जादू बिखेर देता है और लोकगाथा गीतांे से जुड़े समागमों में बड़ी भारी भीड़ को जुड़ती देखकर कोई भी ऐसा अनुमान सहज ही लगा सकता है कि लोगों की इन लोकगाथा गीतों को सुनने में कितनी रुचि है।

11. विद्वता का अभाव - लोकगाथा गीतों में विद्वता, अलंकरण और कृत्रिमता का अभाव रहता है। अर्थात लोकगाथाओं से साहित्य का सौन्दर्य नहीं रहता है। गाथाकार की अभिव्यक्ति, रस, छन्द अलंकार के बन्धन से दूर लोकरुचि का ध्यान रखती है जिससे उसकी सहज लोकगाथा में प्रस्तुत लोकगाथा गीत, अनगढ़ रचना होते हुये भी समाज द्वारा स्वीकृत होती है और श्रुति परम्परा से चलती रहती है। ये अनगढ़ लोकगाथा गीत अपनी गेयता के कारण तथा कथानक जैसी प्रस्तुति के कारण समाज में अपनी जाग्रत अवरूथा में रहते है। जब भी सामान्य साहित्यिक गीत लोगों द्वारा विसरा दिए जाते हैं।

12. सामूहिकता - लोकगाथा गीत जन सम्पत्ति हैं वे परम्परा से लोक द्वारा संरक्षित किए जाते रहे हैं। वे एक बड़े समुदाय के मनोरंजन के साधन है तथा लोकपरम्परा में धर्म और संस्कृति के संवाहक भी माने जाते हैं। अंग्रेजी के बैलेड शब्द का अर्थ नृत्य करना है। लगता है आदिम समाज में लोकमानस में गाथा गीतों की परम्परा में नृत्य भी प्रचलन में रहा होगा। तब क्रमोत्तर इनमें गीत के साथ संगीत और क्रमबद्ध नृत्य पद संचालन भी आरम्भ हुआ होगा। ''पंडों'' ऐसा

ही एक लोक गाथा गीत है जो अब नृत्यनाटिका का रुप ले चुका है। लोकगाथा गीत समूह में गाए जाने वाले गीत है जिनमें नृत्य की भी एक विशेष परिपाटी है। तथा एक विशेष अवसर पर ही इनका गायन-वादन होता है।

निष्कर्ष:- गाथागायन पद्धति हमारी बहुत पुरानी पद्धति है। ऋग्वेद और ब्राहमण ग्रन्थों में भी अनेक गाथागीत संस्कृत ऋचाओं एवं श्लोकों में प्राप्त होते है। बौद्धकाल में गाथाएं समाज में प्रमुख मनोरंजन का साधन बन चुकी थी। भगवान बुद्ध ने कहा था कि मैं उसी कन्या से विवाह करुंगा जो गाथा-गायन में प्रवीण हो।

प्राचीन गाथासप्तशति आदि रचनाएं समाज में लोकगाथाओं की गहरी पैठ के प्रमाण है। गढ़वाल में लोकगाथा गायक एक समृद्ध परम्परा है जो जागरियों, वाद्य वादकों (आबजी) और ब्राहमणों के द्वारा वाचिक रुप में आज भी सुरक्षित है। राजस्थान में पवाड़े के रुप में थे वीरगाथा गीत आज भी जनता में जोश जगा रहे हैं। भारत के सभी प्रान्तों की लोकभाषाओं में उनके लोकगीत है। उनकी गाथा गायन भिन्न-भिन्न पद्धतियां है और उनकी अपनी धुनें है। कुछ विद्वानों का मत है कि भारत में लोकगाथा गीतों का विकास उस समय हुआ होगा जब फ्रान्स आदि देशों में रोमांस साहित्य का सृजन हो रहा था। यूरोप में बैलेड का विकास सोलहवीं शताब्दी तक हो चुका था। इंग्लैण्ड का लोकगाथाओं में राबिन हुड सम्बन्धी प्रणयगाथाएं अत्यन्त लोकप्रिय है। स्कॉटलैण्ड के 'सर पैट्रिक स्पेस' 'द कुअल ब्रदर' और ' एडवर्ड' जैसे कथागीत, तो फिनलैण्ड और इटली तक प्रचलित हैं । कालान्तर में यूरोपिय जातियों के साथ वे अमेरिका पहुंच गए। डेनमार्क में 'बैलेड' प्रायः औलोकिक पृष्ठभूमि वाले होते है। जिनमें जादू-टोना और रुपान्तरण जैसी बाते मुख्य होती है। गढ़वाली लोकगाथा गीतों में गेयता के साथ-साथ कथानकों में जादू होना और रुपान्तरण की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। सम्भवत इन लोक गाथाओं की वर्ण्य विषय वस्तु में परस्पर आपसी साहचर्य के कारण ये तत्व धुल मिल गए हो। लेकिन उन अनाम लोक गाथाकारों की ये अनगढ़ रचनाएं मानस की लोकचेतना से अलग नहीं की जा सकती है। ये अपनी माणिक संरचना में भी अनगढ़ रहने पर भी सभी के द्वारा सहज बोधगम्य होती है क्योकि ये लोकगाथा में लोकतत्व तथा उसके श्रुत इतिहास को लेकर सदियों से लगातार वाचिक परम्परा से चली आ रही है।

10. गढ़वाली लोकगीतों की प्रमुख प्रवृत्तियां

अपनी प्रभूत विशेषताओं के लिए हुए गएवाली लोकगाथा गीतों की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियां भी है। अब हम उन प्रवृत्तियों की संक्षिप्त जानकारी दे रहे है। इन प्रवृत्तियों को रुढ़ियां भी कहा जा सकता है। क्योंकि अधिकांश गाथाओं में ये एक जैसी देखने में आती है। ऐसा लगता है जैसे इनका लोकगाथा के वर्णन में आना अनिवार्य सा अपरिहार्य हो। ये प्रवृत्तियां निम्नलिखित है-

1. प्रेम, विवाह तथा सुन्दरियों को जीतकर लाने वाली प्रवृत्ति- गढ़वाली लोकगाथा गीतों में प्रेम, विवाह और सुन्दरियों की चर्चा अधिक मिलती है। जैसे- राजुला, मालूसाही में सौक्याणी देश (तिब्बत) को सुन्दरियों का निवास स्थान बताया गया है। कई भड़ स्वप्न में उनका दर्शन करके उन्हें पाने के लिए उतावले हो उठते है और उनकी खोज में चल पड़ते है। वहां उनके पतियों को हराकर सुन्दरियों को जीतकर ले आते है। योगी बनकर, योगी का वेश धारण कर प्रेयसी से मिलने का प्रयास, गढ़वाली लोकगाथा गीतों में वर्णित मिलता है। कुमांऊ में प्रचलित गंगनाथ गाथा में नायक जोगी का वेश बनाकर जोशीखोला में 'भाना' से मिलने आता है। राभी बौराणी में भी उसका पति जोगी का रुप धारण कर रानी के पातिव्रत्य की परीक्षा लेता है। श्रीकृष्ण गंगू के पास जोगी का वेश धारण कर उसकी रमोली में मिलते है और मुझसे भूमि मांगते हैं।

2. सतीत्व रक्षा को प्रमुखता- गढ़वाली लोकगाथा गीतों में स्त्री अपने सतीत्व की रक्षा के लिए आत्मबलिदान देने (सती) होने को तत्पर रहती है। गढ़ू सुम्याल की गाथा में गढ़ू कहता है 'यदि मेंरी मां विमला सतवन्ती होगी और मैंने उसके सहस्रधारों वाला स्तनपान किया होगा तो मेरी रधुकुंठी धोड़ी आसमान में उड़ने लगेगी'। अनेक गाथाएं इसकी प्रमाण है रणूरौत की गाथा में ,रणूरौत की माता अमरावती अपने पुत्र रणूरौत से कहती है कि तेरी मंगनी तेरे पिता ने स्यूंसला से की थी। मुझे आज 'मेधू कलूनी' जबरदस्ती ब्याहकर ले जा रहा है। तुझे मेरी कसम है अपने शत्रु को मारकर स्यूंसला का डोला जीत कर ला। युद्ध में रणू के मरने के बाद स्यूंसला उसकी चिन्ता में कूदकर अपने सतीत्व की रक्षा करती हुई प्राण दे देती है। कालू भण्डारी कर गाथा में भी कालो भण्डारी के द्वारा बेदी के मंडप में छः फेरे फेर देने वाले रुपू को मार देने के बाद 'रुपू' के भाई 'लूला गंगोला' के द्वारा कालू भण्डारी को मार देने पर वह नवविवाहिता रुपू और काले भण्डारी के शव को अपने दोनों जांधों में रखकर चिता में भस्म हो जाती हैं। कफ्फू चौहान की गाथा में भी उसकी पत्नि और मां 'देवू' के द्वारा कफ्फू की सेना के पराजित हो जाने के समाचार को सुनकर चिता बनाकर जल जाती है। तैड़ी की तिलोगा की प्रेमगाथा में भी तिलोगा अमरदेव सजवाण के मारे जाने पर अपने दोनों स्तन काटकर अपनी आत्महत्या कर देती है। तिगन्या के डांडे में चिता बनाकर अमरदेव सजवाण के साथ तिलोगा के शव को भी भस्म कर दिया जाता है। इस प्रकार प्रेमी के साथ प्रेमिका की जीवनलीला का अन्त दिखाना गढ़वाल लोकगाथा गीतों की भरमार रही है।

3. जन्म व सन्तान सम्बन्धी रुढ़ियां - जन्म के समय नक्षत्र आदि के सम्बन्ध में गाथाओं में प्रचलित रुढ़ियां सर्वत्र एक जैसी मिलती है। जैसे- वीर का पुत्र ही होगा, 'जिसके बाप ने तलवार मारी उसकर बेटा भी तलवार मारेगा'। वंशानुक्रम परम्परा का वर्णन क्रम भी एक जैसे वणित जैसे- ''हिवां रौत का भिवां रौत, भिवां रौत का राणू रौत।

4. शकुन-अपशकुन सम्बन्धी रुढ़ियां - शकुन-अपशकुन वाली प्रवृत्ति गढ़वाली लोकगाथा गीतों में सर्वत्र मिलती है। 'जीतू बगड़वाल' की गाथागीत में जब जीतू अपनी बहिन को बुलाने जाता है तो उसकी मां द्वारा बकरी के छींकने को अपशकुन बताया गया है। इसी पकार राधिका गाथा गीत में जब राधा की माता उसकी ससुराल के लिए पुवे बनाती है तो पहला पुवा तेल में डालते ही नीला पड़ जात है, यह देखा राधिका की मां शंका से व्याकुल हो उठती है- और सोचती है ''न जाने मेरी राधिका कैसी होगी'' ?

5. स्त्री को दोहद की इच्छा - वीर पुरुष की स्त्रियां दोहद अवस्था में अपने वीर पति को मृग का मांस खाने की इच्छा प्रकट करती है। तब वीर पुरुष अपनी नवविवाहिता पत्नी की दोहद इच्छा पूरी करने के लिए जंगल में जाकर शिकार खेलने जाता है और वहां संकट में फंस कर मर जाता है, जो विजयी होकर आता है उसके विषय विलास का भव्य वर्णन लोकगाथा गीत प्रस्तुत करते हैं कि उसकी रानी ने अपना कैसा श्रृंगार किया है। इस वर्णन में अश्लीलता नहीं रहती लेकिन अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन रहता हैं।

6. कोमल संवेदनाओं से जुड़े लोक विश्वास - गढ़वाली लोकगाथा गीत, आस्था विश्वास और रुढ़ियों से जुड़े हुए है। ज्योतिष पर विश्वास, शकुन-अपशकुन की धारणा, लोक रुढ़ियां जैसे- सुअर का धरती खोदना, सूखी लकड़ी ढोता आदमी, कान फड़फड़ाता कुत्ता, भेड़ियों और ऊल्लू की आवाजें, हंसिया या कुदाली-फावड़े पर धार चढ़ाते समय उसका चटकना आदि अपशकुन के रुढ़िगत विश्वास है। शुभ संकेतो में पानी का गागर भर कर लाने वाली स्त्री, कबूतर या धुधती पक्षी का दिखना शुभ माना जाता है।

7. तन्त्र-मन्त्र में विश्वास- ये लोकगाथा गीत, तन्त्र-मन्त्र के प्रभाव का भी बखान करते है। जोगियों के कांवड़ की जड़ी, बोक्साड़ी विद्या, ज्यूदाल, तुम्बी का पानी आदि में गढ़वाली जनमानस का विश्वास इल लोकगीतों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय होता है। जगदेव पंवार और सदेई की गाथा में बलिदान का महत्त्व सिदुवा-विदुवा का संकट काल में सहायक होना आदि लोकविश्वासों का भी वर्णन गाथागीतों में मिलता है। निष्कर्षतः लोकगाथा गीत लोक विश्वास और आस्था को लेकर रचे गए मिथकीय आख्यान गीत है जो परम्परा के वाचिक साहित्य के रुप में चले आ रहे है।

11. डा. मोहनलाल बाबुलकर द्वारा उल्लिखित गढ़वाली लोककथाओं की 43 प्रवृत्तियां निम्नवत् हैं।

☐ कर्मयोग के लिए जन्म की प्रधानता का विश्वास।

☐ प्राणों को अन्यत्र प्रतिष्ठा मिलना।

☐ मन्त्र बल से शरीरन्तरण की प्रवृत्ति।

- शरीर छोड़कर प्राणों को दूसरे जीव में स्थिति।
- चमत्कारी गुण।
- पशु-पक्षियों की भाषा।
- सहानुभूति और सहायता।
- भगवान और उसकी शक्ति पर विश्वास।
- धर्म साक्षी।
- प्रकृति की सहानुभूति
- जादू द्वारा अनहोनी बाते।
- स्त्री पात्रों की सहृदता।
- पुरुषों की अपने आपको नायिकाओं को अपने आप को सौंपने की प्रवृत्ति।
- पछताने की प्रवृत्ति।
- समस्यामूलक उक्तियों द्वारा समाधान की प्रवृत्ति।
- व्रत रखने की प्रवृत्ति।
- प्रेम की प्रधानता।
- स्वप्नावस्था में देखी राजकुमारी को पाने की होड़।
- सभी कथाओं में लगभग एक ही प्रकार की घटनाएं।
- बहिन तथा पत्नी का स्वार्थी होना।
- सौतियां मां का क्रूर व्यवहार होना।
- सास-बहू का झगड़ा।
- पुरुष बलि
- भूत-प्रेतों की बहुलता।
- जादू की सहायता से दुश्मन को परास्त करना।

- छोटी सी डिबिया से बावन व्यंजन तैयार करना।
- रानी या राजकुमारी के पेट से सिलोटा या सर्प निकलना।
- स्त्री का पर पुरुष ये प्रेम और अपने पति को मारने की साजिश।
- स्त्रियों का पति की नासमझी से फायदा उठाना।
- जानवरों से असमान विवाह की प्रवृत्ति जैसे- 'स्याल का विवाह' बाधीन से।
- विधवा को नासमझ, मक्कार, जाली और कुकर्मी समझने की प्रवृत्ति।
- उपदेशात्मक के सज्ञथ मनोरंजकता की प्रवृत्ति।
- लोककथाओं में तीन सौ से चार हजार रूपये, सात भाई, एक बहिन, सात समुद्र, सात परियां, तात्पर्य कि रात नम्बरों की बार-बार पुनरावृत्ति।
- मामा-मामी का रिश्ता नायकों के प्राण बचाता है।
- राजकुमारियों की तुलना फूलों से करने की प्रवृत्ति।
- राजकुमारी के मुंह से प्रसन्नता में सफेद फूलों का झरना और दुख में कोयले झरना।
- आदमी का कड़ावे में पकना, झझर छूने पर जीवित होना।
- निल्लाह तथा अमृत ताड़ा द्वारा जीवित होना।
- आत्मिक असंतोष के कारण पक्षी बनने की प्रवृत्ति।
- पंखों को जलाकर एवं मूछों को रगड़कर राक्षसों की रक्षा करना।
- राह चलते लोगों को गद्दी का मालिक बनाने की प्रवृत्ति।
- पशु-पक्षियों का कथानायकों एव ंनायिकाओं का सहायक होना।
- स्त्रियों द्वारा अपने सतीत्व की रक्षा, तथा पुरुष द्वारा मां के दूध का वास्ता देकर युद्ध में जाना।

इन प्रवृत्तियों के अतिरिक्त निम्नलिखित अन्य प्रवृत्तियां भी गढ़वाली लोक साहित्य में देखने में आती है।

- गढ़वाली में नारी केन्द्रित लोक साहित्य है।

- लोक जीवन का आंखों देखा यथार्थ चित्रण मिलता है।
- धार्मिक आस्था, जादू-टोने में विश्वास प्रबल है।
- गढ़वाली भाषा की मूल प्रकृति की रक्षा की गई है। गढ़वाली लोककाव्य में लोकतत्व पूर्ण प्राण-प्रतिष्ठा के साथ विराजमान है।
- पुराने और नए साहित्य में भारी अन्तर आता जा रहा है। नया लोक साहित्य नई प्रवृत्तियों से ओतप्रोत है। इनमें शिल्प और शैली की दृष्टि से भी अन्तर आ गया है। हिन्दी गद्यात्मक काव्य विद्या और कथा के प्रभाव से गढ़वाली साहित्य समाजोपयोगी, व्यवहारिक साहित्य का अनुगमनकर्ता बनता नजर आ रहा है।
- वर्तमान लोक साहित्य में आक्रोश की प्रवृत्ति लोक साहित्य में घर करती नजर आती है। समस्याओं पर केन्द्रित, लोक की दृष्टि को पहचान कर नए रचनाकार नव लेखन कर रहे हैं। इनके लेखन में जनता की भाषा है। जनता के विचार है और जनाक्रोश हैं।
- परिवर्तन की इच्छा, वर्तमान लोक साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति बन गई है।
- वर्तमान लोक साहित्य में यथार्थ का नग्न चित्रण करने की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है।
- कविता (लोक काव्य) में अलंकृत पद् विन्यास, नए छन्द, गीति युक्त लयात्मक पदबन्ध विशेषकर (गजल, गीत) आदि में रुचि बढ़ती जा रही है।

निष्कर्षतः गढ़वाली कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि में हिन्दी साहित्य की नई प्रवृत्तियों को भी अपनाने में संकोच नहीं किया है। प्रारम्भिक गढ़वाली साहित्य में संस्कृत शब्दों की बहुलता थी। अब धीरे-धीरे हिन्दी शब्दों का प्रचलन गढ़वाली साहित्य में बढ़ता जा रहा है। गढ़वाली भाषा ने इन शब्दों को अपने अनुरुप ढालने और युगान रुप उसे भाषित विस्तार देने के प्रयास किए है। संस्कृत छन्दों के अलावा मौलिक छन्द विधान कवियों के द्वारा अपनाया जा रहा है। कवि भोला दत्त देवरानी तथा कन्हैयालाल डंडरियाल में बिम्ब ग्रहण की प्रतिभा अधिक है। काव्य रुपों की दृष्टि से गढ़वाली में आरम्भ से ही काव्य रचना की प्रवृत्ति अधिक है। अब तक केवल दो काव्यों भूम्याल तथा नागरजा को महाकाव्यों के रुप में स्वीकार किया गया है। गढ़वाली में कुछ कवियों में लम्बी मुक्तक कविताएं लिखी है। जिनका अब प्रचलन बन्द हो चुका है। इस सदी के अन्तिम दो दशकों में प्रकाशित होने वाले प्रमुख मुक्तक काव्य इस प्रकार है- सिंह सतसई (भजन सिंह 'सिंह'), रमछोल (चन्द्र सिंह राही), कपाली की छमोट (महावीर प्रसाद गैरोला), ढांगा से साक्षात्कार (नेत्रसिंह असवाल), मेरो ब्वाडा (पूरण पन्त पथिक), कुयेड़ी (कन्हैयालाल डंडरियाल), खुचकण्डी एवं गाण्यूं की गंगा-स्याण्यूं का समोदर (नरेन्द्र सिंह नेगी), दिख्यां दिन तप्यां घाम एवं हैंसदा फूल खिलदा पात (ललित केशवान), कांठयों मा औण से पैलि (देवेन्द्र प्रसाद जोशी), दैसत (अबोधबन्धु बहुगुणा), कमेड़ा आखर (बीना बेंजवाल),

तिमला फूल एवं पशीनिक खुशबू (चिन्मय सायर), ये गुठ्यार (रघुबीर सिंह अयाल), बेदि मा का बचन (महेश तिवाड़ी), रामदेई (नित्यानन्द मैठानी), शैलोदस तथा कणखिला (अबोध बन्धु बहुगुणा), इलमतु दादा (जयानन्द खुगशाल), रैबार (प्रेमलाल शास्त्री) आदि सुप्रसिद्ध गढ़वाली मुक्तक काव्य है। जो कि नवीनतम प्रवृत्तियों को आत्मसात किए हुए हैं।

13. 4 सारांश

गढ़वाली लोक साहित्य के काव्य तत्वों में रस की प्रधानता हैं। उसके काव्य, नाटक, उपन्यास, कथाएं, और गाथाएं और अन्य सभी विधाएं श्रृंगार, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, अद्भुत तथा हास्य रस से ओत-प्रोत है। वर्णनों में मानवीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है। वीर भड़ों और सुन्दरियों के सौन्दर्य वर्णन में अलंकारों की चकाचौंध दिखाई देती है। जादू-टोने तथा मिथ का घाल-मेल यहां के लोक साहित्य में सर्वत्र मिलता है। शैली और शिल्प की दृष्टि ये प्राचीन गढ़वाली लोक साहित्य में एकरुपता दिखाई देती है। इनमें जनता की भाषा, विश्वास और मान्यताओं का अनुरक्षण का भाव समाहित है। सम्प्रति हिन्दी, संस्कृत और अन्य प्रादेशिक भाषाओं में रचे आधुनिक लोक साहित्य का प्रभाव भी गढ़वाली लोक साहित्य पर पड़ रहा है।

13. 5 शब्दावली

सेरा	-	सिंचित खेत
फूलदेई	-	गढ़वाल-कुमांउ का प्रसिद्ध त्यौहार है। फूल संक्राति के अवसर पर कुंवारी कन्याएं सुबह-सुबह उठकर गृहद्वारों पर फूल चढ़ाती हुई कल्याण कामना के गीत गाती है।,
उच्याणा	-	प्रायः देवता से कोप से बचने के लिए मुर्गा, मेढ़ा या बकरा इस आश्वासन के साथ बलि के लिए रख दिया जाता था कि देवता की पूजा बाद में कर दी जायेगी जिसमें उन्हें चढ़ा दिया जायेगा। प्रायः उसे नियत करते समय उसके उपर संकल्प के साथ अक्षत घुमा दिए जाते थे।
छूड़े	-	एक प्रकार के गीत है जो रबाई क्षेत्र में प्रचलित है। इनमें गहन चिन्तन और काव्य तत्वों के दर्शन होते है।
बाजूबन्द	-	एक प्रकार का तात्कालिक गीत है। जिसमें स्त्री-पुरूष का प्रेम संवाद प्रमुख होता है। बाजूबन्द के कई रूप सम्भव है। बहुत कुछ तो दो व्यक्तियों के सम्बन्धों, स्थितियों, सहमति-

असहमति, निन्दा-स्तुति आदि कई बातों पर बाजूबन्द गीतों के संवाद निर्भर करते है।,

पाखा - पर्वत का एक हिस्सा।

भूम्याल - भूमि का देवता।

13.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गढ़वाली लोककथाएं - डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 1996, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली।
2. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य - डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली।
3. उत्तराखण्ड की लोककथाएं - डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली।
4. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना - मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।
5. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य - डा. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।
6. गढ़वाली लोक गीत विविधा - डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

13.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गढ़वाली लोक गाथाओं की अन्य प्रवृत्तियों का विवेचन कीजिए।
2. लोकगाथा गीतों की कोई दो प्रमुख प्रवृत्तियां बताओ ।
3. गढ़वाली लोकगीत की प्रमुख प्रवृत्तियां क्या है ?

इकाई 14 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप एवं समस्याएं

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप
14.3.1 गढ़वाली काव्य में काव्य तत्त्व और सौन्दर्यानुभूति
14.3.2 गढ़वाली लोक साहित्य के समक्ष समस्याएं
14.3.3 गढ़वाली लोक साहित्य की विधाएं
14.4 सारांश
14.5 अभ्यास प्रश्न
14.6 शब्दावली
14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
14.9 सहायक पाठ्य सामग्री
14.10 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

गढ़वाली लोक साहित्य भारत के अन्य प्रादेशिक/आंचलिक लोक साहित्यों की अपेक्षा समृद्ध और विकासशील स्वभाव वाला साहित्य है। इसका कारण इसकी प्राचीन (पौराणिक विरासत) और हिमालयी वातावरण में समस्त भारत के लोगों की युग-युग से आस्था तथा यहां बसने की आत्मीय (अभिलाषा) भी प्रमुख है। यही कारण है यहां के लोक साहित्य में धर्म सहिष्णुता, सामाजिक सद्भाव और करुणा तथा मैत्री के साथ, प्रेम और युद्धवीरता तथा त्याग के अनेक उदहारण मिलते हैं। प्राचीन लोक साहित्य में 'कृष्ण' और पाण्डव प्रभूत मात्रा में वर्णित है। मन्दा भगवती, राजराजेश्वरी होने के कारण यहां के लोक साहित्य की आधेय और आधार है, वह देवी के रुप में लोक साहित्य की प्रत्येक विधा में स्थान पाए है।

काव्य, लोककथा, लोकगाथा, लोकनाट्य और लोकगीतों में हिमालयी प्रकृति, देवता, पितर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, नाग और नर तथा राक्षस भी आदर के साथ साहित्य में स्थान पाए दिखते हैं। यहां के पशु-पक्षी और वृक्ष लताएं भी मानव के सहचर हैं। वे यहां के लोक के अविच्छित अंग है। उन्हें यहां के लोकमानस से अलग हटाकर नहीं देखा जा सकता है।

इसके मौखिक साहित्य में ढोल सागर अनेक अश्रुत जागर गाथाएं, पवाड़े, विरुद आज भी अपने संग्रहकर्ताओं की बाट जोह रहे हैं। इन कलाओं को बहुत कुछ मात्रा में कुछ पुरखों ने अपनी पोथियों में लिखकर सुरक्षित किया तो कुछ को परम्परा से आवजी और पुरोहितों ने अपनी वाणी से रटकर सुरक्षित कर रखा है।

14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन के उपरान्त आप गढ़वाली लोक साहित्य से सम्बन्धित निम्नलिखित तथ्यों को जान सकेंगे-

1. गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप कौन सा है ?
2. इसके अन्दर लोक साहित्य की किन-किन विधाओं में कार्य हो रहा है ?
3. परम्परागत लेखन और वर्तमानकालीन नए लेखन में किन-किन बातों में मूलभूत अन्तर आ रहा है ?
4. गढ़वाली लोक साहित्य के आगे वर्तमान में क्या-क्या चुनौतियां आड़े आ रही है ?
5. गढ़वाली में रचित प्रमुख महाकाव्य-खण्डकाव्य, गीति और मुक्तक काव्य कौन-कौन से है ?

14.3 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप

गढ़वाली लोक साहित्य की खोज के लिए अंग्रेज सर्वेक्षकों विलयम क्रुक व ग्रियर्सन आदि के अवदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता है। मध्य पहाड़ी बोली पर एटकिन्सन के द्वारा किए गए कार्य को महत्त्वपूर्ण माना गया है। यहां के साहित्य को लिपिबद्ध करने और उसकी समग्र जानकारी एकत्र करके पुनः उसकी समीक्षा टीका करके फिर शोधपूर्ण विवेचना के साथ प्रकाशित करने वाले विद्वानों के अवदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता है। इन विद्वानों में तारादत्त गैरोला, पादरी मिस्टर ओकले, आत्माराम गैरोला, यमुनादत्त वैष्णव, गोविन्द प्रसाद घिल्ड़ियाल, शिवनारायण बिष्ट, भजन सिंह 'सिंह', डा. गोविन्द चातक, डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' मोहनलाल बाबुलकर, शिवानन्द नौटियाल और महावीर प्रसाद लखेड़ा अग्रगण्य है। इन विद्वानों के प्रयास से इनकी पुस्तकों से गढ़वाली लोक साहित्य के प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य की जानकारी मिलती है।

गढ़वाली लोक साहित्य पर अनेक शोध प्रबन्ध भी लिखे गए है। सर्वप्रथम डा. नन्द किशोर ढौडियाल ने जागर गीतों पर शोध प्रस्तुत किये तदनन्तर डा. प्रयाग जोशी ने पहली बार कुमाऊं और गढ़वाल की लोक गाथाएं संशिल्ष्ट विवेचन प्रस्तुतत किया। उन्होंने लोक गाथाओं में बहुत कुछ नया जोड़ा है। डा. उमाशंकर 'सतीश' ने जौनसारी भाषा का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुतत किया, मोहनलाल बाबुलकर ने पश्चिमी पहाड़ी की उप बोली जौनपुरी (जौनसारी) के लोक साहित्य एवं कला पर पहली विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया, विष्णुदत्त कुकरेती ने नाथ पंथ और गढ़वाल तथा बुद्धिराम बडोनी ने गढ़वाल के लोक काव्य पर प्रशंसनीय कार्य किया है। इसी श्रृंखला में 'गढ़वाली के सांस्कृतिक और सौन्दर्य शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य' विषय पर श्रीमती आनन्दी जोशी ने तथा गढ़वाल के साहित्य-संस्कृति पर स्कन्दपुराण का प्रभाव तथा चन्द्रशेखर बडोला ने गढ़वाली कहावतों का साहित्यिक, सांस्कृतिक अध्ययन उल्लेखनीय कार्य करके गढ़वाली लोक काव्य साहित्य को जीवन्तता प्रदान की है।

गढ़वाली लोकभाषा में आज विविध विद्याओं में साहित्य उपलब्ध है। गढ़वाल पद्य में गीत संग्रह, काव्य और निबन्ध प्रभूत मात्रा में उपलब्ध है। इनका पुराना साहित्य भी प्रचुरता से उपलब्ध है। पद्य विद्या में 1822 से 1900 तक संस्कृत का प्रभाव लक्षित होता है। गीत और कविता के पुराने लेखकों में तोताकृष्ण गैरोला, आत्माराम गैरोला, चक्रधर बहुगुणा, भगवती प्रसाद निर्मोही, अबोध बन्धु बहुगुणा, कन्हैयालाल डंडरियाल, मनोहर उनियाल 'श्रीमन', सदानन्द जखमोला 'सन्तत', विशालमणि शर्मा का नाम उल्लेखनीय है। कहानी और निबन्ध लेखकों में डा. गोविन्द चातक, डा. महावीर प्रसाद गैरोला, मोहनलाल नेगी, प्रेमलाल भट्ट, दुर्गा प्रसाद घिल्डियाल प्रसिद्ध है। नाटक विद्या के क्षेत्र में पुरुषोत्तम डोभाल, सुदामा प्रसाद 'प्रेमी' ललितमोहन थपल्याल, स्वरुप ढौड़ियाल, कन्हैयालाल डंडरियाल, अबोध बन्धु बहुगुणा, नित्यानन्द मैठानी और गोविन्द चातक उल्लेखनीय है। गढ़वाली लोक साहित्य के अन्य

हस्ताक्षरों में जीत सिंह नेगी, नरेन्द्र सिंह नेगी, गिरिधारी प्रसाद 'कंकाल', ललित केशव, उमाशंकर 'सतीश', शेर सिंह 'गढ़देशी' और जीवानन्द श्रीपाल का नाम आदर के साथ लिया जाता है। गढ़वाली गद्य साहित्य में व्यंग्य लेखन के अप्रतिम हस्ताक्षर नरेन्द्र कठैत साहित्य पथ पर एक मील के पत्थर सिद्ध हो रहे है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक परिदृश्य बदला, आधी सदी से भी अधिक के इस समयान्तराल में गढ़वाली काव्य ने बहुआयामी विस्तार पाया और गढ़वाली साहित्य लेखन में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। इस काल खण्ड में सैकड़ों काव्य कृतियां प्रकाश में आई, कला की दृष्टि से नौबत 1953 चक्रधर बहुगुणाः तिड़का (1956), रणभंजण (1963), पार्वती (1966), धोल (1977), भूम्याल (1977), एवं दैसत (1996) सभी अबोध बन्धु बहुगुणा चित्र काव्य एवं रोन्देडु (1995), अश्रुमाला (1958) एवं दुदुभिः डिमडिम (1965) श्रीधर जमलोकी नवांण (1956) एवं फुर घिडुडी (1957) गिरधारी प्रसाद 'कंकाल'। ढांगा से साक्षात्कार (1988), नेत्र सिंह असवाल, पसीन की खुशबू (1989) एवं तिमला फूल (1977) चिन्मय सायर। कॉढ्यो मा औण से पैलि (1994), देवेन्द्र प्रसाद जोशीः खुचकण्डी (1991) एवं 'गाष्यूं की गंगा स्याण्यू का समोदर' (1999) नरेन्द्र सिंह नेगी। कमेड़ा आखर (1996) वीना बेंजवाल गढ़वाली काव्य की स्वातन्त्रयोत्तर उल्लेखनीय काव्य कृतियां है। इस काल खण्ड में विभिन्न कवियों के संयुक्त कविता संकलन भी खूब छपे है जिनमें 'फ्यूंली' (1953), मौल्यार (1963), छम घंुघरु बाजला (1964), खुंदेड़ गीत सागर (1964) रॅत रैबार (1963), बुरांस (1965) 'छैं' (1980) और गंगा जमुना का मैत बटि (1978) प्रमुख है। इनके अतिरिक्त 'बाहुली', हिडबांस, मैती, बुग्याल, बुरांस, चिट्ठी पत्री और धादा (1978) प्रमुख गढ़वाली पत्र-पत्रिकाएं हैं। जिन्होंने गढ़वाली काव्य साहित्य को दिशा प्रदान करने में बहुमूल्य योगदान दिया है।

स्वतन्त्रता के बाद सामाजिक परिदृश्य बदल जाने पर कविता की भाव-भूमि भी बदल गई, तिड़का, फ्यूंली की तथा रौन्देडु सामाजिक बदलाव के काव्य है। डा. कोटनाला का मत है कि इसके आगे अधिक गहरी पैठ बनाकर समाजवाद काव्य चेतना के जन पक्षीय संघर्ष को कविता में परिणत करने का प्रयास किया गया। भूम्याल लोकतान्त्रिक, सामाजिक मूल्यों का काव्य है। इसी समाजवादी दृष्टिकोण से रचित, अज्वाल, धैं, एक ढांगा की आत्मकथा, ढांगा से साक्षात्कार, कमेडा आखर, कॉठ्यो मा ओण से पौलि, तिमला फूल आदि जनसंघर्षी रचनाएं हैं।

पर्यावरणीय चिन्ताओं ने कवियों को सदैव उद्वेलित किया है। प्रकृति के साक्षात्कार से युक्त स्वतन्त्रयोत्तर रचनाओं में सदानन्द जखमोला का रैबार, गढ़गुणत्याली उल्लेखनीय है। पहली पीढ़ी के कवियों के सभी गढ़वाली काव्य रसानुभूति के काव्य है। इसमें श्रृंगार की कोमल भावनाएं और गढ़वाली भाषा का सौष्ठव चरम पर पहुंचा है। दूसरी पीढ़ी के कवियों में गिरधारी प्रसाद 'कंकाल' तथा जीत सिंह नेगी प्रेम के कवि रहे है। जब नरेन्द्र सिंह नेगी को प्रेम गीतों के अतिरिक्त प्रकृति और आन्दोलन के गीत लिखने में अधिक सफलता मिली है। उनके काव्यों में

साहित्यिक का पुट भी देखने में आता है। उनकी कृति 'खुचकण्डी' इस दृष्टि से पढ़नीय है। नरेन्द्र सिंह नेगी के साथ ही छन्द विधान को दुरुस्त करने में चक्रधर बहुगुणा, कन्हैयालाल डंडरियाल, गिरधारी प्रसाद 'कंकाल' का अविस्मरणीय योगदान रहा है। इन्होंने नए छन्दों का भी सृजन किया है। शिल्प की दृष्टि से भी नए-नए प्रयोग कन्हैयालाल डंडरियाल की अॅजवाल और अबोध बन्धु बहुगुणा के काव्यों में सर्वत्र दिखते है। अॅजवाल ने तो इतना नवीन शिल्प अपनाया कि वह वर्तमान के कई कवियों का वर्ण्य और अभिव्यक्ति की शैली ही बन बैठा है। डॉ जगदम्बा प्रसाद कोटनाला ने दो टूक शब्दों में हिन्दी काव्य शिल्प के प्रधान को निम्नवत् अभिव्यक्त किया है-

'लोकधर्मी काव्य कला को छोड़कर हिन्दी काव्य शिल्प ने गढ़वाली काव्य शिल्प को अत्यधिक प्रभावित किया है'। गढ़वाली छन्द मुक्त काव्य शिल्प ने जैसे हिन्दी की नई कविता के शिल्प को अपना लिया है।

निष्कर्षतः स्वातन्त्र्योत्तर काव्य साहित्य समाजवादी विचार धारा और प्रयोगधर्मी काव्य कला से अनुप्राणित हुआ है।

महाकाव्य - अब तक गढ़वाली में दो ही महाकाव्य प्रकाश में आ सके हैं। अबोध बन्धु बहुगुणा द्वारा रचित 'भूम्याल' जिसे 'हिमालय कला संगम' ने सन् 1977 में प्रकाशित किया तथा दूसरा कन्हैयालाल डंडरियाल द्वारा रचित 'नागरजा' चार भागों में प्रकाशित हैं। नागरजा भाग 1 व 2 को गढ़वाली साहित्य परिषद्-कानपुर ने सन् 1993 ई. में तथा 2000 ई. में दूसरा संस्करण प्रकाशित किया तथा भाग 3 व 4 को कवि के पुत्र हरिकृष्ण डंडरियाल ने ब्रज मोहन सिंह राणा के सहयोग से सन् 2009 में प्रकाशित कराया। इन दो महाकाव्यों के अतिरिक्त तीसरा महाकाव्य अभी देखने में नहीं आया है। गढ़वाल में विष्णु को नागरजा तथा नरसिंह दोनों रूपों में सर्वत्र पूजा जाता है। जबकि शिव को निरंकार के रुप में पूजते है। गढ़वाल की टिहरी जनपद के सेम-मुखेम में नागरजा का मन्दिर है तथा सभी गढ़वाली उसकी तीर्थ यात्रा करते है। किंवदन्ती है कि सेम-मुखेम का नागरजा का मन्दिर गंगू रमोला ने बनवाया था। नागरजा प्रबन्धकाव्य गणेश् और ब्रह्मा की वन्दना से आरम्भ होता है। ब्रह्माण्ड, रज, पुरुष, काल, महत्त्व, अहंकार, आकाश, शब्द, वायु, तेज, प्रकाश, गन्ध, भूमण्डल, पंचभूत देवता, ब्रह्मा-विष्णु, आदि के वर्णन के साथ प्रथम उपखण्ड समाप्त होता है। उपखण्ड दो तथा तीन में शिव-सती तथा शिव-पार्वती प्रसंगों में ही कवि का वास्तविक कवित्व मुखर हुआ है। कविवर डंडरियाल ने शिव और सती के कथानक को गढ़वाली लोक जीवन के अनुरुप वर्णित किया है। इस काव्य में शिव नन्दी बैल को चुगाते है तो सती गाय के लिए घास लाती है। यक्ष, किन्नर और गुहय्क गढ़वाली परिधान पहनकर दक्ष यज्ञ में जाते है। सती के दक्ष यज्ञ में भस्म होने पर दक्ष को शिवद्रोह और अहंकार का निर्मम फल मिलता है। उनके क्रोध को देखकर सब रुद्र की वन्दना करते है कि-

हे दयामय दीनबन्धु, पाप का भांडा छवां।

जीव हम बन्धन मंगा, प्रभु कर्म का खांडम छवां।।

संसार थैं सन्मार्ग दीणौ तुम ये लीला करदवा।

निर्विकारी शंभु तुम संताप जगती हरदवा।।

दैणो ह्वेजा ईश्वर, हे भूमि भूम्याल

गौबन्द मुख मा तृण ल्हे, भेंट धरी अग्याल।।

अर्थात- हे दयामय दीनबन्धु ईश्वर! हम पाप के भांडे है। हम जीव कर्म के बन्धनों में फंसे है। संसार को सन्मार्ग देने के लिए तुम यह लीला रचते हो। हे निर्विकारी शम्भु! तुम जगत के सन्तापहारी हो। हे भूमि के भूम्याल अब प्रसन्न हो जाओ। हम गोबन्द (अति सरल, निष्कपट) होकर तृण मुख में लेकर तेरी अग्याल (पूजान्न) भेंट लेके खड़े है।

इस महाकाव्य में कवि भगवती जगदम्बा की आराधना निम्नवत् करता है-

तू ब्वै छैं हम लड़िक छवां, अंदालि लगी ग्यों तेरी।

खुचिलि पकड़ि ल्हे खुद लगीं, मंुडलि मलासी मेरी।।

अन्तर प्रेम पछ्याणि की प्रकट ह्वाय भवानि।

आदिशक्ति मां भगवती, सेवा हमारी मानि।।

अर्थात - तू मां है हम तेरे पुत्र हैं। तू हमें अपनी गोद में लेकर हमारे सिर पर अपना हाथ फेरकर अपना आर्शीवाद दें। शिव लीला के वर्णन में कवि ने श्रृंगार, हास्य, रौद्र, वीभत्स, आदि रसों का समुचित प्रयोग किया है।

नागरजा भाग-2 में नागरजा कृष्ण की लीला का भक्तिमय वर्णन है। इस सर्ग में कवि ने कंगालियां भाट (एक पात्र) की अवतारणा की है। जो कुंठाओं, कुवृत्तियों, व्यभिचार और स्वार्थ सिद्धि के लिए छद्मवेशी धार्मिक कर समाज को भ्रष्ट कर देता है। इस सर्ग में भगवान कृष्ण कंगाली भाट को नटखट सुंदरी बनकर ज्ञान, कला और सौन्दर्य के बल पर मोहित कर उसे जगत कल्याण का सन्देश देते है। कवि ने एक कल्पित पात्र कंठी दादा के माध्यम से जीव जगत, ईश्वर, तप-त्याग, सगुण-निर्गुण आदि दार्शनिक शंकाओं का विवेकपूर्ण ढंग से कंठी दादा के माध्यम से समाधान कराया है।

निष्कर्षतः इस काव्य की शैली अलंकृत और सरस है। इसमें ठेठ गढ़वाली शब्दों का ठाठ देखने में आता है। महाकाव्य के सभी लक्षण नागरजा में प्राप्त होते हैं। नागरजा में गीतिका, हरिगीतिका,

कवित्त, सवैया, भुजंग प्रयात, उपजाति, इन्द्रबज्रा, उपेन्द्रबज्रा, ताटंक, दोहा, चौपाई आदि छन्दों को प्रयुक्त किया गया है।

'भूम्याल' खण्डकाव्य - भूम्याल का प्रकाशन सन् 1977 में हुआ। इसमें भूमि, उलार, दन्दोल, मिलन, कर्म, विरह, औळ, ममता, विहार, परिणय, दुन्द, रोपणी, विलाप, थर्प, जलेथा और उपसंहार कुल 16 सर्ग है। काव्य का नायक लोकप्रसिद्ध उद्दात्त वीर भड़ जीतू बगड़वाल है तथा नायिका भरणा है। काव्य का मुख्य संदेश सामजवादी लोकतान्त्रिक व्यवस्था की प्रतिस्थापना है। इसमें अनेक मौलिक छन्दों का सृजन किया गया है।

14.3.1 गढ़वाली काव्य में काव्य तत्व और सौन्दर्यानुभूति

गढ़वाली काव्य, रसतत्व की प्रधानता के कारण अलग पहचाने जाते है। श्रृंगार, वीर, हास्य, करुण और अद्भुत इन रसों की गढ़वाली कविता में सर्वत्र स्थिति देखी जा सकती है। वीरगाथाएं यदि श्रृंगार, करुणा और वीर रस से भरी है तो लोककथाएं, अद्भुत रस और अन्य रसों की अनुगामिनी है। लोकगीतों में सर्वत्र श्रृंगार और प्रकृति चित्रण, करुण रस तथा सामाजिक जीवन के चित्र (बिम्ब) मिलते है। अलंकारों का प्रयोग कविवर श्रीयाल की अन्याक्षरी कविता में अधिक दिखता है। डंडरियाल जी का 'नागराजा' भी अलंकृत काव्य है। अन्य कवियों में नरेन्द्र सिंह नेगी, को छोडकर प्रायः काव्यालंकारों के प्रति मोह नहीं दिखाई देता है।

उन्होंने रस को ही प्रधानता दी है। भजन सिंह 'सिंह' और उनके युग के कवि सामाजिक समस्याओं के चित्रण में अधिक सफल हुए है। स्वातन्त्रयोत्तर प्रगतिवादी चेतना भी इन काव्यों की पृष्ठभूमि में कार्य कर रही है। देश भक्ति, वीरता, त्याग और सुधार की भावना, सिंह युग के कवियों की काव्यागत विशेषता हैं। उदाहरणार्थ -

फ्रान्स की भूमि जो खून से लाल च,

उख लिख्यों खून से नाम गढ़वाल च,

रैंद चिन्ता बड़ी तै बड़ा नाम की,

काम को फिक्र रैंद न ईनाम की।

भाषिक प्रयोग में नवीनता - हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू के शब्दों का प्रयोग भी इस कालखण्ड के कवियों ने बेहिचक किया है। उनमें गढ़वाली शब्दों के प्रयोग की अपनी बानगी तो है ही जैसे- चोली, छैला, डूडो, फाला, धौली, बसगाल, फ्योंली, जिकुड़ी, गैल्या, दुवारो, ज्यू का कालू आदि। शब्दराशि का बाहुल्य गढ़वाली कविता की अपनी अभिव्यक्ति को अपना सा बनाने में सहायक हुई है। अपने शब्दों (ब्वे की बोली) की अपनी मिठास अलग ही होती है।

प्रकृति चित्रण - गढ़वाली कविता एवं उसका काव्य साहित्य प्रकृति चित्रण के बिना अधूरा जान पड़ता है। प्रकृति चित्रण ही गढ़वाली काव्य साहित्य की एक विशिष्ट पहचान है। हिन्दी कविता में प्रकृति चित्रण, छायावादी प्रभाव की देन माना जात है। भले ही उससे पहले भी प्रकृति चित्रण को कविता के प्रमुख अंग के रुप में स्वीकारा जा चुका था। एक गढ़वाली कविता में श्रृंगार से भरे नारी के सौन्दर्य को दर्शाता काव्य को निम्न देखिए -

''अक्षत उंदकार चुलखियों मा,

रतव्योणी मा प्रेम की भारि भूखी,

जख रोज ही स्वप्न शरीर धारी,

क्वारी तरुणि स्याणी परी दिखेंदन।

काव्यालंकार- रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग रुपाकृति वर्णन में अतिशयोक्ति की अतिरंजना, वीर भड़ों के शारीरिक सौष्ठव एवं पराक्रम वर्णन में, सुन्दरियों के देहाकर्षण में सर्वत्र दृश्यमान है। उदाहरणार्थ- महाकवि कन्हैयालाल डंडरियाल के अॅज्वाल कविता संग्रह की उल्यरु जिकुडी कविता में आये अलंकारों के विविध बिम्ब-प्रतिबिम्ब प्रस्तुत है-

स्यूंद सी सैण मा की कूल, स्वाति की बूंद सी ढ्वलीने

झुमकि सी तुड़तुड़ी मंगरि, मखमलि हरि सी अंगडि

फील्वर्यू हलकदी धौपंली, घुंगटी सी लौकदि कुयेड़ी

उपर्युक्त पद्य में समतल खेतों की गूल को मांग के सदृश, आंसू को स्वाति के बूंद, पानी को पतली धारा को झुमकों, हरे मैदानों को अंगड़ी, और उड़ते कोहरे की चादर को घूघंट के समान बताकर कवि ने प्रकृति का चित्रण किया है। भूम्याल महाकाव्य में कविवर नागेन्द्र बहुगुणा 'अबोध बन्धु' की उपमाएं उनके अलंकृत कवि होने के प्रमाण है।

डांडा को क्वी तरुण हाथी सी लग्यूं मस्त बाटा

हर तर्प बटि सुन्दरता हृदय मा, बौला को पाणि सी कगार कटणि

हिरणी की बच्ची सी कुंगलि चिफली भरी नि सकणि हो चौकड़ी ज्वा

म्वारी सी माधुर्य भरीं च गूंगी चखुली सी ज्वा टुपरि उड़ नि सकदी

इन पंक्तियों में रास्ते में चलते तरुण हाथी के समान जीतू के मन में, भरणा की सुन्दरता ऐसे समा रही है जैसे गूल के किनारों की मिट्टी काटती बारीक पानी की धारा, जीतू की गोद में समर्पित भरणा हिरणी की कोमल बच्ची, मधुभरी मधुमक्खी, या आकर्षक चिड़िया के समान दिखाई दे रही है। उक्त पद्य में मालोपमा अलंकार है। उमाल के कवि प्रेमलाल भट्ट ने भी कुछ ऐसी ही उपमाओं को काव्य में अपनाया है।

मिथे उर्ख्यला की धाण सी, क्वी धौलि गै क्वी कूटि गै

निनि बोतल को नशा सी मैं, कखि कोणा लमड्यूं रैगयूं

कखि प्रीत क्वी मिलि छई, नौनो का बांठा कि भत्ति सी,

फुंड फेकि द्यो ये समाज न, मि फुकीं चिलम को तमाखु सी

इन पंक्तियों में कवि ने सामाजिक ज्यादतियों को ओखली में कूटे जाने के समान, खाली बोतल या जले हुए तम्बाकू की चुटकी के समान निरर्थक तथा प्रीत को बच्चे के हिस्से की खीर के समान नई उपमाएं दी है।

1. नए प्रतीकों के प्रयोग- आधुनिक समय के सुप्रसिद्ध गीतकार नरेन्द्र सिंह नेगी ने अपने गीतों में प्रतीकों को चुना है। उन्होंने जिन प्रतीकों को चुना वें लोक जीवन अथवा लोकभाषा में प्रचलित है। जैसे- उकाल-उंदार गीत में उकाल जीवन संघर्ष और उंदार आसान या पतनोत्मुख जीवन के प्रतीक है। 'हौंसिया उमर' गीत में बसगल्या न्यार, पोड मा को पाणी, धार मा को बथौं, इयूतू तेरी जमादरी में इयूतू शक्ति या राजसत्ता का प्रतीक, अंगूठा घिसै- अनपढ़ तथा लटुली फूली गैनि गीत में पके हुए बाल समय गुजर जाने के प्रतीक है। कवि के गीत संग्रह गाण्यूं की गंगा-स्याण्यूं का समोदर की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत है जिनमें गढ़वाली प्रतीकों के प्रयोग की प्रवृत्ति दिखाई देती है-

खैरि का अंधेरों मा खुज्ययुं बाटु

सुख का उज्याला मा बिरड़ि गयूं

आंखा बूजिकि खुलदिन गेड़

आंखा खोलिकि अलझि गयूं

उमर भप्ये की बादल बणिगें

उड़दा बादल हेर्दि रयूं।

ज्वानि मा जर सी हैंसी खते छै

उमर भर आंसू टिप्दि रयूं

रुप का फेंण मा सिंवाल नि देखी

खस्स रौडू अर रडद्वदि गयूं

इन पंक्तियों में अंधेरा - परेशानी का, उजाला सुख का, गेड-मानसिक गुत्थी का, उलझना-परेशानी में पड़ना, बादल- बुढ़ापा का, हंसी- खुशी का, आंसू-दुख का, फेण- रुप की चमक तथा सिंवालु- (कायी) आकर्षण मन्द पड़ने का प्रतीक है। प्रतीक की दृष्टि से कवि गिरधारी प्रसाद 'कंकाल' एवं अबोध बन्धु बहुगुणा प्रमुख कवि है। अन्य कवियों में गोविन्द चातक व श्रीधर जमलोकी उल्लेखनीय है। कवि कंकाल के गीत संग्रह नवाण की तुम द्यबता और अमर स्वर आदि कविताएं प्रतीकात्मक है। इस काव्य में बांसुरी जीवन की आती-जाती सांसांे का प्रतीक है। भोर का तारा रतव्योण्यां जन्म का, फूलो का रस, रंग व गन्ध जीवन के विभिन्न सुख-उल्लासों की प्रतीक, जेठ की दुपहरी, जवानी अथवा जीवन की क्रियाशीलता का प्रतीक एवं खलिहान में बैलों के फेरे जन्म-मृत्यु के प्रतीक के रुप में प्रयुक्त मिलते है। उदाहरण प्रस्तुत है-

बजणी छ बांसुळी, धार मा देखा रतव्योण्यां ऐगे

भांति-भांति का रस, रंग लैगे, फूलों मा गन्ध रसधार फलू मा भरणी छ बांसुळी।।

जीवन मिट जालो स्वर यख राला, दायीं जसि फेरा रीटि की आला

बसग्याळि गंगा बणि की आख्यूं मा- तरणी छ बांसुळी

गिरधारी प्रसाद कंकाल ने घिडंवा (नर गौरेया) तथा घिडुड़ी (मादा गौरेया) को नर-नारी के प्रतीक के रुप में चुनकर गरीब पर्वतीय दम्पत्ति की कथा-व्यथा को मनोरंजक ढ़ंग से अभिव्यक्त किया है। कवि चक्रधर बहुगुणा ने भी प्रतीकों में अपनी बात कही है। नौबत संग्रह की दीवा कविता में दिया-चेतना का, अन्धकार चेतना का, ज्योति ज्ञान का, तेल विवेक का, घानी संघर्ष का, और बाती त्याग का प्रतीक है। सदानन्द जखमोला के रैबार काव्य में बिम्बों की भरमार है। जैसे-

भींचूळों सी तिगुड़ी ढसको, प्यार पींदी धमेल, भैलो खिल्दा नितम्बों मा, चुंटि फूंदा भग्यान

मर्छाणी को अतुल गति से छांछ छुळदों किलोल, पुन्यो से ही दरश परश् पर्व काल सुकाळों।

मंगतू काव्य में कवि डंडरियाल ने मंगतू की गरीब पारिवारिक स्थिति के अनेक बिम्ब उतारे है।

2. छन्द विधान - गढ़वाली कवियों ने परम्परागत और शास्त्रीय छन्दों में रचना की है। मंगतू में बीस मात्रा के छन्द को अपनाया गया है।- किलै मेरि ईजत गिरीं इतग रैन्दी,

म्यरा बाब जी जो हमुम छैन्दि हून्दी।।

म्यरा बाब जी तुम यखा आइ जावा।

प्वड्यूं गौरु का ल्याख मी देखि जावा।।

फ्यूंली की कविताओं में नये छन्दों का वैविध्य विद्यमान है- फुर-घिंडुडी आजा, पदानु का छाजा, चाड नी जो छवी लगउं, केकु तेरा नेडु अउं, इन्नि समझि तन्नि छउं, कुछ नी तेरु काजा, पदानु का छाजा।

उमाशंकर 'सतीश' के गीतों का संग्रह खुदेड़ सन् 1956 गीतात्मक शैली में लिखा गया है। इसमें एक कविता छन्द मुक्त शैली में है- हे रां/दैव/कनी होली भग्यानी/मैतासु, मेरी जिकुड़ी का/टूक होंदा/नी ओदूं सरील, जगा पर/मेरी भुली/दीदी, जिया/डांडा का काफल, कन होला/ खायेणा/मेरि ब्वे होंदी/मैं मैतु बुलौंदि/ हे रां! दैव।

निष्कर्षतः गढ़वाली कवियों में पारम्परिक छंदों के साथ ही मनमोहक मौलिक छन्दों का भी निर्माण किया। उनकी दृष्टि मुक्त छन्द वाली कविता की ओर भी आकृष्ट हुई है। गढ़वाली लोकगीतों में समय-समय पररचे जाने वाले देश, काल और परिस्थिति की प्रेरणा से उद्भूत घटना मूलक और इतिवृत्तात्मक गीतों की संख्या बहुत है। सत्य यह है कि लोक मानस अपने आस-पास की घटनाओं के प्रति अधिक आकर्षित होता है। फलतः जो भी वैसी घटना घटी, झट से उस पर गीत बन जाया करते है। कुछ घटनायें ऐसी होती है जिनमें इतिहास का निर्माण होता है किन्तु कभी बहुत सामान्य घटनाएं भी गीतों में बंध जाती है। लोक की दृष्टि में उनकर भी उतना ही महत्त्व होता है।

प्राचीन काल के घटनामूलक गीत अब शेष नहीं रह पाए है। कुछ मुग़ल और गोरखा आक्रमण के गीत बचे है। आजादी के लिए जो जन आन्दोलन हुए है उनकी अभिव्यक्ति गीतों मे कई बार हुई है। गांधी, नेहरु, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, सुमन आदि के गीत एक समय बहुत लोकप्रिय रहे हैं। पंचायती राज आ जाने के बाद लोक में जो राष्ट्रीय चेतना की लहर आई वह भी अनेक गीतों में बोलती है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के ऐतिहासिक दौर के गीतों में गांधी, नेहरु, सुभाष की प्रशंसा तथा स्वतन्त्रता के बाद की बदलती स्थितियों, जमाने के बदलते रंगों, गरीबी, बेरोजगारी, मंहगाई, अकाल जैसी दैवी आपदाओं, स्त्रियों द्वारा की जाने वाली आत्महत्याओं, अधिकारियों के हथकंडों आदि कई घटनाओं पर गढ़वाल में समय-समय पर लोक साहित्य की रचना होती रही है। इस कालखण्ड में बालगीत भी खूब रचे गए। बालगीत अब मिटते जा रहे है। पुरानी वीरगाथाएं (पवाड़े) लुप्तप्राय हो रहे है। वर्तमान समस्याओं का चित्रण करने पाले गढ़वाली के नए लेखक पौराणिक एवं ऐतिहासिक साहित्य के लेखन में रुचि नहीं ले रहे हैं। इसका कारण उनका अपनी जड़ों से हट जाना ही माना जा सकता है। इसका प्रभाव गढ़वाली भाषा पर भी पड़ा है। उसके मूल शब्द खोते जा रहे हैं । गढ़वाली लोक साहित्य की परम्परा में भी भारी बदलाव आने लगा है। वैज्ञानिक प्रगति तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और रहन-सहन ने पुराने मिथकों को ध्वस्त

कर दिया है। अतः आधुनिक पाठक और रचनाकार/लेखक प्राचीन परम्पराओं (मिथों) पर अविश्वास जतलाने लगे है। वें कल्पना की अपेक्षा यथार्थ को महत्त्व दे रहे है। यही कारण है गढ़वाली का कल्पना से अतिरंजित लोक साहित्य धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है।

14.3.2 गढ़वाली लोक साहित्य के समक्ष समस्याएं

गढ़वाली में आधुनिक साहित्यिक विधाओं निबन्ध, व्यंग्य, लेख, संस्मरण तथा जीवनी आदि में भी काम प्रगति पर है। जो मुख्य रुप से पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित होते रहते है। इसके अलावा अनेक सम्पादित ग्रन्थ भी गढ़वाली में उपलब्ध है। गढ़वाली निबन्ध लेखन की शुरुआत पांचवें-छठे दशक से हुई। प्रमुख निबन्ध संग्रह इस प्रकार है - गढ़वाली का निबन्ध (गोपेश्वर कोठियाल), समौण (उमाशंकर सतीश), धरती का फूल, क्या गोरि क्या सौंळि (डा. गोविन्द चातक) आदि। अबोध बन्धु बहुगुणा की कृति 'एक कौंळि किरण' गद्य गीत, संस्मरण, निबन्ध तथा यात्रा वृतान्तों का संग्रह सद्य प्रकाशित (2006 ई) हुआ है। इनके अलावा बांसुळी (भगवती प्रसाद पांथरी), मगना प्वीं (बलदेव प्रसाद नौटियाल) भी गद्य गीत और हास्य रस के लेखक है। रमा प्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' द्वारा चन्द्रसिंह गढ़वाली की जीवनी 'बड़ा भैजी' उल्लेखनीय कृति है। नए लेखकों में सर्वेश जुयाल, भगवती प्रसाद नौटियाल, देवेन्द्र प्रसाद जोशी, मदन डुकलान, लोकेश नवानी, वीरेन्द्र पंवार, विमल नेगी, नरेन्द्र सिंह नेगी, और नरेन्द्र कठैत आदि प्रमुख है। ये आधुनिक रचनाकार प्राचीन और नवीन दोनों काव्य परम्पराओं को लेकर चल रहे है। गढ़वाली में कहानियां अधिक लिखी जा रही हैं । उपन्यास अपेक्षाकृत कम लिखे गए हैं । नाटक लिखे जा रहे हैं लेकिन सर्वाधिक लेखन कविता के क्षेत्र में हो रहा है। मुक्तक कविताएं अधिक रची जा रही हैं जो कि सामयिक समस्याओं का वर्णन करती हैं। खण्डकाव्य भी कम रचे जा रहे है। नागरजा और भूम्याल महाकाव्यों के बाद कोई तीसरा महाकाव्य अभी रचा नहीं गया है। गढ़वाली नाटकों का मंचन बहुत कम होता है। इस कारण जनता में अपनी भाषा को बचाने और संस्कृति का संरक्षण करने की भावना नहीं पनप पा रही हैं। यह ज्ञातव्य है कि गढ़वाली लोक साहित्य का समारम्भ नाटकों से ही प्रारम्भ हुआ था। भवानी दत्त थपलियाल द्वारा गढ़वाली में लिखे पहले नाटक प्रहलाद की आज भी चर्चा होती है। लेकिन उसके बाद कोई ऐसा सांस्कृतिक नाटक नहीं लिखा जा सका जो नाट्यकर्मियों को तथा दर्शकों को प्रेरित कर सकता। कन्हैयालाल डंडरियाल द्वारा लिखे गए नाटक अभी तक अप्रकाशित है। वर्तमान गढ़वाली लोक साहित्य में नाटक, उपन्यास, निबन्ध और आत्मवृत्त आदि विधाओं का अभाव खटकता जा रहा है। नए रचनाकार इस ओर ध्यान नहीं दे रहे है या उनकी रुचि इन विधाओं में नहीं है। यह गढ़वाली साहित्य के भविष्य पर एक प्रश्नचिह्न है। कुछ एक गढ़वाली फिल्मों को छोड़कर फिर कोई उल्लेखनीय फिल्म नहीं बन पाई है। जो गढ़वाली साहित्यकारों/नाट्यकर्मियों को प्रेरित कर पाती।

14.3.3 वर्तमान लोक साहित्य की विधाएं

वर्तमान समय में गढ़वाली लोक साहित्य में कविता, कहानी, निबन्ध, आलोचना, रेडियो रुपक, नाटक/एकांकी, हास्य-व्यंग्य, उपन्यास और रिपोर्ताज विधाएं विकसित हो रही है। नए लेखकों और कवियों ने अपना शिल्प और काव्य वर्तमान हिन्दी साहित्य के अनुकरण पर बिल्कुल ताजा और तीखे स्वाद वाला अर्थात अभिधात्मक किन्तु व्यंग्य से भरपूर (बिहारी के दोहों की तरह) लघु आकार प्रकार किन्तु तीखी मार वाला शिल्प, और वर्णन कौशल को अंगीकार कर लिया है। पुरानी परम्परा का नीतिपरक साहित्य अब बीते युग की बात हो चुका है। वर्तमान काव्य विद्या के अन्तर्गत पद्यात्मक अभिव्यक्ति की ओर नए लेखकों का अधिक रुझान है।

14.4 सारांश

गढ़वाली में आधुनिक साहित्यिक विधाओं निबन्ध, व्यंग्य, लेख, संस्मरण तथा जीवनी आदि में भी काम प्रगति पर है। जो मुख्य रुप से पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित होते रहते है। इसके अलावा अनेक सम्पादित ग्रन्थ भी गढ़वाली में उपलब्ध है। गढ़वाली निबन्ध लेखन की शुरुआत पांचवें-छठे दशक से हुई। प्रमुख निबन्ध संग्रह इस प्रकार है - गढ़वाली का निबन्ध (गोपेश्वर कोठियाल), समौण (उमाशंकर सतीश), धरती का फूल, क्या गोरि क्या सौंळि (डा. गोविन्द चातक) आदि। अबोध बन्धु बहुगुणा की कृति 'एक कौंळि किरण' गद्य गीत, संस्मरण, निबन्ध तथा यात्रा वृतान्तों का संग्रह सद्य प्रकाशित (2006 ई) हुआ है। इनके अलावा बांसुळी (भगवती प्रसाद पांथरी), मगना प्वीं (बलदेव प्रसाद नौटियाल) भी गद्य गीत और हास्य रस के लेखक है। राम प्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' द्वारा चन्द्रसिंह गढ़वाली की जीवनी 'बड़ा भैजी' उल्लेखनीय कृति है। नए लेखकों में सर्वेश जुयाल, भगवती प्रसाद नौटियाल, देवेन्द्र प्रसाद जोशी, मदन डुकलान, लोकेश नवानी, वीरेन्द्र पंवार, विमल नेगी, नरेन्द्र सिंह नेगी, और नरेन्द्र कठैत आदि प्रमुख है। ये आधुनिक रचनाकार प्राचीन और नवीन दोनों काव्य परम्पराओं को लेकर चल रहे है। गढ़वाली में कहानियां अधिक लिखी जा रही है। उपन्यास एक आध दिखने में आते है। नाटक लिखे जा रहे है लेकिन सर्वाधिक लेखन कविता के क्षेत्र में हो रहा है। मुक्तक कविताएं अधिक रची जा रही है जो कि सामयिक समस्याओं का वर्णन करती है। खण्डकाव्य कम देखने में आ रहे है। नागरजा और भूम्याल महाकाव्यों के बाद कोई तीसरा महाकाव्य अभी रचा नहीं गया है। गढ़वाली नाटकों का मंचन बहुत कम होता है। इस कारण जनता में अपनी भाषा को बचाने और संस्कृति का संरक्षण करने की भावना नहीं पनप पा रही है। यह ज्ञातव्य है कि गढ़वाली लोक साहित्य का समारम्भ नाटकों से ही प्रारम्भ हुआ था। भवानी दत्त थपलियाल द्वारा गढ़वाली में लिखे पहले नाटक 'प्रहलाद' की आज भी चर्चा होती है। लेकिन उसके बाद कोई ऐसा सांस्कृतिक नाटक नहीं लिखा जा सका जो नाट्यकर्मियों को तथा दर्शकों को प्रेरित कर सकता। कन्हैयालाल डंडरियाल द्वारा लिखे गए नाटक अभी तक अप्रकाशित है। वर्तमान

गढ़वाली लोक साहित्य में नाटक, उपन्यास, निबन्ध और आत्मवृत्त आदि विधाओं का अभाव खटकता जा रहा है। नए रचनाकार इस ओर ध्यान नहीं दे रहे है या उनकी रुचि इन विधाओं में नहीं है। यह गढ़वाली साहित्य के भविष्य पर एक प्रश्नचिह्न है। कुछ एक गढ़वाली फिल्मों को छोड़कर फिर कोई उल्लेखनीय फिल्म नहीं बन पाई है। जो गढ़वाली साहित्यकारों/नाट्यकर्मियों को प्रेरित कर पाती।

14.5 शब्दावली

मोछंग -	छोटा वाद्य यन्त्र
माल -	बहादुर/मल्ल
भोट -	तिब्बत
नागरजा -	कृष्ण
ढ़साक -	हल्का स्पर्श
ज्यूंदाल -	मन्त्र द्वारा फेंके गए चावल
जागरी -	जागर गीतों के विशेषज्ञ (गायक/वादक)
अंज्वाल -	अंजुलि
खर्क -	भैसों के रहने का स्थान
खुंदेड़ -	एक प्रकार के गीत
कळकळी -	उत्कंठा से उत्पन्न गले पर एक प्रकार की अद्भुत अनुभूति
औजी -	ढोल, दमामा बजाने वाले हरिजन
गदरा -	छोटी नदी
रुणक-झुणक -	चुपके-चुपके मन्द ध्वनि करते हुए
मुन्यासों -	पगड़ी
कुखड़ी -	मुर्गी
दगड़्या -	दोस्त

बोकट्या - बकरा

14.6 अभ्यास प्रश्न एवं उत्तर

1. निम्न प्रबन्ध किसके द्वारा लिखे गए है ?

क गढ़वाल के साहित्य संस्कृति पर स्कन्द पुराण का प्रभाव

ख नागरजा महाकाव्य

ग नाथपंथ और गढ़वाल

घ जौनसारी भाषा का विवेचनात्मक अध्ययन

2. आधुनिक गढ़वाली कथा के किन्ही तीन लेखकों के नाम लिखिए ?

3. गढ़वाली नाटक विधा पर सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य किस विद्वान ने किया है ?

4. प्रथम चरण के गढ़वाली काव्यों के नाम लिखिए।

5. निम्नलिखित आधुनिक कविता संग्रहों के लेखकों के नाम बताइये।?

क गाण्यू की गंगा, स्याण्यू का समोदर,

ख मेरी अग्याल

ग हैंसदा फूल खिलदा पात

घ कुयेड़ी

6. निम्न रचनाएं किस कवि की है ?

अंज्वाल, चांठो का घ्वीड़, मंगतू,

7. गढ़वाली प्रबन्धकाव्य पर संक्षिप्त में टिप्पणी लिखिए।

8. आधुनिक समालोचना 'बीं' के लेखक का नाम बताओ।

9. नरेन्द्र सिंह नेगी के बसन्त पर लिखे हुए गढ़वाली गीत के बोल लिखों।

उत्तर

उत्तर 1

क चन्द्रशेखर बडोला

ख कन्हैयालाल डंडरियाल

ग डा. विष्णुदत्त कुकरेती

घ डा. उमाशंकर 'सतीश'

उत्तर 2

1. नरेन्द्र कठैत
2. हिमवन्तवासी
3. अबोध बन्धु बहुगुणा

उत्तर 3 डा. गोविन्द चातक

उत्तर 4 प्रथम चरण के गढ़वाली काव्य निम्नलिखित है-

1. बाटा गोडाई
2. जय-विजय
3. पंछी पंचक
4. फुलकण्डी
5. मोछंग
6. प्रहलाद नाटक

उत्तर 5

क नरेन्द्र सिंह नेगी

ख ऋषिवल्लभ कण्डवाल

ग ललित केशवान

घ कन्हैयालाल डंडरियाल

उत्तर 6

अंज्वाल, चांठो का घ्वीड़, मंगतू, उक्त तीनों रचनाएं कन्हैयालाल डंडरियाल जी की है।

उत्तर 7 गढ़वाली प्रबन्ध काव्य

प्रबन्धकाव्य के अन्तर्गत खण्डकाव्य और महाकाव्य दोनों विधाएं आ जाती है। गढ़वाली में अभी तक दो ही महाकाव्य प्राप्त हुए है। पहला महाकाव्य अबोध बन्धु रचित भूम्याल और दूसरा कन्हैयालाल डंडरियाल रचित नागरजा है। गढ़वाली में अनेक गीत एवं संवादात्मक खण्डकाव्य भी रचे गय है। जिनमें जय-विजय, प्रहलाद नाटक दोनों भवानीदत्त थपलियाल रचित गीतात्मक प्रबन्ध नाट्य काव्य है। इनकी शैली नाटकीय होने से लोग इन्हें नाटक ही मानते है। बाटा गोडाई बलइेव प्रसाद दीन का गीत संवादात्मक खण्डकाव्य है। जिसे रामी नाम से जाना जाता है। भजन सिंह 'सिंह' की वीर देवकी तथा तारादत्त गैरोला कृत सदेई दोनों खण्डकाव्य है। कन्हैया लाल डंडरियाल का मंगतू तथा सदानन्द जखमोला का रैबार और अश्रुमाला कृतियां खण्डकाव्य के अन्तर्गत है।

उत्तर 8 आधुनिक समालोचना 'बीं' के लेखक श्री वीरेन्द्र पंवार है।

उत्तर 9 नरेन्द्र सिंह नेगी का बसन्त पर आधारित गढ़वाली गीत निम्नलिखित है-

रुणुक-झुणुक ऋतु बसन्ति गीत लगांदि ऐगे,

बसंत ऐगे हमार डांडा सार्यू मा

ठुमुक-ठुमुक गुंदक्यली खुट्यून हिटी की ऐगे,

बसन्त ऐगे लिपीं पोतीं डिंडल्यूं मा।

मुखड्यूं मा हैसणू च पिंगलू मौल्यार,

गल्वड्यूं मा सुलगै गे ललंगा अंगार

आंख्यूं मा चूमाण सुपिन्या बसन्ती

उल्या जिकुड्यूं मा छलकेणू प्यार

सिंणका सूत कुंगलि कंदुड़ि- नकुड्यूं मा पैरेगे

बसन्त ऐगे हमार गांदी चौठ्यू मा।

14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उत्तराखण्ड की लोक कथाएं, गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, अन्सारी रोड़, नई दिल्ली- प्रथम संस्करण 2003

2. गढ़वाली लोककथाएं, डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 1996, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली

3. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य, डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

4. उत्तराखण्ड की लोककथाएं, डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली।

5. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना, मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।

6. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य, डा. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।

7. गढ़वाली लोक गीत विविधा, डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

14.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. गढ़वाली लोक साहित्य के वर्तमान स्वरूप पर विस्तृत निबन्ध लिखिए .